श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत

रामचरित–मानस (रामायण) तृतीय सोपान

॥ आरण्य काण्ड ॥

श्री विनायकी टीका सहित

जो

वाच्यार्थ, व्यंग्यार्थ, गूढ़ार्थ पूरित, शब्दालंकार
व अर्थालंकारालंकृत तथा विविध
कविवरवाणीविभूषित है।

जिसे

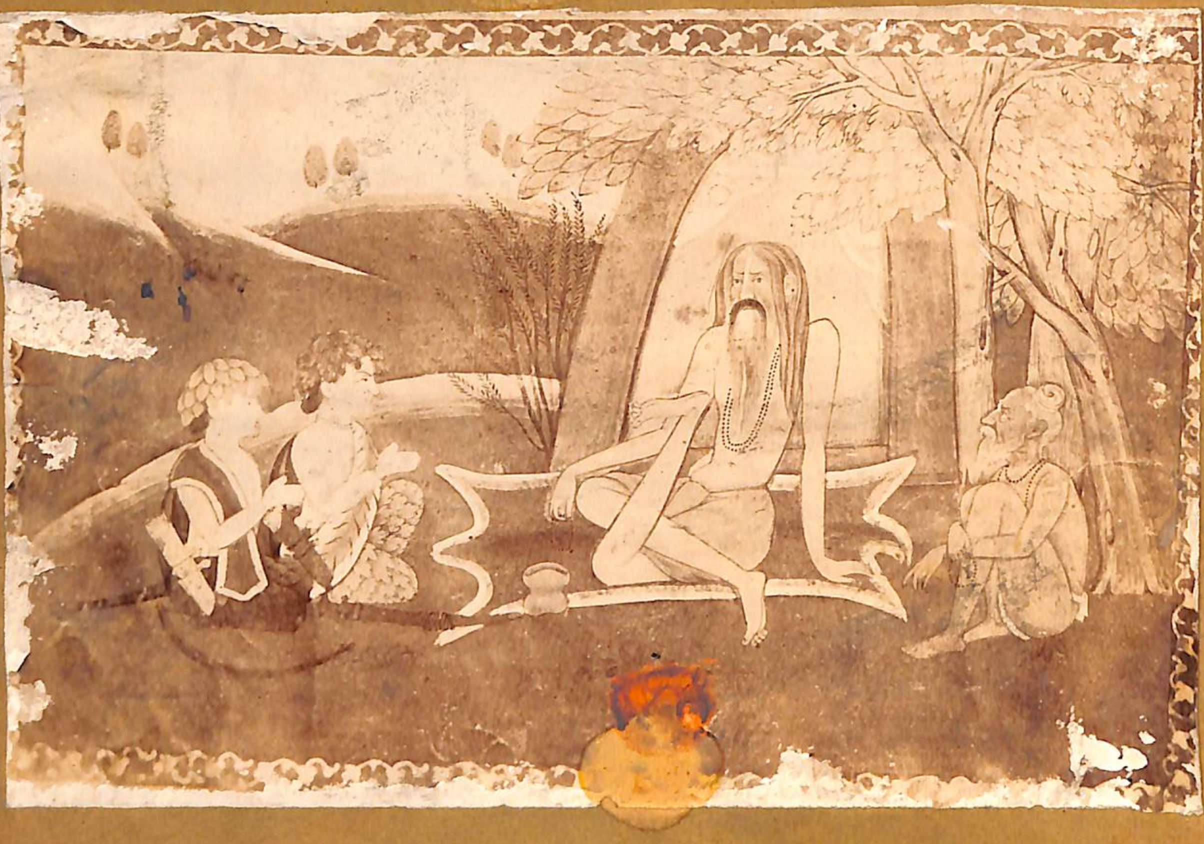
पं० विनायक राव (उपनाम कवि 'नायक')
(पूर्व) असिस्टेण्ट सुपरिन्टेंडेंट ट्रेनिङ्ग इंस्टिट्यूशन
(साम्प्रत) पेंशनर
जबलपुर ने

रचकर प्रकाशित किया

"हितकारिणी प्रेस,"—जबलपुर में मुद्रित हुआ.

सम्वत् १९७६.

चतुर्थ वार १००० प्रति | १९१९. | मूल्य १० आना



श्री गणेशाय नमः ।



दो०—सिद्धि विनायक पदकमल, नमन विनायक कीन्ह ।
श्री विनायकीतिलक को, श्रीगणेश करदीन्ह ॥

भूमिका

तिलक का नाम "श्री विनायकी टीका". रखने का मुख्य हेतु यह है कि इसका प्रारंभ श्री विक्रम संवत् १९६४ भाद्रपद शुक्ल " विनायकी चतुर्थी ,, को हुआ था, जिस दिन श्री गणेश जी का जन्म महोत्सव प्रायः भारतवर्ष भर में मनाया जाता है ॥

श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत रामायण की लक्षावधि प्रतियां, सहस्रों आकार की सैकड़ों प्रकार से छप चुकी हैं और संपूर्ण ग्रन्थ तथा इसके पृथक् पृथक् काण्ड भी अनेक टीकाओं व टिप्पणियों सहित तैयार हो चुके हैं तो भी यह ग्रन्थ इतना उत्तम, अनूठा और लोकप्रिय है कि इसके ऊपर जितनी नवीन रीति की टीकाएं लिखी जावें, उतनी ही का समावेश भली भांति हो सक्ता है। अतएव विमलवैराग्य संपादन करने वाला यह आरण्य काण्ड इस प्रकार छाप कर तैयार किया जाता है कि जिस में रामायण के प्रेमियों की बहुतेरी असुविधाएं दूर हों और उन्हें नीचे लिखी बातें केवल इसी टीका में मिल जावें। यथा—

(१) आरम्भ में अन्वय, मूल के नीचे अथवा मूल कविता के शब्दों पर अंकों द्वारा सूचित, तत्पश्चात् केवल कठिन कठिन पद्यखंडों का ही अन्वय।

(२) कठिन शब्दों का अर्थ।

(३) सामासिक और सन्धियुक्त शब्दों का खंडार्थ इङ्गित अर्थ सहित।

(४) अर्थ, सरलार्थ, भावार्थ, अनेकार्थ आदि।

(५) उचित उपयोगी सूचनाएं।

(६) उल्लेख, ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं समेत।

(७) अनेक शंकाएं और उन के समाधान।

(८) भिन्न भिन्न पाठान्तर उपयुक्त सूचना व अर्थ सहित।

(९) क्षेपक (अर्थात् तुलसीदास जी की बनाई हुई कविता के साथ मिलाई हुई अन्य कवियों द्वारा रचित कविता।)

(१०) उद्धृत गद्यपद्यों के ग्रन्थों अथवा कर्त्ताओं के नाम (जहां तक मालूम हो सके)

(११) नवधा भक्ति, सूर्य, इन्द्र आदि के नाम और अनेक उपयोगी बातें कविता बद्ध (टीकाकार कृत)।

(१२) अनेक धुरन्धर कवियों के काव्य-रचना की, (यथा भजन, रेखता, पद, कवित्त, सवैया आल्हा, दोहा, चौपाई आदि के रूप से) यथा-योग्य स्थानों में समुचित घटना।

(१३) पुरौनी अर्थात् टीका में रही हुई बातों का विस्तार सहित वर्णन।

(१४) संक्षिप्त पिङ्गलविचार आदि।

निदान श्री तुलसीदास जी ने "चारिउ वेद पुराण अष्ट-दश, छऊ शास्त्र सब ग्रन्थन को रस, तन मन धन संतन को सरवस, सार अंश सम्मति सबही की; आरत श्री रामायण जी की"—इस आरती में जो जो ग्रन्थादि सूचित किये हैं सो इन्हीं महात्मा जी के सत्य कथन को पुष्ट करने के हेतु इस टीका में वेद, उपनिषत्, श्री मद्भागवत, श्री गीता जी, श्री वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, राम रसायन रामायण, रामरत्नाकर, सूरसागर, विनय पत्रिका, भर्तृहरिशतक, हितोपदेश इत्यादि संस्कृत तथा भाषा के गद्यपद्यात्मक सद्ग्रन्थों से संकलित कर यथायोग्य स्थानों में टीका किम्वा टिप्पणी के रूप में दर्शाने का प्रयत्न किया है। तथापि, ऊपर लिखी हुई बातों के सिवाय नवीन युक्तियां अनेक अनूठे व गूढ़ अर्थ विद्वज्जनों द्वारा सूचित किये जा सके हैं परन्तु जो कुछ इस टीका में लिखा गया है वह भी ५२ वर्ष की अवस्था तक ज्ञानी पण्डितों के सत्संग का फल है। प्रार्थना है कि—

"क्षमहहिं सज्जन मोर ढिठाई। सुनहहिं बाल बचन मन लाई॥"

विद्वद्वर्य श्रीमान् पंडित सदाशिव जयराम एम० ए० संस्कृत प्रोफ़ेसर गवर्नमेंट कालेज जबलपुर ने अनेक स्थानों में सुयोग्य सम्मति दी और विशेषतः संस्कृत भाग का संशोधन किया, इसहेतु इन महाशय को अनेक धन्यवाद हैं॥

श्रीयुत जयराम (उपनाम "नेही" कवि) असिस्टेंट मास्टर ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूशन जबलपूर ने इस टीका के अधिकांश को जैसा जैसा मैं लिखाता गया वैसा ही लिख कर तैयार किया और छपते हुए पृष्ठों को बारम्बार संशोधित किया; इसहेतु इन को इस गुरुप्रेम प्रदर्शित करने के कारण हार्दिक अनेक आशीर्वाद हैं॥

हुशङ्गाबाद ज़िले के निवासी, जबलपुर नार्मलस्कूल टीन क्लास के विद्यार्थी गङ्गाप्रसाद ने विद्यार्थी शब्द सार्थक, करने के हेतु श्री रामायण की टीका लेखन और छपते हुए बहुतेरे पृष्ठों को जाँच कर अपने को आशीर्वाद का पात्र बनाया

इन के सिवाय श्री बाबू चिरंजीलाल भार्गव को भी अनेक धन्यवाद हैं जिन्हों ने प्रथमतः मुझे इस टीका की रचना करने के हेतु प्रोत्साहित किया था तथा बहुतेरे ग्रंथादि अपनी दूकान से दिये थे ॥

महाकवि भक्तशिरोमणि गोस्वामी श्री तुलसीदास जी कृत रामायणान्तर्गत आरण्य कांड के अमृतरसास्वादाभिलाषियों को यदि यह शुद्ध नागरी भाषा-टीका किसी भी प्रकार से उपकारक होवे तौ टीकाकार अपने परिश्रम को सफल समझे ॥

जबलपूर
ता० १-३-१९०८ } विनायकराव

:o:

॥ दूसरी आवृत्ति की भूमिका ॥

हर्ष की बात है कि श्री विनायकी टीका अपने नवीन ढंग के कारण विद्यार्थियों, सज्जनों तथा पण्डितों को रुचिकर हुई है। इस का प्रमाण इन दो बातों से मिलता है कि (१) अनेक सज्जनों ने कृपाकर प्रशंसापत्र भेजे हैं और (२) इस की दो हज़ार प्रतियाँ भी थोड़े ही समय में बिक गईं। इस दूसरे संस्करण में (१) बहुतेरे कवियों की कविता आदि अनेक उपयोगी बातें यथोचित स्थानों में और भी मिला दी गई हैं, जैसे :--

पृष्ठ	६	७	१२	२०	२३	५४	५७	६१	६८	८०	९२	१०२	११४	११६	१२०	१२२
पंक्ति	१६	१३	२३	२२	२९	२६	१८	१३ ३०	२२ २९	२६	१७	२५	३१	२०	२२	२८

(२) मूल और टीका के अक्षर पहिली आवृत्ति की अपेक्षा बड़े रक्खे गये हैं, (३) कागज़ भी मोटा और चिकना लगाया गया है और (४) पृष्ठ भी अयोध्या कांड की श्री विनायकी टीका ही के अनुसार अर्थात् कुछ बड़े रक्खे गये हैं। इसी कारण पृष्ठ संख्या तो कम गई है परन्तु टीका में कई नवीन बातें मिलाई गई हैं। इतना सब होने पर भी दाम वही आठ आना मात्र है ॥

सज्जन महाशय जिन जिन बातों में त्रुटियाँ आदि दर्शावेंगे उन का विचार समय समय पर प्रत्येक नई आवृत्ति में करने का प्रयत्न करता रहूँगा ॥

लार्डगंज, जबलपुर ता: १ अगस्त १९१२--विनायकराव-पेंशनर.

॥ तीसरी और चौथी आवृत्ति की भूमिका ॥

तीसरी आवृति में पाठ सम्भवतः बहुत कुछ रामचरित मानस के अनुसार लिखा गया है। क्षेपक जो बहुधा एक दो या कुछ अधिक पंक्तियों के थे और मूल के बीच में लिखे हुए थे सो टिप्पणी में डाल दिये गये हैं। चौथी आवृत्ति के दाम कागज की अधिक महँगाई के कारण ॥≈) रखना ही पड़े।

तीसरी आवृत्ति—कुआँर सुदी १० सम्वत १९७३ }
चौथी आवृत्ति—कार्तिक सुदी १५ सं० १९७६ } विनायकराव पेंशनर.

सूचीपत्र

पुरौनी में आवश्यक पिंगल, राहु, नारद, इन्द्र, सूर्य की कथा, विराध, किन्नर और मरुत के उल्लेख तथा प्रसिद्ध कहावतें लिखी गई हैं

———:०:———

॥ श्री ॥

श्री गोस्वामी तुलसीदासकृत

रामचरित मानस (रामायण)

तृतीय सोपान (आरण्यकाण्ड)

❀ श्री विनायकी टीका सहित ❀

‡श्लोक—मूलं धर्मतरोर्विवेक*जलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददम्,
वैराग्याम्बुजभास्करं†ह्यघहरं ध्वान्तापहं तापहम्।
मोहाम्भोधरपुंजपाटनविधौ +खेसंभवं शङ्करम्,
वन्दे, ×ब्रह्मकुलं कलङ्कशमनं ÷श्रीरामभूपप्रियम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ—मूलं=जड़ । धर्मतरोः=धर्म-रूपी-वृक्ष की । विवेक=विचार । जलधेः=समुद्र के । पूर्णेन्दुम्=पूर्णमासी के चन्द्रमा (के समान) । आनन्ददम्=आनन्द देनेवाले । वैराग्याम्बुज=वैराग्य-रूपी-कमल (को) । भास्करं=सूरज (के तुल्य) हिअघहरं=निश्चयपूर्वक पापों के नाश करने वाले । ध्वान्त=अंधकार । अपहं=नाश करने वाले । तापहं=तीनों प्रकार के दुःखों के दूर करने हारे । मोहाम्भोधरपुंज=मोहरूपी बादलों (के) समूह (को) । पाटनविधौ=मिटाने के हेतु ।

---

‡ इस काण्ड की कविता का पिंगल विचार इसी पुस्तक की पुरौनी में है ।

* "जलधेः" यह शुद्ध और संगतयुक्त पाठ है जो सम्बन्धकारक है । इसका पाठान्तर "जलधौ" अधिकरण कारक होने के कारण असम्बद्ध है ।

† "भास्करमघहरं" ऐसे पाठ में गण पलटकर छन्द भंग हो जाता है इसलिये "भास्करं त्वघहरं अथवा" "भास्करंह्यघहरं" पाठ शुद्ध है (देखो पुरौनी) ।

+ "खेसंभवं" का पाठान्तर श्वासंभवं भी है अर्थ में कुछ भेद नहीं ।

× ब्रह्मकुलं—कुल शब्द का अर्थ 'तनु अर्थात् शरीर भी है । यथाः—कुलं जनपदे गोत्रे, सजातीय गणेऽपिच, भवनेच तनौ क्लीवं ।

÷ श्रीरामभूपप्रियम्—तुलसीदास जी ने श्री शंकर जी की वन्दना कदाचित् इस अभिप्राय से की है कि इस काण्ड में रावण से विरोध आरम्भ होगा और शंकरजी रावण के पूज्य हैं इसलिये श्रीशंकर जी की आराधना समयोचित है और भाषा में भी गोसाईं जी कथा का आरम्भ और वक्ताओं द्वारा न कराके शिव ही के द्वारा कराते हैं यथा—'उमा राम गुन गूढ़ इत्यादि' और शंकर जो रामचन्द्र जो के परमभक्त हैं ।

खेसंभवं=आकाश से उत्पन्न हुई (वायु के समान) । शंकरं=शंकर को । वन्दे=मैं प्रणाम करता हूं । ब्रह्मकुलं=परब्रह्म की तनु अर्थात् परमात्मा के अवतार विशेष । कलंकशमनम्=पापों के नाश करनेवाले । श्रीराम भूपप्रियम्=श्री रामराजा प्यारे हैं जिनको अथवा श्री रामराजा के प्यारे ॥

अन्वय---धर्मतरोः मूलं, विवेक जलधेः पूर्णेन्दुम् आनन्ददं, वैराग्याम्बुज भास्करं, हि अघहरं, ध्वान्तअपहं, तापहं, मोहाम्भोधर पुंज पाटन विधौ खे संभवं, ब्रह्मकुलं, कलंकशमनं, श्री राम भूपप्रियं शंकरं वन्दे ॥ १ ॥

सूचना---ऊपर के श्लोक में मुख्य वाक्य केवल इतना ही है "शङ्करं वन्दे" अर्थात् मैं शंकर को प्रणाम करता हूं; कैसे शंकरजी हैं यह बात १० विशेषणों द्वारा बतलाई गई है ॥

अर्थ—(१) धर्मरूपी वृक्ष की जड़ (अर्थात् सम्पूर्ण धर्म उन्हीं से उत्पन्न होते हैं), (२) विवेकरूपी समुद्र के आनन्ददाता पूर्णचन्द्र (अर्थात् पूर्णविवेकी), (३) वैराग्यरूपी कमल को प्रफुल्लित करने के लिये सूर्य के समान (अर्थात् वैराग्य को बढ़ाने वाले), (४) निश्चय पूर्वक पापों के नाशक, (५) अंधकार के नाश करने वाले, (६) तीनों प्रकार के (अर्थात् दैहिक, दैविक और मानसिक) दुःखों के दूर करने वाले, (७) मोहरूपी बादलों के झुण्ड को छिन्नभिन्न करने के लिये आकाश से उत्पन्न हुई पवन के समान (अर्थात् मोह विदारक), (८) परब्रह्म की तनु अर्थात् परमात्मा के अवतार विशेष), (९) पापों को मिटानेवाले, (१०) श्री रामचन्द्र जी राजा प्यारे हैं जिनको अथवा श्री रामराजा के प्यारे ऐसे शिव जी को मैं प्रणाम करता हूं ॥

सरलार्थ—धर्ममूल, परमविवेकी, वैराग्यवर्द्धक, पाप संहारक, अज्ञान-नाशक त्रिविधि ताप-त्रासक, मोहविदारक, ब्रह्ममूर्त्ति, कलंकापहारी, परमरामभक्त, श्री शङ्कर जी की मैं वन्दना करता हूं ॥

श्लोक-सांद्रानंदपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरम्,
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम् ।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितम् ।
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामभिरामं भजे ॥ २ ॥

शब्दार्थ—सान्द्रानन्द=पूर्णआनन्द । पयोद=बादल । सौभगतनुम्=सुन्दर शरीर (वाले)। पीताम्बरं=पीतवस्त्र (धारी)। सुन्दरं=छबीले। पाणौ=हाथ में। बाणशरासनं=बाण सहित कमान । कटि=कमर (में) । लसत्=शोभायमान। तूणीरभारं=भारी तरकस । वरम्=श्रेष्ठ । राजीव=कमल । आयत=चौड़े। लोचनं=नेत्र । धृतजटाजूटेन=धारण कियेहुए जटा के जूड़े (से)। पथिगतं= मार्ग में जाते हुए। रामाभिरामं=आनन्दाई राम [किंवा श्री जानकी जी के प्यारे राम जी (को)]। भजे=मैं भजता हूं ॥

अन्वय—सान्द्रानन्द, पयोद, सौभगतनुम् , पीताम्बरं, सुन्दरम् , पाणौ बाण शरासनं, कटिलसत्तूणीर भारं वरम् , राजीवायत लोचनं, धृतजटाजूटेनसंशोभितं, सीता लक्ष्मण संयुतं, पथिगतं, रामाभिरामं भजे ॥

सूचना—इस श्लोक में भी मुख्य वाक्य केवल यह है ' रामाभिरामंभजे, अर्थात् मैं रामचन्द्र जी को भजता हूं। शेष विशेषणों से श्रीरामचन्द्र जी के स्वरूप आदि का वर्णन किया गया है ॥

अर्थ—पूर्णानन्द स्वरूप तथा बादलों के समान सुन्दर शरीर वाले, पीतवस्त्र- धारी, छबीले, हाथों में बाण युक्त धनुष धारण किये, (जिन की) कमर में भारी उत्तम तरकस (शोभा देता है). खिले हुए कमल के समान बड़े नेत्र वाले, जटाजूट से शोभायमान, सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ, मार्ग में जाते हुए, आनन्ददायी (राम का) मैं भजन करता हूं ॥

सरलार्थ—आनन्दपूर्ण, मेघ स्वरूप, पीताम्बर धारी, छबीले, धनुषधारी, कमल नयन, जटिल, सीय लषन सह मार्गगामी श्रीरामचन्द्रजी को मैं भजता हूं ॥

१ ३ २

सो०-*उमा रामगुन गूढ़, पण्डितमुनि पावहिं विरति।

६ ८ ७ ४ ६ ५

†पावहिं मोह विमूढ़, जे हरिविमुख न धर्मरति॥

अर्थ—महादेव जी कहते हैं कि हे पार्वती! श्री रामचन्द्र जी के चरित्र इतने गूढ़ हैं कि विद्वान् और मुनीश्वर उन्हें सुन कर वैराग्य को प्राप्त होते हैं, परन्तु जो मूर्ख हैं वे मोह के वश हो जाते हैं क्योंकि वे भक्त नहीं हैं और धर्मात्मा भी नहीं हैं।

"पावहिं मोह विमूढ़, जे हरिविमुख न धर्मरति" का दूसरा अर्थ—(पंडित और मुनीश्वर लोग वैराग्य को पाकर) मूर्ख से दिखाई देते हैं परन्तु वे 'हरि विमुख न' अर्थात् परमेश्वर से विमुख नहीं हैं पर 'धर्मरति' धर्म में लगे हुए हैं। जैसे हनुमान, कागभुशुण्डि आदि, जो वानर और काग का रूप धारण किये हुए भी परमभक्त हैं॥

२ ३ ६ १ ८ ७ ४ ५

चौ०-‡पुरनर-भरत-प्रीति मैं गाई। मतिअनुरूप अनूप सुहाई॥

* रामायण की कथा किन २ ने किन २ से कही है सो लिखते हैं। (१) शंकर जीने पार्वती से (२) शंकर जीने कागभुशुण्डि जी से, (३) कागभुशुण्डि नें गरुड़ से, (४) कागभुशुण्डि ने याज्ञवल्क्य से, (५) याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज से, (६) तुलसीदास जी के गुरु ने तुलसीदास से (७) तुलसीदास जी ने संतों से॥

† "पावहिं" दुबारा आकर कविता को भूषित करता है॥

‡ "पुरनर भरत प्रीति मैं गाई" किसी किसी रामायण में इसका पाठान्तर "पूरण भरत प्रीति मैं गाई" भी है। इसका अर्थ यह होता है कि भरत जी की प्रीति से परिपूर्ण जो अयोध्याकांड की कथा है उसका वर्णन मैं ने अपनी बुद्धि के अनुसार किया

यदि "अनूप सुहाई भरत प्रीति मैं पूरण गाई" ऐसा अन्वय किया जावे तो उसका अर्थ यह होगा कि मैंने भरत जी की अनुपम सुहावनी प्रीति को पूर्णरूप से वर्णन किया. परन्तु इसमें यह शंका उठेगी कि भरतजी की प्रीति को तो पूर्णरूप से ब्रह्मा विष्णु आदि भी नहीं कह सके, तो फिर तुलसीदासजी कैसे कह सके, क्योंकि वे ही अयोध्याकांड में यों लिख आये हैं कि:—

"अगम सनेह भरत रघुवर को। जहँ न जाय मन विधि हरि हर को"॥

इसलिये यह ठीक नहीं।

किसी किसी पुस्तक में यह पाठ है "पुरजन भरत प्रीति मैं गाई" और किसी किसी में "पूरब भरत प्रीति मैं गाई।" अर्थ स्पष्ट है।

सूचना—इस कथन से गोस्वामी जी आरण्यकांड की कथा का सम्बन्ध अयोध्याकांड की कथा से मिलाते हैं सो यों कि अयोध्याकांड में श्री रामचन्द्र जी पर भरत जी की विशेष प्रीति तथा अयोध्यावासियों की प्रीति का वर्णन किया गया है ॥

अर्थ—(तुलसीदास जी कहते हैं कि) मैं ने अयोध्यावासियों तथा भरत जी की उपमा रहित सुहावनी प्रीति (जो श्री रामचन्द्र जी पर थी) अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन की ॥

१ २ ४ ५ ३ ६ ६ ७ ८

चौ०-अब प्रभुचरित सुनहु† अतिपावन। करतजेबन‡ सुरनरमुनिभावन ॥

अर्थ—अब प्रभु के अति पवित्र चरित्रों को सुनो जो उन्हों ने बन में देवताओं, मनुष्यों और मुनियों की प्रसन्नता के हेतु किये है ॥

१ ५ ४ ३ ६ ७ २ ८

चौ०—एक बार चुनि कुसुम सुहाये। निजकर भूषण राम बनाये ॥

३ ४ १ २ ७ ६ ५

†सीतहि पहिराये प्रभु सादर। बैठे फटिकशिला पर सुन्दर* ॥

† 'अति पावन' कहने का अभिप्राय यह है कि ईश्वर के चरित्र तो सदा ही पवित्र होते हैं परन्तु आरण्यकांड में श्री रामचन्द्र जी ने "सकल मुनिन के आश्रमन्ह, जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥" अर्थात् श्री रघुनाथ जी ने अनेक मुनि आदि भक्तों के स्थानों पर जा जाकर भक्ति मुक्ति दी है इसलिये अति पवित्र कहा है ॥

‡ ये चरित्र प्रभु ने बन में किये हैं इस कारण इस काण्ड का नाम "बनकाण्ड" अथवा "आरण्यकाण्ड किंवा अरण्यकाण्ड" हुआ ॥

† "सीतहिं पहिराये इत्यादि—श्री रामचन्द्र जी ने अपने हाथ से पुष्पों के आभूषण बना कर सीता जी को पहिराये। उसका कारण यह है कि रावण दो प्रकार से बलवान् है, एक तो शिवजी की पूजन से और दूसरे आदिशक्ति की भक्ति से। सो शिव जी की पूजन तो प्रथम ही अयोध्याकाण्ड में श्री गंगा जी के पार उतर रामचन्द्र जी कर चुके हैं। यथा;—

"तब मज्जन करि रघुकुलनाथा। पूजि पार्थिव नायउ माथा ॥"

और सीताजी को जो आदिशक्ति का अवतार हैं, अब भूषणादि पहिनाकर प्रसन्न करते हैं।

* कहीं २ "परभाधर" ऐसा पाठ भी है इसका अर्थ परभा (प्रभा) = शोभा और धर = धारण करने वाले हुआ।

अर्थ—एक समय श्रीरामचन्द्र जी ने मनोहर फूल इकट्ठे कर अपने हाथों से आभूषण बनाये। फिर प्रभुजी उन्हें आदरपूर्वक सीता जी को पहिना कर स्वच्छ चट्टान पर सुशोभित हुए॥

१ ३ ५ ४ २ ८ ६ ७

चौ०—†सुरपति-सुत धरि वायस बेखा‡। शठ चाहत रघुपतिबलदेखा॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महामन्दमति पावन चाहा॥

अर्थ—देवताओं के राजा इंद्र के मूर्ख लड़के (जयन्त) ने कौए का रूप धारण कर श्री रामचन्द्र जी के बल को देखना चाहा। जिस तरह चींटी समुद्र की थाह लेना चाहे तो (हो नहीं सक्ता) इसी तरह वह महामूर्ख जयन्त श्रीरामचन्द्र जी की गंभीरता का पता लगाना चाहता था॥

४ १ ३ २

चौ०—सीताचरन चोंच हति भागा। मूढ़ मन्दमति कारन कागा॥

अर्थ—वह मूर्ख कागरूप बुद्धिहीन होने के कारण सीता जी के चरण में चोंच मारकर भागा॥

दूसरा अर्थ—(कोई ऐसा कहते हैं कि) सीताजी के शरीर में चरण और चोंच मार के भागा; क्योंकि कौए का स्वभाव ही होता है कि वह कभी पांव के नख मार देता है और कभी चोंच चलाता है॥

---

† सुरपति सुत धरि वायस बेखा--इस पर कोई कोई यह शंका कर बैठते हैं कि जयंत ने श्रीरामचन्द्र जी के बल की परीक्षा क्यों करनी चाही और उसका समाधान यों करते हैं कि-एक समय जयंत की स्त्री अपनी सखी सहेलियों समेत श्रीरामचन्द्र जी के दर्शनों को चित्रकूट आई थी और उनकी वंदना कर मनवांछित वरदान पाकर लौट गई। यह बात जब जयन्त ने जानी तब वह उनकी परीक्षा हेतु कौए का रूप धरकर आया। इसी की कथा किसी किसी रामायण में क्षेपक के रूप में यों लिखी है:—

चौ०—करहिं प्रकाश सुभग मणिझारी। रही छिटक पूनो उजियारी॥
तेहि निशि नारि जयंता केरी। आई सँग ले सुमुखि घनेरी॥
रघुपति रूप विलोकि जुड़ानी। अस्तुति कीन्ह मनोहर बानी॥
मन भावत वर माँग सिधाई। सो सुधि कतहुँ जयता पाई॥

‡ कौए का भेष धारण करने का कदाचित् यह कारण है कि कौआ प्रतिदिन प्रायः प्रत्येक घर में जाने वाला स्वतंत्र और धूर्तपक्षी है, कहावत प्रसिद्ध है कि नरों में "नौआ" पक्षियों में 'कौआ' धूर्त्त होते हैं॥

२ १ ३ ४

चौ०—चला रुधिर रघुनायक जाना । सींक†धनुष-शायक संधाना ॥

अर्थ—जब सीता जी के शरीर से रक्त बह निकला तब श्री रामचन्द्र जी ने जानलिया और उन्हों ने तिनके ही का बाण धनुष में लगाया ॥

२ १ ३

दो०—अतिकृपाल रघुनायक, सदा दीन पर नेह ।

२ ४ ३ १

तासन आइ कीन्ह छल, मूरख अवगुनगेह ॥ १ ॥

अर्थ—श्री रामचंद्र जी बड़े दयालु हैं, वे गरीबों पर सदैव प्रेम रखते हैं। उस मूर्ख दुर्गुणी ने आकर उन से भी छल किया ॥

* चला रुधिर रघुनायक जाना—जब रक्त बह निकला तब श्रीरामचन्द्र जी ने जाना उसके पूर्व क्यों नहीं ? इस शंका का समाधान यह है कि श्रीरामचन्द्र जी सीता जी की गोद में शिर रख कर सो रहे थे, जब रक्त बहा, तब वह उनके शरीर में लगा, इस से उनकी नींद खुली। लोगों का यह भी कहना है कि इस अवसर में लक्ष्मण जी बन में फल फूल लेने को चले गये थे, कौए ने चोंच मारने के लिये यह अच्छी सन्धि पाई थी ॥

† सींक धनुष शायक संधाना—जिस प्रकार जयंत श्रीरामचन्द्र जी की जांच के लिये आया था, उसी प्रकार उन्हों ने भी तिनका ही से बाण का काम लिया। यही आशय पंचतंत्र में लिखा है—

'तृणेन कार्यं भवतीश्वराणां, किमंग वाग्हस्त वतानरेण'

अर्थात् सामर्थ्यवान् जब अपना काम केवल तिनका ही से कर सक्ते हैं तो उन्हें यदि वाणी और हाथ वाले (अर्थात् सब इन्द्रियों से समर्थ) मनुष्य की सहायता मिल जावे तो फिर कार्य सिद्ध होने में क्या सन्देह है ॥

दोहा नम्बर एक के बाद का क्षेपक--

बिनऽपराध प्रभु हतैं न काहू । अवसर परे ग्रसै शशि राहू ॥
जब प्रभु लीन्ह सींक धनु बाना । क्रोध जानि भा अनलसमाना ॥

अर्थ—ईश्वर बिना दोष के किसी को नहीं मारते, देखो समय पाकर राहु भी चन्द्रमा को ग्रहण लगाता है। जब रामचन्द्र जी ने सींक का बाण धनुष में लगाया तो वह (परमेश्वर के) क्रोध को समझ कर अग्नि के तुल्य होगया ॥

इसी क्षेपक में राहु का उल्लेख है, सो पुरौनी में मिलेगा ।

३ २ १ ४ ५ ७ ६ ५

चौ०-प्रेरितमंत्र ब्रह्मशर धावा । चला भाजि वायस भयपावा ॥

२ १ ४ ३ ५ ८ ६ ७

धरि निजरूप गयउ पितु पाहीं । रामविमुख राखा तेहि नाहीं ॥

अर्थ—ब्रह्ममंत्र की प्रेरणा से ज्यों हीं बाण चला त्योंहीं कौआ भयभीत हो भागा । अपना निजरूप अर्थात् जयन्त नाम का देवस्वरूप धारण कर अपने पिता (इन्द्र) के पास गया, परन्तु ईश्वर से विरुद्ध होने के कारण उन ने भी उसे शरण न दी ॥

२ १ ५ ३ ४ ६ ६ ८ ७

चौ०-भा निराश उपजी मन त्रासा । यथा चक्रभय ऋषि दुर्वासा* ॥

३ ५ ४ २ १

ब्रह्मधाम शिवपुर सब लोका । फिरा श्रमित व्याकुल भयशोका ॥

अर्थ—(उसकी) सब आशा टूट गई और उस के हृदय में बड़ा खेद हुआ । जिस तरह से दुर्वासा ऋषि को विष्णु के चक्र से भय उत्पन्न हुआ था । जयन्त डर और दुःख से घबराया हुआ ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि कई लोकों में भटकता फिरा ॥

१ ३ ५ ४ २ ८ ७ ६ ६

चौ०-काहू बैठन कहा न ओही । राखि को सकइ राम कर द्रोही ॥

३ ४ ६ ५ २ ६

मातु मृत्यु पितु शमनसमाना । सुधा होइ विष सुनु हरियाना ॥

अर्थ—परन्तु किसी ने उसे बैठने तक को न कहा क्योंकि ईश्वर के अपराधी को कौन शरण में रख सक्ता है ? (कागभुशुण्डि जी कहते हैं) हे गरुड़जी सुनो ! माता मौत के समान, पिता यम के सदृश और अमृत विष के तुल्य हो जाता है ।

* दुर्वासा की कथा—राजा अम्बरीष एकादशी का व्रत कर द्वादशी में ब्राह्मणों को भोजन कराय पारण करते थे । एकबार दुर्वासा ऋषि राजा के यहां आये, ऋषि स्नानों को गये और बड़ी देर तक स्नान करते रहे । राजा ने द्वादशी बीतती जान ब्राह्मणों की सलाह से बिष्णु का चरणोदक पी लिया जिसमें व्रत भंग न हो । और दुर्वासा की राह देखने लगे । दुर्वासा जी ने आते ही प्रश्न किया कि द्वादशी बीत गई तुम ने व्रत कैसे पूरा किया । उन्हों ने चरणोदक का वृत्तान्त कह सुनाया । इस पर दुर्वासा क्रोधित होकर शाप देने को तत्पर हुए । विष्णु का भेजा सुदर्शन--चक्र दुर्वासा के पीछे लगा । ये भागकर विष्णु की शरण में गये, विष्णु ने उन्हें अम्बरीष के पास भेज कर उन्हीं से क्षमा दिलवाई ।

सो यौंकि—

दो०—अम्बरीष पायन परत, मुनिबर के तब धाइ ।
दोऊ गरत गलानि सों, हिये सोच सरसाइ ॥

१ ३ २ ४

चौ०—मित्र करइ शत रिपु की करनी । ता कहँ विबुधनदी वैतरनी* ॥

४ ५ ६ ३ २ १

सब जग तेहि अनलहु तें ताता । जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता ॥

अर्थ—उस का मित्र इस प्रकार से उस के साथ वर्ताव करता है मानो सौ बैरी हों और देवताओं की नदी (गंगा जी) उस को वैतरणी नदी के तुल्य हो जाती हैं। हे भाई सुनो ! जो ईश्वर से बैर करता है तो सब संसार उसे अग्नि से भी अधिक गर्म अर्थात् दुखदाई हो जाता है ॥

३ ४ २ १

दो०—जिमि जिमि भाजत शक्रसुत, व्याकुल अति दुखदीन ।

५ ६ ७ ८ ९

तिमि तिमि धावत रामशर, पाछे परम प्रवीन ॥ २॥

अर्थ—घबराया हुआ दुखित इन्द्र का लड़का (जयन्त) ज्यों ज्यों भागता फिरता था, त्यों त्यों अति चतुर रामबाण पीछे ही पीछे लगा चला जाता था ॥

१ ४ ३ २ ७ ६ ५

चौ०—†नारद देखा विकल जयन्ता । लागि दया कोमलचित सन्ता ॥

अर्थ—नारद मुनि ने जब जयन्त को घबराया हुआ देखा तो दयालु प्रकृति के संत होने के कारण उन के हृदय में दया आई ॥

४ २ ३ १ ६ ५ ७ ८

चौ०—पठवा तुरत राम पहँ ताही । कहेसि पुकारि प्रनतहित पाही ॥

शब्दार्थ—पाही=रक्षा करो ।

---

* वैतरनी—हिन्दुओं के मतानुसार २१ नरकों में से वैतरणी एक घोर नरक की नदी है जिसे लांघकर पापी जीवों को (शरीर छोड़ने के पश्चात्) धर्मराज के पास जाना पड़ता है। गोदान करने वाला जीव उसी गौ की पूँछ के सहारे अथवा गोदान के प्रभाव से नौका में बैठकर वैतरणी बिन प्रयास पार हो जाता है, [देखो गरुड़पुराण अध्याय दूसरा, चौथा और आठवां] ॥ नरकों की संख्या कहीं २८ और कहीं ८६ तक लिखी है। दोहे के पश्चात् का क्षेपक।

चौ०—बचहिं उरग बरु ग्रसै खगेशा । रघुपति शरछुटि बचब अंदेशा ॥

† नारद देखा विकल जयंता । लागि दया कोमलचित संता—के पश्चात् का क्षेपक नीचे लिखा है और नारद का जीवनचरित्र पुरौनी में है ॥

दूरिहिं ते कहि प्रभु प्रभुताई । भजे जात बहुविधि समझाई ॥

अर्थ—उसे तुरन्त रामचंद्र जी के पास जाने को कहा। जयन्त ने पुकार के कहा कि "हे शरणागतों पर कृपा करने वाले मेरी रक्षा करो"॥

१　　२　　५　　४　　२　　७　　　　　६

चौ०—आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयालु रघुराई॥

२　　　　　　　१　　४　　३　　५

अतुलितबल—अतुलित—प्रभुताई। मैं मतिमंद जानि नहिं पाई॥

शब्दार्थ—त्राहि=रक्षा करो॥

अर्थ—फिर जल्दी से जाकर डरते डरते प्रभु के चरण गहे और कहा हे कृपालु रघुराई "रक्षा करो, रक्षा करो" मैं मूर्ख आप के बड़े भारी बल और अत्यन्त अधिक महिमा को जान नहीं सका॥

१　　　　　　२　३　५　　　४

चौ०—निजकृत कर्म जनित फल पायउँ। अब प्रभु पाहि शरण तकिआयउँ॥

४　२　　　३　　　　५　　　　१

सुनि कृपालु अति आरत बानी। एक नयन करि तजा भवानी॥

अर्थ—मैं अपने किये हुए कर्मों का फल पा चुका हूं, अब हे प्रभु! मैं आपकी शरण में आया हूं, मेरी रक्षा कीजिये। (महादेव जी कहते हैं) हे पार्वती! दयालु श्री रामचन्द्र जी ने ऐसी अति दीन वाणी सुनकर उसे एक आंख फोड़ कर छोड़ दिया॥

३　　१　　२　　४　　५　　६　　७

सो०—कीन्ह मोहवश द्रोह, यद्यपि तेहि कर बध उचित।

१　　४　　३　　२　　७　　८　　५　　६

प्रभु छाड़ेउ करि छोह, को कृपालु रघुवीर सम॥३॥

अर्थ—जयन्त ने माया में फँस कर परमेश्वर से वैर किया, यद्यपि उसका मार डालना उचित था तथापि रामचन्द्र जी ने कृपा कर उसे छोड़ दिया। रामचन्द्र जी के समान कृपालु और कौन है? (कोई नहीं)

१　　　　३　　४　　　२

चौ०—रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किये श्रुति सुधासमाना॥

१　२　४　३　　　५　　१०　९　७　　६　　८

बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहिं मोहि जाना॥

अर्थ—रामचन्द्र जी चित्रकूट में रह कर कानों को अमृत के समान आनन्द देने वाले अनेक चरित्र करते रहे। फिर प्रभु जी ने मन में यह विचार बांधा कि सब लोगों ने जान लिया है कि मैं चित्रकूट में रहता हूं, इसलिये यहां अवधवासियों की भीड़ अवश्य हुआ करेगी ॥

चौ०—सकल मुनिन सन बिदा कराई। सीता सहित चले दोउ भाई ॥
अत्रि*के आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ ॥

अर्थ—(इसहेतु) राम और लक्ष्मण सब मुनियों से विदा मांग जानकी जी सहित आगे को चले। जब रामचन्द्र जी अत्रिमुनि के स्थान में गये, तब इनका आगमन सुन श्रेष्ठमुनि जी बहुत प्रसन्न हुए ॥

चौ०—पुलकितगात अत्रि उठि धाये। देखि राम आतुर चलि आये ॥
करत दंडवत मुनि उरलाये। प्रेमवारि दोउजन अन्हवाये ॥

अर्थ—अत्रि ऋषि का शरीर रोमांचित हो गया और वे उठ कर (रामचन्द्र जी से मिलने को) चले। उन्हें आते देख रामचन्द्र जी भी मिलने को जल्दी चले। जब रघुनाथ जी ने अत्रि मुनि को प्रणाम किया तो उन्होंने उन्हें हृदय से लगा लिया और दोनों जनों के नेत्रों से प्रेम के आँसू इस तरह बह निकले कि दोनों कुछ कुछ भीग गये ॥

* अत्रि—ब्रह्मा जी ने दक्ष आदि जो दशप्रजापति उत्पन्न किये थे, उन में से एक अत्रि जी थे। कहते हैं कि शंकर जी ने किसी कारण क्रोधित होकर इन्हें भस्म कर डाला था, परन्तु ब्रह्मा ने तपबल से इनको फिर अग्नि द्वारा उत्पन्न किया। इन महामुनि का नाम वेद की कई एक ऋचाओं में पाया जाता है। इन्होंने अनसूया जी से विवाह किया और इस सम्बन्ध से जो पांच सन्तान हुए, उनमें से दत्त, दुर्वासा और सोम प्रसिद्ध हैं ॥ बनवास के समय रामचन्द्र जी इन के आश्रम में पधारे थे। अत्रि जी ने "अत्रि संहिता" नाम की स्मृति बनाई है। ये उन सप्त ऋषियों में से भी हैं जिन्हें ज्योतिष के अनुसार उस ग्रहसमूह के तारे कहते हैं जो आकाश में उत्तर की ओर दिखाई देते हैं और सप्तऋषि (सप्तर्षि) के नाम से प्रसिद्ध हैं, साधारण लोग इस नक्षत्र समूह को "खटोलना" कहते हैं।

चौ०—देखि रामछबि नयन जुड़ाने । सादर निज आश्रम तब आने ॥
करि पूजा कहि बचन सुहाये । दिये मूलफल प्रभु मन भाये ॥

अर्थ—रामचन्द्र जी के मुख की शोभा देख मुनि को बड़ा संतोष हुआ, फिर वे उन्हें आदरपूर्वक अपनी कुटी में लिवा ले गये । उन्हों ने पूजा कर सुन्दर आधीनता के वचन कह करके भगवान को मनभावते कंद मूल फल दिये ।

सो०—प्रभु आसन आसीन, भरि लोचन शोभा निरखि ॥
मुनिवर परम प्रवीन, जोरि पानि अस्तुति*करत ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री रामचंद्र जी आसन पर विराजमान थे, बड़े चतुर मुनिश्रेष्ठ नयन भर उनकी सुन्दरता निहार हाथ जोड़कर प्रभु की स्तुति यों करने लगे ।

छन्द—†नमामि भक्तवत्सलं, कृपालु–शील–कोमलम् ।
भजामि ते पदाम्बुजं, अकामिनां स्वधामदम् ॥

शब्दार्थ—नमामि=मैं प्रणाम करता हूं । भक्तवत्सलं=भक्तों पर प्रेम रखने वाले । भजामि=मैं भजता हूं । ते=आपके । पदाम्बुजं=कमलस्वरूपी चरणों को । अकामिनां=इच्छारहित लोगों को । स्वधाम=अपना घर (वैकुण्ठ) । दं=देने वाले ।

अर्थ—भक्तोंपर प्यार करने वाले, दयालु, संकोची और नम्र स्वभाव वाले (श्री रामचंद्र जी को) मैं प्रणाम करता हूं । कामना रहित जनों को वैकुण्ठधाम देने वाले आप के कमलस्वरूपी चरणों का मैं ध्यान करता हूं ॥

* "अस्तुति" इस का शुद्धरूप "स्तुति है; छन्द पूर्त्ति के लिये कवियों को अधिकार है कि वे चाहें तो शब्द के साथ एक अक्षर बढ़ादें, चाहें घटादें; चाहें हिज्जे पलटदें, चाहें ह्रस्व को दीर्घ दीर्घ को ह्रस्व करदें । यथा-स्तुति को अस्तुति; उदधि सुत को दधिसुत; कृपा को करपा; प्रबन्ध को परबन्ध; हंस को हंसा; सीय को सिय; तुम्हारा को तुम्हार इत्यादि ।

† इस वृत्त को प्रमाणिका, प्रमाणिक अथवा नगस्वरूपिणी भी कहते हैं । इस का पिंगल विचार इसी पुस्तक के अन्त में देखो ॥

*निकाम-श्यामसुन्दरं, भवाम्बु-नाथमन्दरं ।
प्रफुल्लकञ्जलोचनं, मदादि-दोषमोचनं ॥

शब्दार्थ—निकाम=अत्यंत । भवाम्बु=संसार सागर । मंदरं=मंदर नाम का पर्वत । प्रफुल्लकञ्जलोचनं=फूले हुए कमल के समान नेत्रोंवाले । मदादि (मद+आदि)=अहंकार आदि । दोष=पाप । मोचनं=नाश करने वाले ।

अर्थ—अत्यंत श्यामले सुन्दर शरीर वाले आप संसाररूपी समुद्र को (मथन करने के हेतु) मंदराचल के सदृश हौ । फूले हुए कमल के समान नेत्रों वाले और काम क्रोध आदि संसार के दुःखों से छुड़ाने वाले (हौ) ॥

प्रलम्ब-बाहुविक्रमं, प्रभोऽप्रमेयवैभवं ।
निषङ्ग-चापशायकं, धरं त्रिलोकनायकं ॥

शब्दार्थ—प्रलम्ब=लम्बे । विक्रमं=बल । प्रभो=हे प्रभु, हे स्वामी । अप्रमेय=सीमारहित । वैभवं=ऐश्वर्य । निषङ्ग=तरकस । चापशायकं=धनुषबाण । नायकं=स्वामी ॥

अर्थ—हे स्वामी ! आप की लम्बी भुजाओं का पराक्रम (बड़ा है) और आप का ऐश्वर्य भी अपरंपार है । तरकस, धनुष और बाण धारण किये हुए आप तीनों लोक के स्वामी हैं ॥

दिनेशवंश-मण्डनं, महेशचाप-खंडनं ।
मुनीन्द्रसन्त-रञ्जन, सुरारिवृन्द-भञ्जनं ॥

शब्दार्थ—दिनेश (दिन+ईश)=दिन का स्वामी (सूर्य) । वंश=कुल । मंडनं=भूषण, शोभा । मुनीन्द्र (मुनि+इन्द्र)=मुनियों के इन्द्र (मुनि श्रेष्ठ) । रंजनं=प्रसन्न करने वाले । सुरारि (सुर+अरि)=देवताओं के शत्रु (राक्षस) । वृन्द=समूह । भञ्जनं=नाश करने वाले ॥

* निकाम=बहुत ही । यथा "निकामं क्षामांगी" अर्थात् बहुत ही क्षीण शरीर वाली
[मालती माधव से]

अर्थ—(आप) सूर्य के कुल की शोभा बढ़ाने वाले हैं और महादेव जी के धनुष को तोड़ने वाले हैं (सीता स्वयम्वर के समय)। (आप) बड़े बड़े मुनियों और सज्जनों के सुखदाता तथा राक्षसों के समूह के नाश कर्त्ता हौ ॥

*मनोजवैरि वन्दितं, अजादिदेव-सेवितम्
विशुद्धबोध-विग्रहं, समस्त †दूषणापहम्

शब्दार्थ—मनोज (मनः+ज)=मन से उत्पन्न होने वाला (कामदेव)। वैरि=शत्रु। मनोजवैरि=कामदेव के वैरी अर्थात् महादेव (क्योंकि इन्हों ने कामदेव को जलादिया था)। वंदितं=वन्दना किये गये। अजादि (अज+आदि)=ब्रह्मा आदि। विशुद्ध=अतिपवित्र। बोध=ज्ञान। विग्रहं=शरीर। समस्त=सम्पूर्ण। दूषण=दुःख। अपहं=नाश करने वाले।

अर्थ—[आप] कामदेव के। शत्रु जो शिव जी हैं उन से वन्दना किये गये हौ (अर्थात् महादेव जी आप का भजन करते हैं) और ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता भी आप की सेवा में तत्पर रहते हैं। आप का शरीर शुद्ध ज्ञानमय है और आप सम्पूर्ण दोषों के नाश करने वाले हैं ॥

* "मनोजवैरि" एक समय महाबली तारक राक्षस के त्रास से दुःखित हो देवता ब्रह्मा जी के पास गये। ब्रह्माजी ने देवताओं का दुःख दूर करने के हेतु यह उपाय बतलाया कि शिव जी जो अपनी अर्द्धाङ्गीसती के वियोग से ध्यान में मग्न हो रहे हैं और सती जी हिमांचल को पुत्री पार्वती हो अवतरी हैं यदि शंकरजी उन से विवाह करें तो इस सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ पुत्र तारकासुर का बध करेगा। इस उपदेश के अनुसार देवताओं ने कामदेव के द्वारा शिवजी के चित्तमें क्षोभ उत्पन्न कराने के उद्देश से प्रयत्न किया। कामदेव ने बसन्त ऋतु की सहायता ले महादेव जी के चित्त को चलायमान करने के सम्पूर्ण उपायों को निष्फल देख, अपने पुष्प बाणों का प्रयोग कर, शंकर जी की समाधि को कुछ चल विचल किया। ध्यान टला देख शिवजी ने क्रोधित हो अपने तीसरे नेत्र की अग्नि से कामदेव को भस्म कर डाला; परन्तु कामदेव की स्त्री रति का विलाप सुन उसे वरदान दिया कि आज से कामदेव का नाम अनंग [अर्थात् बे अंगवाला] होगा। वह जीवधारियों के मन में आप ही आप उत्पन्न हुआ करेगा इसलिये मनोज कहलायगा; और श्री कृष्ण जी का पुत्र प्रद्युम्न होकर फिर तुम्हारा पति होगा॥ इसी प्रसंग के पश्चात् शिव जी का नाम "मनोजवैरि" हुआ॥ (सविस्तर कथा तुलसीकृत बालकाण्ड रामायण में है)॥

† "दूषणापहम्" के स्थान किसी किसी पुस्तक में "दुःखतापहं" लिखा है जिसका अर्थ "दुःख और त्रास के नाशक हौ" ऐसा होता है॥

४ ३ १ २
नमामि*इन्दिरापतिं, सुखाकरं सतां गतिम् ।
३ १ २
भजे सशक्तिसानुजं †शचीपतिप्रियानुजम् ॥

शब्दार्थ—नमामि=मैं प्रणाम करता हूं । इन्दिरा=लक्ष्मी । पति=स्वामी । सुखाकरं (सुख + आकरं)=सुखकी खदान । सतांगतिं=जहां पर सज्जनों की पहुंच होती है । स=सहित । शक्ति=सीता जी । सानुजं=भाई (लक्ष्मण) सहित ॥ शचीपति=इन्द्रानी के पति (इंद्र) । प्रियानुजं (प्रिय + अनुजं)=प्यारे भाई ॥

अर्थ—सुख की जड़ और सज्जनों को मोक्ष देने वाले लक्ष्मी के पति आप को मेरा प्रणाम है । सीता सहित और लक्ष्मण के साथ आप का मैं भजन करता हूं । इंद्र आपको प्यारे भाई के समान हैं (अर्थात् इंद्र पर आप विशेष प्रेम रखते हैं) ॥

३ १ ४ ५
त्वदंघ्रिमूल ये नरा, भजन्ति हीनमत्सराः ।
८ ७ ६ ५
पतन्ति नो भवार्णवे, वितर्कवीचि संकुले ॥

शब्दार्थ—त्वत्=तुम्हारी । अंघ्रि=पांव या पांव का अंगूठा । मूलं=उसकी तली । ये=जो । नरा=मनुष्य । हीनमत्सराः=मत्सर को छोड़ के । पतंति=गिरते हैं । नो=नहीं । भवार्णवे (भव + अर्णव)=संसार रूपी समुद्र में । वितर्क=तरह तरह के कुतर्क । वीचि=लहर । संकुले=भरे हुए ॥

अर्थ—जो मनुष्य मत्सर को छोड़ आप के अंगूठे की तली को भजते हैं वे नाना कुतर्कनारूपी लहरों से भरे हुए संसाररूपी समुद्र में नहीं पड़ते (अर्थात् जो आप के चरणों में चित्त लगाते हैं वे भवसागर के पार जाते हैं)

---

* "इन्दिरा" अर्थात् लक्ष्मी, इनके और भी नाम हैं [देखो अमर कोष]

लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया ।
इन्दिरा लोकमाता मा क्षीरोदतनया रमा ॥
भार्गवी लोकजननी क्षीरसागरकन्यका ।

† "शचीपतिप्रियानुजम्" कोई कोई इसका अर्थ यों करते हैं कि "आप इन्द्र के छोटे भाई के समान हो" और इस के अर्थ को यों पुष्ट करते हैं कि जब जब महाबली राक्षस इन्द्र से राज्य छीन पृथ्वी पर घोर पाप करने लगते हैं तब तब आप इन्द्र की सहायता करने के हेतु अवतार धारण कर पथ्वी का भार उतार इन्द्र को फिर स्वर्ग का राज्य दे देते हैं—जैसे वामन अवतार ले राजा बलि को पाताल पठाया और रामरूप धारण कर रावण का वध किया ॥

१ ३ ४ २
* विविक्तवासना सदा, भजन्ति† मुक्तये मुदा ।
७ ६ १० ५ ९ ८
निरस्य इन्द्रियादिकं, प्रयान्ति ते गतिं स्वकाम् ॥

शब्दार्थ—विविक्त=छोड़ कर । वासना=ममता, मोह । भजन्ति=भजन करते हैं । मुदा=आनन्दपूर्वक । निरस्य=छोड़कर । प्रयान्ति=पाते हैं । ते=तुम्हारी स्वकाम्गतिं (स्वकाम=निज की+गतिं=दशा)=निज की गति अर्थात् मोक्ष ॥

अर्थ—जो लोग सांसारिक वासना त्याग करके हर्ष से मुक्ति के लिये आप का सदा भजन करते हैं वे लोग विषयआदि का त्याग करके आप की निजगति को पाते हैं (अर्थात् ममता छोड़ आप को भजने वाला मुक्ति पाता है) ॥

त्वमेकमद्भुतं प्रभुं, निरीहमीश्वरं विभुम्
जगद्गुरुं च शाश्वतं, तुरीयमेव केवलम्

अन्वय—त्वम् , एकम् , अद्भुतम् , प्रभुं, निरीहम् , ईश्वरम् , विभुम्, जगद्गुरुं च-शाश्वतं, तुरीयम् एव केवलम् ॥

शब्दार्थ—त्वम=तुम (आप) । एकम्=एक । निरीहम् (निः+ईह)=इच्छा रहित । विभुम्=सर्वव्यापक । जगद्गुरुम्=संसार के गुरु । शाश्वतं=सनातन, सदैव रहने वाले । तुरीयम्=वह चौथी अवस्था जो जाग्रत (जागने), सुषुप्ति (सोने) और स्वप्न अवस्थाओं से भिन्न अर्थात् समाधि के समान है । एव=ही । केवलं=एकही ॥

अर्थ—आप एक हो, अद्भुत स्वरूप हो, स्वामी हो, इच्छा रहित हो, ईश्वर हो, सर्वव्यापी हो । संसार के गुरु सदैव रहने वाले हैं और आप की केवल तुरीय अवस्था है (अर्थात् आप की अवस्था जागने की, सोने की या स्वप्न देखने की अवस्थाओं से अलग ही है) ॥

६ १ २
भजामि भाववल्लभं, कुयोगिनां सुदुर्लभम्
३ ४ ५
स्वभक्त कल्प पादपं, समस्त सेव्यमन्वहम्

---

* "विविक्तवासना" का पाठान्तर "विविक्तवासिनः" है जिसका अर्थ "एकान्तवासी" होता है ॥

† "मुक्तये" के स्थान में कहीं कहीं "मुक्तिदं" है और इस का अर्थ "मुक्ति के देने वाले" होता है ॥

शब्दार्थ—भाववल्लभं=भक्ति भाव के रुचिया। कुयोगिनां=दुष्ट पापियों को। दुर्लभं=अप्राप्य, न मिलने वाले। स्वभक्त=अपने भक्तों (को)। कल्पपादपं=कल्पवृक्ष अर्थात् वह वृक्ष जिसके नीचे बैठ कर जो इच्छा करै सो पूरी हो। सेव्य=सेवा करने के योग्य। अन्वहं=दिनों दिन या सदैव।

अर्थ—भक्तों के चाहने वाले और दुष्ट पापियों से दूर रहने वाले, अपने भक्तों की सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध करने वाले और सब प्राणियों से सेवा किये जाने के योग्य आपको मैं भजता हूं॥

अनूपरूप-भूपतिं, नतोऽहमुर्विजापतिं।
प्रसीद मे नमामि ते, पदाब्जभक्ति देहि मे॥

अन्वय—अनूपरूपभूपतिं, उर्विजापतिं अहम् नतः मे प्रसीद, ते नमामि, मे पदाब्जभक्ति देहि॥

शब्दार्थ—नतोऽहम् (नतः=प्रणाम करता हूं+अहं=मैं)=मैं प्रणाम करता हूं। उर्विजापतिं (उर्वि=पृथ्वी+जा=पैदा हुई+पतिम्=स्वामी)=पृथ्वी से पैदा हुई सीता उनके पति को। मे=मुझ पर। प्रसीद=प्रसन्न हो। पदाब्ज=चरणकमल। देहि=दीजिये। मे=मुझे॥

अर्थ—आप का राजकीय स्वरूप उपमा रहित है, सीता जी के पति आप को मेरा प्रणाम है। मुझ पर प्रसन्न हूजिये, मैं आप को प्रणाम करता हूं, मुझे चरण कमलों की भक्ति दीजिये॥

पठन्ति ये स्तवं इदं, नरादरेण ते पदम्।
व्रजन्ति नात्र संशयः, त्वदीय भक्ति संयुताः॥

अन्वय—येनराः आदरेण इदं स्तवं पठन्ति, त्वदीय भक्ति संयुताः ते पदं व्रजन्ति अत्र संशयः न॥

शब्दार्थ—पठन्ति=पढ़ते हैं। ये=जो। स्तवं=स्तोत्र [को]। इदं=इसे। आदरेण=आदरसहित। व्रजन्ति=पहुंचते हैं। त्वदीय=तुम्हारी [आपकी]। भक्ति संयुताः=भक्ति सहित। अत्र संशयः न=इस में सन्देह नहीं है॥

अर्थ—जो लोग आदरपूर्वक इस स्तोत्र को पढ़ते हैं वे आप की भक्ति सहित आप के पद को प्राप्त होते हैं इस में सन्देह नहीं है॥

दोहा-विनती करि मुनि नाइ सिर, कह कर जोरि बहोरि।
चरनसरोरुह नाथ जनि, कबहुँ तजइ मति मोरि॥५॥

अर्थ--मुनि ने विनती की, फिर शीश नवाय हाथ जोड़ कहा कि हे प्रभु! मेरी बुद्धि आप के चरण कमलों को कभी न छोड़ै। (अर्थात् मैं सदा आप का भजन करता रहूं)॥

चौ०-*अनसूया के पद गहि सीता। मिलीबहोरि सुशील विनीता॥

"अनसूया के पद गहि सीता"—इसके पहिले का क्षेपक—

चौ०—जन्म जन्म तवपद सुखकन्दा। बढ़ प्रेम चकोर जिमि चन्दा॥
देखि राम मुनि विनय प्रनामा। विविध भाँति पायउ विश्रामा॥

अर्थ—आप के सुखदाई चरणों में मेरा प्रेम प्रत्येक जन्म में इस प्रकार बढ़ै जैसे चकोर की प्रीति चंद्रमा में बढ़ती है [तुलसीदास जी कहते हैं कि] रामचन्द्र जी मुनि के नाना प्रकार की नम्रता से भरे हुए प्रणाम को देख कर प्रसन्न हुए॥

* अत्रि मुनि की स्त्री अनसूया जी पतिव्रताओं में अति श्रेष्ठ और अग्रगण्य हैं। वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड में रामचन्द्र जी ने श्रीमुख से अनसूया जी की प्रतिष्ठा जानकी जी के प्रति वर्णन की है। इन के प्रशंसनीय पातिव्रत्य का प्रभाव दो एक कथाओं से प्रकट होगा।

(१) एक बार उमा, रमा, ब्रह्माणी ने नारद मुनि से अनसूया के पातिव्रत्य की प्रशंसा सुन अपने अपने पति को उस की परीक्षा लेने के हेतु भेजा। त्रिदेव अतिथिवेष धारण कर अनसूया जी के पास, अत्रि जी की अनुपस्थिति में पहुंचे और अपने अतिथि सत्कार के लिये कहा कि हम लोगों को बिना अग्नि जल के सहारे पकाई हुई धूल को नग्न होकर अपने हाथों से खिलाओ। यह सुन अनसूया जी ने तप बल से तीनों देवों का यह भेद जान उन्हें बालक बना लिया और पालने में लिटा कर उन का इच्छित आतिथ्य सात दिन तक किया। विधात्री, लक्ष्मी और पार्वती जी के प्रार्थना करने पर अनसूया जी ने तीनों बालकों को ज्यों का त्यों ब्रह्मा, विष्णु, महेश बनाय क्रम से तीनों के सन्मुख किया और वे अपने पतियों को पा, अनसूया जी के पातिव्रत्य और शील स्वभाव की प्रशंसा करती हुई स्वधाम को सिधारीं॥ (देखो रामरसायन रामायण)

(२) एक समय दशवर्ष की अनावृष्टि के कारण जब सम्पूर्ण प्राणी अन्न जल के अभाव से अति व्याकुल हो रहे थे, तब अनसूया जी ने जल और कंद मूल फल आदि उत्पन्न कर असंख्य प्राणियों की रक्षा की थी॥

(३) एक कथा ऐसी है कि माण्डव्य ऋषि पूर्व जन्म के कर्मों के प्रायश्चित्त में जब कि शूली पर चढ़ाये जा रहे थे तब किसी पतिव्रता ऋषि पत्नी के (जो अपने पति को कांधे पर लिये जा रही थी) धक्का लगने से क्रोधित हुए और शाप दिया कि जिस पति के ध्यान में तू ऐसी मदान्ध है वह प्रातःकाल मर जायगा। स्त्री पतिव्रता थी उस ने दश दिन तक सूर्योदय ही न होने दिया॥ देवता आदि घबराकर उस ऋषि पत्नी की सखी अनसूया जी के पास गये और अनसूया जी ने अपने पातिव्रत्य के प्रभाव से सूर्य को उदय कराया और अपनी सखी के पति को भी (जो प्रातःकाल होते ही माण्डव्य के शाप के कारण मर गया था) तुरन्त जिला दिया। धन्य है ऐसे पातिव्रत्य के अकथनीय प्रभाव और प्रताप को॥

अर्थ—फिर अच्छे स्वभाव वाली विनय-युक्त सीता जी ने अत्रि की स्त्री अनसूया के पैर पड़े और वे उनसे मिलीं॥

चौ०—*ऋषिपतनी मन सुख अधिकाई। आशिष देइ निकट बैठाई॥
†दिव्य वसन भूषन पहिराये। जे नित नूतन अमल सुहाये॥

* ऋषि पतनी मन सुख अधिकाई। इत्यादि—इसके पहिले का क्षेपक यह है—

चौ०—जो सिय सकल लोक सुखदाता। अखिल लोक ब्रह्माण्ड की माता॥
ते पाई सिय मुनिवर भामिनि। सुखी भई कुमुदिनि जिमि यामिनि॥

अर्थ—जो सीता जी सम्पूर्ण जनों को (माता के समान) आनन्द देने वाली हैं और सम्पूर्ण भुवनों और ब्रह्माण्डों की उत्पन्न करने वाली हैं। ऐसी सीता जी को पाकर मुनि जी की प्रशंसनीय स्त्री (अनसूया) ऐसी प्रफुल्लित हुई जैसी कुमुदिनी रात्रि [के समय] चन्द्र को पाकर प्रफुल्लित होती है॥

दूसरा अर्थ—[दूसरी अर्द्धाली का] यह है कि "ऐसी सीता जी मुनि जी की प्रशंसनीय स्त्री को देख कर इस प्रकार प्रसन्न हुईं जिस प्रकार रात्रि में चन्द्र को पाकर कुमुदिनी प्रसन्न होती है [ऐसा अर्थ करने में अधिक विशेषता यह जान पड़ती है कि सब को सुख देने वाली सीता जी भी मुनि पत्नी को पाकर प्रेम में मग्न हुई परन्तु उपमान उपमेय का सम्बन्ध विशेषणों के कारण संघटित नहीं होता है]।

इस चौपाई में लोक शब्द दो बार आया है जो पुनरुक्ति न होकर श्लेष है। पहिले लोक का अर्थ जन (मनुष्य और दूसरे का भुवन है। अमरकोष में कहा है "लोकस्तुभुवनेजने"

† दिव्य वसन भूषन पहिराये—के पश्चात् का क्षेपक—
जाहि निरखि दुख दूर पराहीं। गरुड़ जानि जिमि पन्नग जाहीं॥

शब्दार्थ—पन्नग (पद = पांव + न = नहीं + ग = जाना) = जो पाँव से न चले अर्थात् सर्प।

अर्थ—जिन वस्त्रों को देखते ही सम्पूर्ण दुःख दूर भाग जाते हैं। जैसे सर्प गरुड़ को देख भाग जाते हैं।

ब्रह्मा के नाती कश्यप की अनेक स्त्रियों में से एक "कद्रू" थी जो सर्पों की माता थी और दूसरी "विनता" जो गरुड़ और सम्पूर्ण पक्षियों की माता थी। एक समय कद्रू और विनता में इन्द्र के घोड़े उच्चैश्रवा की पूंछ का "रंग काला है या सफेद" इस पर होड़ लगी। विनता के कहे हुए सच्चे रंग को झूठा ठहराने के लिये कद्रू ने अपने पुत्र सर्पों को घोड़े की पूंछ से लटका कर काला कर दिखा दिया और वचनानुसार बिनता को दासी बना कर त्रास देने लगी। तब गरुड़ ने अपनी माता से कद्रू की सब कपट कथा सुन, विष्णु भगवान को प्रसन्न कर, उनसे यह वर माँग लिया कि मैं (गरुड़) सर्पों को खाऊँ और उनका विष मुझको न व्यापे। विष्णु जी ने बरदान दे दिया। तब से गरुड़ सर्पों के भक्षक और परम शत्रु हो अपनी माता के दुख का बदला लेने लगे॥ (देखो महाभारत आदि पर्व)॥ (दो०)

अर्थ--मुनि जी की स्त्री के मन में बड़ा सुख हुआ उन्हों ने सीता जी को आशीर्वाद दिया और अपने पास बैठा लिया। ऐसे स्वर्गीय वस्त्र आभूषण जो सदा नये निर्मल और सुहावने बने रहते हैं सीता जी को पहिराये ॥

चौ०-कह ऋषि बधू सरल मृदुबानी। नारिधर्म कछु ब्याज बखानी ॥

अर्थ--तब अनसूया जी सरल कोमल वाणी से नारी धर्म का कुछ थोड़ा सा हाल वर्णन करने लगीं ॥

चौ०-मात-पिता-भ्राता-हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमितदानि भर्त्ता वैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥

अर्थ--हे राजकुमारी सुनो! माता, पिता, भाई और हित करने वाले लोग केवल थोड़े ही समय तक सुख देने वाले हैं। परन्तु हे जानकी जी! पति अनन्त सुख का देने वाला है, जो स्त्री अपने पति की सेवा नहीं करती वह बड़ी पापिनी है ॥

चौ०-धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपतकाल* परखिये चारी ॥

अर्थ--धीरज, धर्म, मित्र और स्त्री, इन चारों की ठीक ठीक परीक्षा विपत्ति के समय हो जाती है ॥

चौ०-वृद्ध रोगवश जड़ धनहीना। अन्ध बधिर क्रोधी अतिदीना ॥
ऐसेहु पतिकर किय अपमाना। नारि पाव यमपुर दुखनाना ॥

[क्षे०] दो०—ऐसे वसन विचित्र सुठि, दिये सीय कहँ आनि।
सनमानी प्रिय वचन कहि, प्रीति न जाइ बखानि ॥

अर्थ—इस प्रकार से अद्भुत और उत्तम वस्त्र अनसूया जी ने सीता जी को दिये और मधुर वचन कह कर उनका आदर किया, उस प्रीति का वर्णन नहीं किया जा सका ॥

* कथा भाग लिखते समय बीच बीच में कहीं कहीं तुलसीदास जी ने नीति आदि, उपदेशक वाक्य कहे हैं उनमें से एक यह है। यथा :—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपत काल परखिये चारी ॥

महात्मा चाणक्य जी ने भी तो यही बात कही है। यथा :—

श्लोक—जानीयात्प्रेषणे भृत्यान्, बांधवान् व्यसनागमे।
मित्रं चापत्ति कालेतु, भार्यां च विभवक्षये ॥

अर्थात् काम में लगाने पर सेवकों की, दुख आने पर बांधवों की, विपत्तिकाल में मित्र की और विभव के नाश होने पर स्त्री की परीक्षा हो जाती है।

अर्थ—बुड्ढा, रोगी, मूर्ख, दरिद्री, अन्धा, क्रोधी, दुखी । ऐसा होने पर भी पति का अपमान करने से नारी यमलोक में अनेक प्रकार के दुःख पाती है ॥

चौ०—एकइ धर्म एक व्रत नेमा । काय वचन मन पतिपद प्रेमा ॥
जग*पतिव्रता चारि विधि अहहीं । वेद पुराण सन्त अस कहहीं ॥

अर्थ—स्त्री का एक ही धर्म, एक ही व्रत और नेम यह है कि शरीर से वाणी से, हृदय से, पति के चरणों में प्रेम लगावे । वेद और पुराणों में लिखा है और सज्जन लोग भी ऐसा कहते हैं कि संसार में चार प्रकार की पतिव्रता स्त्रियां होती हैं ।

दो०—उत्तम मध्यम नीच लघु, सकल कहौं समुझाय ।
आगे सुनहिं ते भव तरहिं, सुनहु सीय चितलाय ॥ ६ ॥

अर्थ—हे सीता जी ! मन लगा कर सुनो [पतिव्रता स्त्रियाँ] उत्तम, मध्यम, निकृष्ट और अधम [होती हैं] इन सब का हाल मैं समझा कर कहती हूं इसे जो स्त्रियाँ भविष्य में सुनेगीं वे संसाररूपी सागर से पार हो जावेगीं ॥

चौ०—उत्तम के अस बस मन माहीं । सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥
मध्यम परपति देखइ कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥

अर्थ—उत्तम पतिव्रता स्त्री के मन में सदा यह विचार बना रहता है कि संसार में दूसरा पुरुष सपने में भी नहीं है (अर्थात् वह अपने पति ही को सर्व श्रेष्ठ समझती है, दूसरे पुरुष को कुछ भी नहीं समझती) । मध्यम पतिव्रता स्त्री दूसरे के पति को इस प्रकार देखती है कि मानो वे उस के भाई या पिता या पुत्र के तुल्य हों [अर्थात् स्त्री अपने से बराबर अवस्था वाले दूसरे के पति को भाई के समान, अपने से बड़ी अवस्था वाले को पिता के समान और अपने से छोटी अवस्था वाले को पुत्र के समान देखती है]

चौ०—धर्म विचारि समुझि कुल रहई । सो निकृष्टतिय श्रुतिअसकहई ॥
बिन अवसर भय ते रह जोई । जानेहु अधम नारि जग सोई ॥

---

* धन्य है तुलसीदास जी को जिन्हों ने कुलकामिनियों के हेतु कितनी उत्तमशिक्षा सुयोग्य अनसूया जी द्वारा वर्णन कराई है । कवि पद्माकर जी ने भी अपनी जगद्विनोद नाम की पुस्तक में पतिव्रता (स्वकीया नायिका) के लक्षण यों कहे हैं:—

दोहा—निजपति ही के प्रेम मय, जाको मन बचकाय ।
कहत स्वकीया ताहि सों, लज्जा शील सुभाय ॥

कोई कोई कविजन पतिव्रता और स्वकीया को परस्पर के पर्य्यायवाची शब्द कहते हैं परन्तु उत्तमास्वकीया शब्द पतिव्रता के अर्थ में अधिक उपयुक्त है न कि मध्यमा और अधमा पतिव्रता के अर्थ में । (देखो काव्यकुसुमाकर द्वितीय भाग पृ० ३४) ॥

अर्थ--जो स्त्री धर्म का विचार कर या अपने कुल की मर्यादा रखने को पातिव्रत्य धर्म धारण करती है सो निकृष्ट प्रकार की पतिव्रता स्त्री है । वेद में ऐसा कहा गया है । जो स्त्री समय पा के अथवा पकड़े जाने के भय से पातिव्रत्य धर्म पालती है वह भी संसार में पतिव्रता है परंतु उसे अधम पतिव्रता समझना चाहिये ॥

चौ०-पतिवंचक परपति-रति करई । *रौरव नरक †कल्पशत परई ॥
क्षण सुखलागि जन्मशत कोटी । दुख न समुझि तेहिसम को खोटी ॥

अर्थ--जो स्त्रियाँ अपने पति को धोखा दे दूसरे के पति से प्रेम करती हैं वे सौ कल्प तक रौरव नाम के नरक में पड़ती हैं । जो स्त्री पल भर के सुख के लिये सौ करोड़ जन्म के दुःखों का विचार नहीं करती, उस के समान नष्ट और कौन है ?

चौ०-बिन श्रम नारि परमगति लहई । पतिव्रतधर्म छाँड़ि छल गहई ॥
पति प्रतिकूल जनमि जहँ जाई । विधवा होइ पाइ तरुणाई ॥

अर्थ--जो स्त्रियाँ छल को छोड़ पातिव्रत्य धर्म धारण करती हैं वे बिना ही परिश्रम मुक्ति को पा लेती हैं । पति से विरोध रखने वाली स्त्री जहाँ जाकर जन्म लेगी, वहीं जवानी की अवस्था में विधवा हो जायगी ॥

सो०-सहज अपावनि नारि, पति सेवत शुभगति लहइ ।
यश गावत श्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय‡ ॥

* रौरव—पुराणों में २१ प्रकार के नरक हैं । जैसे रौरव, कुम्भीपाक, अंधतामिश्र आदि ।

† कल्प—ब्रह्मा का एक दिन है । चारों युग (अर्थात् सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग) जब हज़ार बार हो जावें तब ब्रह्मा का एक दिन या कल्प समझा जाता है और इस की अवधि मनुष्यों की चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों की है ॥

‡ कहीं कहीं 'अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय" के स्थान में "अजहुँ तुलसी हरिहि प्रिय" "अजहुँ तुलसी हरि प्रिया" लिखा है । इस की कथा यों है—

जलन्धर नाम का एक राक्षस था उस की स्त्री वृन्दा बड़ी पतिव्रता थी । एक समय किसी कारण जलन्धर और महादेव जी से युद्ध हुआ, परन्तु जलन्धर अपनी स्त्री के पातिव्रत्य के कारण मारा नहीं जा सका था । तब शिव जी की सहायता के लिये विष्णु ने वृन्दा के पास जा उस का पातिव्रत्य भंग करने के लिये बहुत उपाय किये परन्तु वह विचलित नहीं हुई । निदान विष्णु ने जलन्धर के रूप द्वारा उस का व्रत भंग कराया, इसलिये

अर्थ—स्त्री स्वभाव ही से अपवित्र होती है परन्तु यदि वह अपने पति की सेवा करे तो उत्तम गति को पाती है। चारों वेद पातिव्रत्य की कीर्ति गा रहे हैं। देखो! तुलसी अभी तक विष्णु को प्यारी है (क्योंकि वह पूजा के समय आवश्यक है)॥

सो०—सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम, कहेउँ कथा संसारहित ॥ ७ ॥

अर्थ—जानकी जी सुनो! तुम्हारा तो नाम ही स्मरण करके स्त्रियाँ पातिव्रत्य धर्म पालन करती हैं। तुम्हें तो रघुनाथ जी प्राणों के समान प्यारे हैं, यह कथा मैं ने संसार के निमित्त कही है ॥

चौ०—सुनि जानकी परम सुख पावा। सादर तासु चरन शिर नावा ॥
तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयसु होइ जाउँ बन आना ॥

अर्थ—यह कथा सुन कर जानकी जी प्रसन्न हुईं और उन्हों ने आदर पूर्वक अनसूया जी को प्रणाम किया। तब मुनि जी से रामचन्द्र जी ने कहा जो आज्ञा होवे तो अब मैं दूसरे बन को जाऊं॥

चौ०—*सन्तत मो पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू ॥
धर्म धुरन्धर प्रभु की बानी। सुनि सप्रेम बोले मुनि ज्ञानी ॥

जलन्धर मारा गया। परन्तु जब वृन्दा को यह हाल मालूम हुआ कि विष्णु ने धोखा दिया तो उस ने विष्णु को शाप दिया कि जाओ तुम "पाषाण" (शालिग्राम की बटैया) होओ; क्योंकि तुम्हारा ऐसा बज्र हृदय है कि तुम मुझ अबला को धोखा देने में न सकाने। विष्णु इस शाप से अप्रसन्न न हुए बरन प्रसन्नता पूर्वक वृन्दा से बोले कि तुम "तुलसी" (तुलसी का वृक्ष) होओ और यदि लोग मेरे पाषाण-रूप शालिग्राम की बिना तुलसीपत्र के पूजा करेंगे तो निष्फल होगी। मैं तुम्हें अपने शिर पर धारण किये रहूंगा। देखो पातिव्रत्य-धर्म का ऐसा माहात्म्य है कि वृन्दा राक्षसी तुलसी बन कर विष्णु को सदा के लिये प्यारी हुई। पातिव्रत्य का बड़ा माहात्म्य है और सती स्त्री के पति का सदा कल्याण होता है। यथा :—

यस्य पत्नी भवेत्साध्वी पातिव्रत्य परायणा। स जयी सर्व लोकेषु स सुखी स धनी पुमान्॥

अर्थात् जिस की पत्नी पतिव्रता है और पति की सेवा में तत्पर है उस पुरुष की सब लोकों में जय होती है और वही पुरुष सुखी ऐश्वर्यवान् होता है (अनसूया की कथा भी देखो)॥

* सन्तत मोपर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू॥
इस में यह शंका होती है कि रामचन्द्र जी ने तो कहा था कि 'सेवक जानि

अर्थ—सदा मुझ पर कृपा करते रहियो और मुझे अपना सेवक जान कर प्रीति न छोड़ियो। धर्म में श्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी के वचनों को सुन ज्ञानी मुनि प्रीतिपूर्वक बोले॥

चौ०—जासु कृपा अज शिव सनकादी‡। चहत सकल परमारथवादी॥
ते तुम राम अकाम पियारे। दीनबन्धु मृदुवचन उचारे॥

अर्थ—जिस की कृपा को ब्रह्मा, शिव, सनकादि और सब यथार्थ ज्ञान सिखाने वाले चाहते हैं। ऐसे तुम राम, बिन प्रयोजन भक्तों के प्यारे और दीनजनों के बंधु होकर इस प्रकार के नम्र वचन मुख से कहते हो॥

चौ०—अब जानी मैं श्री चतुराई। भजिय तुमहि सब देव बिहाई॥
जेहि समान अतिशय नहिं कोई। ता कर शील कस न अस होई॥

तजेहु जनि नेह' इस पर से अत्रि जी ने क्यों कहा कि 'अब जानी मैं श्री चतुराई। भजिय तुमहि सब देव बिहाई' उस का समाधान यह है कि मुनि जी तो सर्वज्ञ थे, रामचन्द्र जी के इस गूढ़ आशय को समझ गये थे कि 'ईश्वर ही सब कुछ है' वह न तो स्वामी से भिन्न है और न सेवक से, वह तो सभी में व्याप्त है, यह बात वेदान्त के विचार से ध्यान में आ सकी है और उस की पुष्टि के हेतु सूरदास जी के इस कथन का विचारिये:—

—:* गोपियों प्रति उद्धव जी के वचन [राग भैरव] *:—

मैं तुम पै ब्रजनाथ पठायो। आतम ज्ञान सिखावन आयो॥
आपुहि पुरुष आपु ही नारी। आपहि वानप्रस्थ ब्रह्मचारी॥
आपुहि पिता आप ही माता। आपहि भगिनि आपुही भ्राता॥
आपुहि पंडित आपुहि ज्ञानी। आपुहि राजा आपुहि रानी॥
आपुहि धरती आपु अकासा। आपुहि स्वामी आपुहि "दासा"॥
आपुहि ग्वाल आपु ही गाई। आपुहि आप चरावन जाई॥
आपुहि भँवरा आपुहि फूला। आतम ज्ञान बिना जग भूला॥
राव रंक दूजा नहिं कोई। आपुहिं आप निरंजन सोई॥
इहि प्रकार जाको मन लागै। जरा मरन से भव भय भागै॥
योग समाधि ब्रह्म चित लावहु। ब्रह्मानंद तबहिं सुख पावहु॥

"करेहु" "जनि तजेहु" इस का अर्थ क्रमानुसार करते रहियो और मत छोड़ियो ऐसा भविष्यत काल सूचक होता है इसलिये किसी किसी पुस्तक में "तजेहु" के स्थान में तजहु वर्तमान काल सूचक असंगत जान पड़ता है। हाँ इतना अवश्य है कि तजेहु में मात्रा बढ़ती सो उसे लघुकर पढ़ना चाहिये जैसा कि कविता में कहीं कहीं करना पड़ता है॥ (देखो टि० पृ० १२ अस्तुति आदि पर)

‡ "सनकादि" अर्थात् सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार ये ब्रह्मा के पुत्र हैं॥

शब्दार्थ—श्री चतुराई=आप की चतुरता, रावरे की चातुरी ॥

अर्थ—अब मैंने आप की चतुरता पहिचान ली (जो आप ने कहा "सेवक जानि तजेहु जनि नेहू" इसका आशय यह है) मुझे छोड़ और दूसरे देवता का स्मरण न करना। जिस के बराबर कोई बड़ा नहीं है उस का स्वभाव ऐसा क्यों न हो (अर्थात् अवश्य होना ही चाहिये ॥)

चौ०—†केहि विधि कहउँ जाहु अब स्वामी। कहहु नाथ तुम अंतरयामी ॥
अस कहि प्रभु विलोकि मुनि धीरा। लोचन जल बह पुलक शरीरा ॥

अर्थ—अब मैं किस प्रकार से कहूं कि आप जाइये, हे स्वामी ! आप तो सब के हृदय की बात जानने वाले हैं आप ही कहिये। इतना कह कर प्रभु की ओर देख धैर्यवान् मुनि के भी नेत्रों में जल भर आया और उन का शरीर पुलकित हो उठा ॥

छं०—तनु*पुलकनिर्भर प्रेमपूरन नयन मुखपंकज दिये।
मन-ज्ञान-गुन-गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किये ॥
जप योग धर्म समूह ते नर भक्ति अनुपम पावहीं ॥।
रघुवीरचरित पुनीत निशिदिन दासतुलसी गावहीं ॥

शब्दार्थ—निर्भर (निः+भर)=पूर्ण, अत्यन्त। गोतीत (गो=इन्द्रिय+अतीत=परे)=इन्द्रियों से परे अर्थात् इन्द्रियों से जिन का अनुभव न हो सके ॥

---

† "केहि विधि कहउँ जाहु अब स्वामी" मुनि जी के चतुराई के कथन पर विचार करने से "भारतेन्दु" हरिश्चन्द्र जी का कहा हुआ यह सवैया याद आता है:—

रोकहिं जो तो अमंगल हो, अरु प्रेम नसै जो कहैं प्रभु जाइये।
जो कहैं जाहु न तो प्रभुता, जो कछु न कहैं तौ सनेह नसाइये।
जो हरिचन्द कहैं तुम्हरे बिन, जी हैं न तो यह क्यों पतियाइये।
तातें तुम्हारे पयान समै, हम का कहैं आप हमैं समझाइये ॥

* 'तनु" के बदले कहीं कहीं "तन' लिखा जाता है सो कविता में इकारान्त उकारान्त को अकारान्त केवल आवश्यकता पड़े लिखना उचित है। यथा:—

दोहा—शशि कुमुदिनि प्रफुलित करत, कमल विकासत "भान"।
बिन माँगे जल देत घन, त्यों ही सन्त सुजान ॥

अर्थ—(मुनि के) शरीर में रोम खड़े हो आये, (वे) अतिशय प्रेम से परिपूरित हो कमलस्वरूपी मुख की ओर टकटकी लगा कर देखने लगे और बोले—न जाने कौन सा ऐसा जप तप किया था कि मन, बुद्धि, गुण और इन्द्रियों से परे जो परमेश्वर हैं उनको मैंने देखा। मनुष्य जप योग आदि भक्ति के अनेक उपायों से उपमा रहित भक्ति को पाते हैं ऐसे परमेश्वर के पवित्र चरित्रों को तुलसीदास दिन रात गाते हैं।

दो०—कलिमल शमन दमन दुख, रामसुयश सुखमूल ।
सादर सुनहिं जे तिनहिं पर, राम रहहिं अनुकूल ॥

अर्थ—राम जी का सुयश कलियुग के पापों का नाश करने वाला, दुःखों का दूर करने हारा और सुखों की जड़ है; जो लोग इसे आदरपूर्वक सुनते हैं उन पर रामचन्द्र जी सदा प्रसन्न बने रहते हैं॥

सो०—कठिन काल मलकोस, धर्म न ज्ञान न योग जप ।
परिहरि सकल भरोस, राम भजहिं ते चतुर नर ॥८॥

अर्थ—यह कठिन कलियुग पापों का भंडार है इस में धर्म, ज्ञान, योग, जप बहुत नहीं है। जो लोग सब का भरोसा छोड़ (केवल) रघुनाथ जी का भजन करते हैं वे ही चतुर मनुष्य हैं॥

चौ०—मुनिपद कमल नाइ करि शीशा । चले बनहिं सुर-नर-मुनिईशा ॥
आगे राम अनुज पुनि पाछे । मुनिवर वेष बने अति आछे* ॥

अर्थ—देवताओं, मनुष्यों और मुनीश्वरों के स्वामी श्री रामचन्द्र जी मुनि के चरणों पर शीश नवा कर वन को चले। आगे श्री रामचन्द्र जी और पीछे लक्ष्मण जी श्रेष्ठ मुनि कासा अति उत्तम भेष धारण किये हुए चले॥

आठवें सोरठे के नीचे का क्षेपक—

दो०—मुनिहुँ कि अस्तुति कीन्ह प्रभु, दीन्ह सुभग वरदान ।
सुमनवृष्टि नभसंकुल, जय जय कृपानिधान ॥

अर्थ—रामचन्द्र जी ने अत्रि मुनि की बड़ाई की और उत्तम वरदान दिया, आकाश फूलों की वृष्टि से छागया और ऐसी ध्वनि सुनाई पड़ती थी कि हे कृपासिन्धु ! आप की जय हो।

* किसी किसी ग्रन्थ में "अति आछे" के स्थान में "अति काछे" है जिस का अर्थ धारण किये हुए होता है॥

चौ०—उभय बीच सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥
सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं वर बाटा॥

अर्थ—दोनों के बीच में सीता जी इस प्रकार शोभायमान थीं जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया शोभा देती है (स्मरण रखना चाहिये कि यहां पर कवि ने उपमा दर्शाते हुए यथार्थ बात लिख दी है, राम जी ब्रह्म का अवतार हैं, सीता जी साक्षात् माया और लक्ष्मण जी जीव हैं)। नदी, बन, पर्वत और अटपटे स्थान सब रामचन्द्र जी को अपना स्वामी जान जहां मार्ग नहीं था वहां सुगम बाट कर देते थे॥

† जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी जहां जहां जाते थे, आकाश में मेघ तहां तहां छाया कर देते थे॥

---

† जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया॥ इसके नीचे का क्षेपक अर्थ सहित यहीं लिखा जाता है—

आश्रम विपुल दीख बनमाहीं। देवसदन तेहि पटतर नाहीं॥

अर्थ-बहुत से आश्रम बन में देखे जिनकी बराबरी देवताओं के स्थान भी नहीं कर सके थे।

क्षेपक बहु तड़ाग सुन्दर अमराई। भाँति भाँति सब मुनिन्ह लगाई॥
दिव्य बिटप बन चहुं दिशि सोहैं। देखत सकल सुरन्ह मन मोहैं॥
तेहि दिन तहँ प्रभु कीन्ह निवासा। सकल मुनिन्ह मिल कीन्ह सुपासा॥

अर्थ—बहुत से तालाब और सुन्दर आम के बगीचे सब मुनियों ने कई तरह के बनाये थे। उनके चारों ओर उत्तम सुहावने वृक्ष शोभा दे रहे थे जिन को देख कर देवताओं के मन मोहित हो जाते थे। उस दिन श्री रामचन्द्र जी वहां रहे और सम्पूर्ण मुनियों ने मिलकर उन की पहुनई की॥

क्षेपक दो०—निज निज आश्रम वेदिका, तेहि पर तुलसि विराज।
अनुज जानकी सहित तहँ, राजत भे रघुराज॥

अर्थ—सब के आश्रमों पर वेदी बनी हुई थीं, उन पर तुलसी विराज रहीं थीं, लक्ष्मण जानकी सहित श्री रामचन्द्र जी वहां सुशोभित हुए॥

दो०—आन सुआश्रम मुदित मन, पूजि पहुनई कीन्ह।
कन्दमूल फल अमियसम, आनि राम कहँ दीन्ह॥

अर्थ—मुनियों ने प्रसन्न चित्त से अपने आश्रम में प्रभु को ला उनकी पहुनई की, और मधुर मिष्ट कन्द मूल फल रघुनाथ जी को लाकर दिये॥

❀ मिला असुर विराध मग जाता। आवत ही रघुवीर निपाता॥

अर्थ—मार्ग में जाते समय विराध राक्षस मिला। ज्योंहीं वह आया त्योंहीं श्री रामचन्द्र जी ने उसे मार गिराया।

क्षे०—अनुजसीय सह भोजन कीन्हा। जो जेहि भाव सुभग बरदीन्हा।
होत प्रभात मुनिन्द्र शिर नावा। आशिरवाद सबहि सन पावा॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण और सीता सहित भोजन किये और जो जिस को अच्छा लगा वही वरदान उसे दिया। प्रातःकाल होते ही श्री रामचन्द्र जी ने मुनियों को शीश नवाया और सबसे आशीर्वाद पाया॥

सूचना—इस चौपाई के अर्थ में पंडित लोग कभी २ यह शंका कर बैठते हैं कि लक्ष्मण जी ने भोजन कैसे किये, वे तो बारह वर्ष तक नींद, स्त्री और भोजन का त्याग किये रहे और उन का ऐसा व्रत करना उचित ही था, नहीं तो मेघनाद का बध किस तरह कर सके और (लंकाकांड में) जिस समय सुलोचना के सन्मुख उस के पति मेघनाद की भूषणालंकृत भुजा आकर गिरी, उस समय भुजा देख उसे सन्देह हुआ कि भुजा तो मेरे पति की सी ही है परन्तु उसे यह बरदान है कि "नींद नारि भोजन परिहरई। बारह वर्ष तासु कर मरई॥ इस पर विश्वास कर अपने पातिव्रत्य के भरोसे उसने उस भुजाही से सच्चा हाल लिखवा कर विदित कर लिया इत्यादि। पूर्वोक्त शंका का समाधान भी इसी चौपाई से हो जाता है "अनुज सीय सह भोज न कीन्हा" अर्थ—अनुज ने सीय सह भोज नहीं कीन्हा अर्थात् लक्ष्मण जी ने भोजन नहीं किये (रामचन्द्र जी ने किये) ऐसा अर्थ भली भाँति घटित हो जाता है। परन्तु यह क्षेपक है और सुलोचना की कथा भी क्षेपक ही है॥

क्षे०—सुमिरि उमासुर सिद्ध गणेशा। पुनि प्रभु चले सुनहु विहगेशा॥
बन अनेक सुन्दर गिरिनाना। लाँघत चले जाहिं भगवाना॥

अर्थ—(काकभुशुंडि जी कहते हैं) हे गरुड़ जी सुनो! फिर रामचन्द्र जी श्री महादेव जी और सिद्धिदायक विनायक जी का सुमिरन कर चले। भगवान बहुत से उत्तम बन और अनेक पर्वत पार करते चले जाते थे॥

* मिला असुर विराध मग जाता—इसी चरण के साथ ही से जो क्षेपक आरंभ हुआ है सो यों है—

चौ०—मिला असुर विराध मग जाता। गरजत घोर कठोर रिसाता॥
क्षेपक रूप भयङ्कर मानहुँ काला। वेगवन्त धायउ जिमि ब्याला॥

अर्थ—मार्ग में जाते समय विराध राक्षस कठिन गर्जना और क्रोध करता हुआ मिला। उसका रूप डरावना था मानो यम हो, वह ऐसे सपाटे से दौड़ा जैसे सर्प दौड़ता है॥

[चौ०]

चौ०—*तुरतहि रुचिर रूप तेहि पावा । देखि दुखी निज धाम पठावा ॥

क्षे० चौ०—गगन देव मुनि किन्नर नाना । तेहिक्षण हृदय हारि भयमाना ॥
तुरतहि सो सीतहि लै गयऊ । राम हृदय कछु विस्मय भयऊ ॥

अर्थ—आकाश में अनेक देवताओं, मुनियों और किन्नरों ने उस समय हृदय में हार और भय माना। वह (राक्षस) जल्दी से सीता जी को उठा ले गया, तो रामचन्द्र जी के हृदय में थोड़ा आश्चर्य हुआ ॥

चौ०—समझा हृदय केकई करनी । कहा अनुज सन बहु विधि बरनी ।
बहुरि लषन रघुबरहि प्रबोधा । पांच बाण छाँड़े करि क्रोधा ॥

अर्थ—(श्री रामचन्द्र जी ने) हृदय में कैकेयी की करनी समझकर लक्ष्मण से बहुत प्रकार बखान कर कहा (कि अब कैकेयी का मनोरथ पूरा हुआ)। फिर लक्ष्मण जी ने रामचन्द्र जी को समझाया और क्रोध कर पांच बाण छोड़े ॥

छं०—भये क्रोध लषन सँधान धनु शर, मारि तेहि व्याकुल कियो ।
पुनि उठि निशाचर राखि सीतहि; शूल लै धावत भयो ॥
जनु कालदण्ड कराल धावा, विकल सब खग मृग भये ।
धनु तान श्रीरघुवंशमणि पुनि, काटि तेहि रज सम किये ॥
शब्दार्थ—कालदण्ड=यमराज, मृत्यु ॥

अर्थ—लक्ष्मण जी क्रोधित हुए और उन्होंने धनुष संधान कर बाण मार उसे व्याकुल किया। तब वह राक्षस उठा और सीता जी को रख कर त्रिशूल ले दौड़ा। उस समय ऐसा जान पड़ता था कि मानो साक्षात् यमराज दौड़े चले आते हों। यह देख सब पशु पक्षी घबराये। तब श्री रामचन्द्र जी ने धनुष को खींच कर उस के त्रिशूल को काट के धूल के समान कर दिया ॥

क्षेपक दो०—बहुरि एक शर मारेऊ, परा धरनि धुनि माथ ।
उठा प्रबल पुनि गर्जेऊ, चला जहां रघुनाथ ॥

अर्थ—फिर श्री रामचन्द्र जी ने उस को एक बाण मारा वह सिर कूटता हुआ धरती पर गिर पड़ा, फिर जोर करके गर्जता हुआ उठा और रामचन्द्र जी की ओर दौड़ा ॥

अर्थ—उस ने शीघ्र ही उत्तम रूप पा लिया, उसे व्याकुल देख श्री रामचन्द्र जी ने अपने स्थान को भेज दिया (अर्थात् उसे मुक्ति दी)॥

क्षेपक ऐसे कहत निशाचर धावा। अब नहिं बचहु तुमहिं मैं खावा ॥
तासु तेज शत मरुत समाना। टूटहिं तरु बहु उड़हिं पषाना ॥
शब्दार्थ—निशाचर (निशा=रात्रि + चर = भ्रमण करने वाले)=राक्षस

अर्थ—वह राक्षस ऐसा कहते हुए दौड़ा कि मैं तुम्हें खाये लेता हूं, अब नहीं बचोगे। उस की तीव्र गति सौ पवन के समान थी [इसहेतु] बहुत वृक्ष टूटने और पत्थर उड़ने लगे॥

क्षे० जीव जन्तु जहँ लग रहे जेते। व्याकुल भाजि चले सब तेते ॥
आव प्रबल इहि विधि जनु भूधर। होइहि कहा कहहिं व्याकुल सुर ॥

अर्थ—जितने जीवधारी, जो जहां थे, सब वहां से भाग चले। वह इस प्रकार बल सहित दौड़ा मानो पर्वत भागा चला आता हो, सब देवता घबराकर कहने लगे कि क्या होने वाला है॥

क्षे० उरग समान जोरि शर साता। आवत ही रघुवीर निपाता ॥
शब्दार्थ—उरग[उर=पेट + गम्=जाना]=पेट से चलने वाला, सर्प ॥

अर्थ—सर्प के सदृश सात बाण धनुष में लगाकर रामचन्द्र जी ने उसे आते ही गिरा दिया

विराध, किन्नर और मरुत के उल्लेख पुराणों में मिलेंगे।

क्षे० तासु अस्थि गाड़ेउ प्रभु धरनी। देव मुदित लख प्रभु की करनी ॥
सीता आइ चरन लपटानी। अनुज सहित तब चले भवानी ॥

अर्थ—उसकी हड्डियों को (अर्थात् उस के मृतक शरीर को) रामचन्द्र जी ने धरती में गाड़ दिया। देवता परमेश्वर की इस क्रिया को देख प्रसन्न हुए [महादेव जी कहते हैं] कि हे पार्वती! तब माता जी ने आकर श्री रामचन्द्र जी के पांव पड़े और फिर वे दोनों लक्ष्मण समेत आगे चले॥

चौ०—उहां शक्र जहँ मुनि शरभङ्गा। आये सकल देव निज सङ्गा ॥
गये कहन प्रभु देन सिखावन। दिशि बल भेद बसत जहँ रावन ॥

अर्थ—जहां शरभङ्ग मुनि का आश्रम था वहां इन्द्र अपने निज देवताओं सहित आये। जहां रावण रहता था वह दिशा, रावण का बल और भेद रामचन्द्र जी को कह कर सिखापन की तरह बतलाने को गये थे॥

सूचना—तुलसीदास जी ने विराध के विषय में केवल यही अर्द्धाली लिखी है "मिला असुर विराध मग जाता । आवत ही रघुवीर निपाता ॥" परन्तु क्षेपक लिखने वालों ने "गरजत घोर कठोर रिसाता । इस चरण से प्रारम्भ कर......... उरग समान जोर शर साता" ॥ इस चरण तक १३ लकीरों का क्षेपक ऊपर की कही हुई अर्द्धाली के बीचोंबीच ही में निवेशित कर दिया है ॥

क्षे० दो०—सुरपति संशय तिमिर सम, रघुपति तेज दिनेश ।
रावण जीवन निशा सम, बीते छुटहिं कलेश ॥

अर्थ—इन्द्र का भ्रम अन्धकार के समान है [उसे दूर करने के लिये] रघुनाथ जी का तेज सूर्य के समान है । रावण का जीवन रात्रि के समान है, बीत जाने पर दुःख दूर होगा (अर्थात् रावण के मारे जाने पर इन्द्र का सन्देह और देवताओं के दुःख सब दूर होंगे) ॥

क्षे० चौ०—सुनासीर प्रभु तेहि क्षण देखा । तेज निधान शुभ्र अति बेषा ॥
तुरग चारि बल मरुत समाना । रथ रविसम नहिं जाय बखाना ॥

शब्दार्थ—तुरग [तुर=बेग से + गम्=जाना]=घोड़ा, ["तुरंग" शब्द भी प्रचलित है] ॥ सुनासीर और रवि के अनेक नाम कविता बद्ध पुरौनी में मिलेंगे ॥

अर्थ—उस समय प्रभु ने इन्द्र को तेज से भरा हुआ बहुत स्वच्छ वस्त्र पहिने देखा । पवन के समान शीघ्रगामी चार घोड़ों वाले, उसके रथ की शोभा का, जो सूर्य के रथ के समान था, वर्णन नहीं किया जा सक्ता ॥

क्षे० क्षिति न परस अन्तरहित रहई । श्वेत छत्र चामर शिर ढरई ॥
अनुजहिं प्रियहिं कहा समुझाई । सुरपति महिमा गुण प्रभुताई ॥

शब्दार्थ—परस (शुद्धरूप स्पर्श है)=छूना । अन्तरहित=लोगों की दृष्टि में न आनेवाला ॥ इसका गूढ़ भेद पुरौनी में विस्तार सहित मिलेगा ॥

अर्थ—वह रथ पृथ्वी को नहीं छूता था अर्थात् अधर चला जाता था और साधारण लोगों को दिखाई भी नहीं देता था जिस पर सफ़ेद छत्र था और मस्तक पर चँवर ढुरता चला आता था [छत्र और चँवर ये राजाओं के चिन्ह हैं] श्री रामचन्द्र जी ने इन्द्र की बड़ाई गुण और प्रभुता, लक्ष्मण और सीता जी से समझा कर कही ॥

क्षे० जेहि कारण वासव तहँ आये । सो कछु बचन कहन नहिं पाये ॥
बीचहि सुनि आइब प्रभु केरा । कहि सारथी तुरत रथ फेरा ॥

शब्दार्थ—वासव [वसु=धन सम्पत्ति]=अमित धन सम्पत्तिशाली, इन्द्र ॥

अर्थ—जिस काम के लिये इन्द्र वहां आये थे उस के विषय में कुछ कह न सके । बीच ही में प्रभु का आना सुन कर सारथी से कह कर रथ तुरन्त लौटवाया ॥

क्षे० दूरहि ते करि प्रभुहि प्रणामा । हरषि सुरेश गयो निजधामा ॥

(अर्थ)

चौ०—पुनि आये जहँ मुनि शरभंगा* । सुन्दर अनुज जानकी संगा ॥

अर्थ—फिर सुन्दर रामचन्द्र जी लक्ष्मण और सीता समेत वहां आये जहां शरभंग मुनि का आश्रम था ।

दो०—देखि राममुख-पंकज, मुनिवर लोचन भृङ्ग ।
सादर पान करत अति, धन्य जन्म शरभङ्ग ॥ ६ ॥

अर्थ—धन्य है शरभंग जी के जीवन को जिन श्रेष्ठ मुनि के भ्रमररूपी नेत्र रामचन्द्र जी के कमलस्वरूपी मुख को देख मकरंदरूपी छबि को आदर सहित पान करने लगे (अर्थात् जिस भांति भौंरा कमल के रस को पीने में तन्मय हो रहता है उसी प्रकार मुनि के नेत्र रामचन्द्र जी की छवि को बड़ी रुचि से निहारने में तल्लीन हो रहे थे) ॥

चौ०—कह मुनि सुनु रघुवीर कृपाला । शंकर-मानस-राज-मराला ॥
जात रहेउँ विरंचि के धामा । सुनेउँ श्रवण बन अइहहिं रामा ॥

अर्थ—मुनि ने कहा हे महादेव के मनरूपी मानसरोवर के राजहंस, दयासागर रामचन्द्र जी सुनिये ! मैं ब्रह्मा के लोक को जाना चाहता था, इतने में सुना कि आप इसी बन में आवेंगे ।

चौ०—चितवत पंथ रहेउँ दिनराती । अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती ॥
नाथ सकल साधन मैं हीना । कीन्ही कृपा जानि जन दीना ॥

अर्थ—दूर ही से श्री रामचन्द्र जी को दण्डवत कर प्रसन्न होते हुए इन्द्र अपने लोक को गये [क्योंकि जिस काम के लिये गये थे वह काम हो ही गया अर्थात् रामचन्द्र जी आगये ।
* इति क्षेपक *

* शरभंग—ये मुनि दण्डकारण्य में तपस्या करते थे । इन्हों ने अपने तपबल से ब्रह्मलोक पर्यन्त सब लोक जीत लिये थे, जिनका जीतना परमात्मा के भजन बिन दुर्लभ है । इन्द्र इन्हें वरदान दे ब्रह्मलोक को ले जाने के हेतु आये थे । इतने में श्री रामचन्द्र जी को आश्रम की ओर आते हुए सुन भगवान दर्शनाभिलाषी मुनि जी तो आश्रम ही में बने रहे और इन्द्र श्री राम जी के दर्शन से सफल मनोरथ हो सहर्ष अमरावती नगरी को लौट गये । शरभंग मुनि ने प्रभु से भेट कर प्रार्थना की कि आप भी अवतार समाप्ति के समय कृपा कर हमारे तपजित लोकों को पवित्र करते जाइये । ऐसा कह शर रच उसे योगाग्नि से प्रज्ज्वलित कर उस में मंत्रयुक्त आहुति छोड़ पूर्णाहुति के साथ आप भी भस्म हो परमपद को पाकर ब्रह्मलोक वासी हुए ॥ (वाल्मीकीय रामायण)

† मान सरोवर तालाब पर सदैव राजहंसों का निवास रहता है इसी तरह महादेव जी के हृदय में निरन्तर राम नाम का जाप चला करता है इसलिये रामचन्द्र जी को शिव जी के मन मानस का राजहंस कहा है ॥

अर्थ—सो मैं दिनरात आप की बाट हेरता रहा, अब आप को देख मेरा हृदय शान्त हुआ। हे स्वामी! मैं तो सब साधनहीन हूं, आप ने मुझे अपना दीन दास समझ कर कृपा की है॥

चौ०—सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज प्रण राखेउ जन-मन-चोरा*॥
तब लगि रहहु दीनहितलागी। जब लगि मिलउँ तुम्हहि तनु त्यागी॥

अर्थ—सो हे भक्तों के चितचोर देव! आप ने कुछ मेरा ही उपकार नहीं किया आप ने तो अपना प्रण पूरा किया है। अब मुझ दीन के कल्याण के हेतु तब तक ठहरिये जब तक मैं अपना शरीर छोड़ आप में मिल जाऊं॥

चौ०—योग यज्ञ जप तप व्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भक्तिवर लीन्हा॥
इहि विधि शररचि मुनि शरभंगा। बैठे हृदय छाँड़ि सब संगा॥

अर्थ—योग, यज्ञ, जप, तप, और व्रत जो कुछ किया था भगवान को अर्पण कर भक्ति का वरदान मांग लिया। इस प्रकार शरभङ्ग मुनि हृदय से सब वासना छोड़ चिता बना कर बैठ गये॥

दो०—सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलज तनु श्याम।
मम हिय बसहु निरन्तर, सगुनरूप श्री राम॥१०॥

अर्थ—नील कमल के समान श्यामले शरीर वाले श्री रामचन्द्र जी आप लक्ष्मण जानकी सहित सगुण रूप से मेरे हृदय में सदा निवास कीजिये॥

चौ०—अस कहि योगअग्नि तनु जारा। रामकृपा वैकुण्ठ सिधारा॥
ता तें मुनि हरिलीन न भयऊ। प्रथमहिं†भेद भक्तिवर लयऊ॥

* "मन चोरा" कविगण परमेश्वर को कभी २ "जन मन चोर" या "चित चोर अथवा "चिलोचन चोर" आदि कहते हैं। इस प्रेममय अभिप्राय से कि जब भक्तों का चित्त परमेश्वर की ओर झुका तो वह उन के स्वाधीन नहीं रहता, परमेश्वर में लीन हो जाता है॥

† "भेद भक्ति"—नव प्रकार की भक्तियों में से (जिन के नाम आदि आगे मिलेंगे) बहुतेरे भक्तजन दास्य को श्रेष्ठ जान ईश्वर को सेव्यमान आप सेवक बन सेव्य सेवक भाव की परिपाटी का पूर्णरूप से निर्वाह करने के हेतु, सायुज्य मुक्ति के योग्य होने पर भी, ईश्वर में लीन होकर नहीं रहना चाहते; परन्तु किसी भी रूप में परमेश्वर से भिन्न रह कर ब्रह्म में मिल जाने का जो परम आनन्द और अटल सुख है उसे भोगते हुए आवागमन से रहित रहते हैं। जैसे कागभुशुण्डि; नारद, हनुमान आदि। इसी आशय की एक कवि की कविता देखिये:—

न था तू तब खुदा ही था, हुआ बरबाद होने में।
न होता तो समझता क्या, मज़ा जो था न होने में॥

अर्थ—ऐसा कह योग की अग्नि में शरीर जला दिया और श्री रामचन्द्र जी की दया से वैकुण्ठ को गया। शरभंग मुनि परमेश्वर में इसलिये लीन न हुए क्योंकि उन्हों ने पहले ही से सेव्य-सेवक भाव की रीति पर भक्ति का वरदान मांग लिया था (लीन होने से फिर भक्ति नहीं हो सक्ती, भक्ति के लिये भेद से अर्थात् पृथक् ही रहना अवश्य है और यह वर मुनि ने मांग ही लिया था)॥

चौ०—ऋषि निकाय मुनिवर-गति देखी। सुखी भये निज हृदय विसेखी॥
अस्तुति करहिं सकल मुनि वृन्दा। जयति प्रणतहित करुणाकन्दा॥

अर्थ—ऋषियों के समूह श्रेष्ठ मुनि की दशा देख कर अपने मन में बहुत सुखी हुए। सब मुनीश्वरों के समूह स्तुति करने लगे कि हे दीनों का हित करने वाले कृपा के मूल कारण रामचन्द्र जी आप की जय हो॥

चौ०—पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिवरवृन्द विपुल सँग लागे॥
अस्थिसमूह देखि रघुराया। पूछा मुनिन्ह लागि अतिदाया॥

अर्थ—फिर रामचन्द्र जी आगे के बन को चले तो श्रेष्ठ मुनियों के भी समूह के समूह साथ में होगये। अस्थियों का ढेर देख कर रामचन्द्र जी को बड़ी दया लगी और वे मुनियों से (उन के विषय में) पूछने लगे॥

चौ०—जानतहू पूछिय कस स्वामी। सबदरसी तुम अन्तरयामी॥
निशिचर-निकर सकल मुनिखाये। सुनि रघुनाथ नयनजल छाये॥

अर्थ—(मुनियों ने कहा कि) हे प्रभु! आप जानबूझ करके भी कैसे पूछ रहे हैं। आप सब को एकसी दृष्टि से देखने वाले और घट घट की जाननेहारे हैं। राक्षसों के समूहों ने अगणित मुनियों को खाया है यह सुनते ही रामचन्द्र जी के नेत्रों में (करुणा के कारण) आंसू भर आये॥

दो०—निशिचर-हीन करौंमहि, भुज उठाइ प्रण*कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह॥११॥

* रामचन्द्रजी के इस दृढ़ प्रण को शंकर कवि राग बिहाग में यों गाते हैं:—
हाय ये मुनिगण प्राण हमार॥
अधम निशाचर खाय खाय के कीन्हें हाड़ पहार॥१॥
तौ मैं राम राय दशरथ सुत कर निज धनु टंकार।
रहित निशाचर भूमि करौं सब महि को भार उतार॥२॥
धीर धरो जानत सब तुम हौ मुनिवर सुमति उदार।
दुष्ट विदारन कारन तौ मैं लेत विविध अवतार॥३॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की कि पृथ्वी को राक्षसों से रहित करूँगा और फिर सब मुनीश्वरों के आश्रम में जा जाकर सुख दिया। (प्रतिज्ञा को दृढ़तापूर्वक जताने के लिये बहुधा लोग अपनी भुजा उठाकर कहते हैं जैसा विदेह के बन्दीगणों के वचन बालकाण्ड में यों हैं:—"प्रण विदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाय विशाल)" ॥

चौ०—मुनिअगस्त्य करशिष्यसुजाना। नाम सुतीक्ष्ण*रति भगवाना॥
मन-क्रम-वचन राम-पद-सेवक। सपनेहु आन भरोस न देवक॥

अर्थ—अगस्त्य मुनि का एक ज्ञानवान शिष्य सुतीक्ष्ण नामक परमेश्वर का अति प्रेमी था। वह मनसा वाचा कर्मणा रामचन्द्र जी के चरणों में प्रीति रखता था और दूसरे देवता का भरोसा उसे स्वप्न में भी न था॥

चौ०—प्रभु आगमन श्रवण सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा॥
हे विधि दीनबन्धु रघुराया। मोसे शठ पर करिहहिं दाया॥

अर्थ—वह कानों से श्री रामचन्द्र जी का आना सुन (नीचे लिखे हुए) विचार करता हुआ शीघ्र चला। हे विधाता! दीनबन्धु रामचन्द्र जी क्या मुझ सरीखे मूर्ख पर दया करेंगे॥

चौ०—सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं॥
मोरे जिय भरोस दृढ़ नाहीं। भक्ति न बिरति ज्ञान मनमाहीं॥

अर्थ—क्या इन्द्रियों के स्वामी श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण समेत मुझ से इस प्रकार मिलेंगे। जैसे स्वामी अपने सेवक से मिलता है। मेरे हृदय में तो पक्का भरोसा नहीं है, कारण, न मुझ में भक्ति है, न विशेष प्रीति और न ज्ञान है॥

चौ०—नहिं सतसंग योग जप यागा। नहिंदृढ़चरनकमल अनुरागा॥
†एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाके गति न आन की॥

अर्थ—न तो मैंने सज्जनों की संगति की है, न योग किया है और न जप, न यज्ञ और न (रामचन्द्र जी के) कमलस्वरूपी चरणों में मेरा पक्का प्रेम है। परन्तु दयालु रामचन्द्र जी की एक टेक है कि जिसे किसी दूसरे का सहारा नहीं है, वह उनको अति प्रिय है॥

---

* सुतीक्ष्ण—दक्षिण में दण्डकारण्य वासी अगस्त्य ऋषि के शिष्य सुतीक्षण मुनि रामचन्द्र के भजन में दिनरात लगे हुए इसी अभिप्राय से रहते थे कि समय पाकर स्वतः श्री रामचन्द्र जी के दर्शन कर उन्हें अपने परम पूज्य गुरु अगस्त्य जी से भेंट कराय गुरु-दक्षिणा के ऋण से उऋण होवें, जैसा कि गुरु जी ने कहा था॥

† एक बानि करुणानिधान की। सोप्रिय जाके गति न आन की—के पश्चात् का दो० यह है—

चौ०—होइहहिंसुफल आज ममलोचन । देखि वदनपंकज भवमोचन ॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी । कहि न जाइ सो दशा भवानी ॥

अर्थ—मेरे नेत्र आज कमलस्वरूपी मुख देख सफल होंगे, जिस मुख के दर्शन से संसार का आवागमन छूट जाता है । (महादेव जीं कहते हैं) हे पार्वती ! ज्ञानवान् मुनि प्रेम में इस प्रकार मग्न हो गये कि उनकी दशा का वर्णन नहीं किया जा सक्ता ॥

चौ०—दिशि अरुविदिश पंथ नहिं सूझा । को मैं चलेउँ कहांनहिं बूझा ॥
कबहुँक फिर पीछे पुनिजाई । कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ॥

अर्थ—मुनि को न तो दिशा, न विदिशा और न कोई मार्ग दिखाई पड़ता था और उन्हें इस बात की भी सुधि न थी कि मैं कौन हूं और कहां जाता हूं । कभी तो वे बारम्बार पीछे लौटते थे और कभी प्रभु के गुण गाते २ नाचने लगते थे ॥

चौ०—अविरल प्रेम भक्ति मुनि पाई । प्रभु देखहिं तरुओट लुकाई ॥
अतिशय प्रीति देखि रघुबीरा । प्रगटे हृदय हरन भवभीरा ॥

क्षे० छं०—सो परम प्रिय अति पातकी जिन कबहुँ प्रभु सुमिरन कर्‌यो ।
ते आजु मैं निज नयन देखिहउँ पूरि पुलकित हिय भर्‌यो ॥
जे पदसरोज अनेक मुनि करध्यान कबहुँक आवहीं ॥
ते राम श्री रघुवंशमणि प्रभु प्रेम ते सुख पावहीं ॥

अर्थ—जिन श्री रामचन्द्र जी को बड़ा पापी मनुष्य भी, यदि वह कभी उनका स्मरण कर लेवे, तो बहुत प्रिय हो जाता है ऐसे स्वामी को मैं आज अपने नेत्रों से देखूंगा, यह बात सोचकर (सुतीक्ष्ण का) शरीर प्रेम के मारे रोमाञ्चित हो गया । जिन कमलस्वरूपी चरणों को बहुत से मुनि ध्यान करके कभी २ पा लेते हैं ऐसे रामचन्द्र जी रघुवंशियों में श्रेष्ठ प्रेम के कारण बहुत ही प्रसन्न होते हैं ॥

क्षेपक दो०—पन्नगारि सुनु प्रेम सम, भजन न दूसर आन ।
यह विचारि पुनि पुनि मुनि, करत राम गुण गान ॥

अर्थ—(कागभुशुंडि जी कहते हैं) हे गरुड़ जी सुनो ! प्रेम के तुल्य और दूसरा भजन नहीं है । इस बात को सोच मुनि जी बारम्बार रामचन्द्र जी के गुणों का वर्णन करने लगे ॥

सूचना—"कबहुँक" का पाठान्तर "कबहुँ न" ठीक नहीं, मुनियों का ध्यान करना व्यर्थ कैसे होगा ॥

अर्थ—मुनि जी को निरन्तर अटल प्रेमभक्ति प्राप्त हुई थी जिसे रामचन्द्र जी वृक्ष की ओट में खड़े खड़े देख रहे थे। फिर संसार के दुःखों से छुड़ाने वाले श्री रामचन्द्र जी मुनि की अधिक प्रीति देख उनके हृदय में प्रगटे ॥

चौ०—मुनिमगमाँझ अचल होइ बैसा। पुलकशरीर पनसफल जैसा ॥
*तब रघुनाथ निकट चलि आये। देखि दशा निजजन मनभाये ॥

अर्थ—मार्ग में मुनि जी रोमांचित शरीर से इस प्रकार अचल होकर बैठे मानो कटहर का फल धरा हो। तब रामचन्द्र जी मुनि के समीप चले आये और अपने दास की दशा देख मन में प्रसन्न हुए ॥

चौ०—मुनिहिं राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यानजनित सुखपावा ॥
भूपरूप तब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुजरूप दिखावा ॥

अर्थ—मुनि को रामचन्द्र जी ने बहुत प्रकार से चैतन्य करना चाहा, परन्तु वे जागे नहीं, क्योंकि वे तो ईश्वर के ध्यान से उत्पन्न हुए सुख में निमग्न थे। तब रामचन्द्र जी ने अपना राजभेष छिपालिया और मुनि के हृदय में चतुर्भुज मूर्त्ति का दर्शन कराया ॥

चौ०—मुनि अकुलाइ उठा पुनि कैसे। बिकल दीन फनिमनि बिनजैसे ॥
आगे देखि राम तनुश्यामा। सीता-अनुज सहित सुखधामा ॥

अर्थ—फिर मुनि घबरा कर इस प्रकार उठ बैठे जैसे सांप अपने मणि के खोजाने से दीन और व्याकुल हो जाता है। उन्हों ने सीता लक्ष्मण सहित सुख के स्थान श्यामले शरीर वाले श्री रामचन्द्र जी को अपने सन्मुख देखा ॥

चौ०—परेउ लकुटइव चरनन्ह लागी। प्रेममगन मुनिवर बड़ भागी ॥
भुज विशाल गहि लिये उठाई। परमप्रीति राखे उरलाई ॥

अर्थ—बड़े भाग्यवान् मुनि प्रेम में मग्न हो लठिया की नाईं चरणों में गिर पड़े (अर्थात् मुनि ने रामचन्द्र जी को साष्टांग प्रणाम किया)। रामचन्द्र जी ने अपनी लम्बी भुजाओं से उन्हें उठा लिया और बड़े प्रेम से हृदय में लगा लिया ॥

---

* तब रघुनाथ निकट चलिआये। देखिदशा निज जन मन भाये—के पश्चात् का क्षेपक-

सो०—राम सुसहज सुभाव सेवक-दुख-दारिद-दमन।
मुनि सन कह प्रभु आव, उठ उठ द्विज मम प्रानसम ॥

अर्थ—रामचन्द्र जी तो सुन्दर सहज स्वभाव ही से दासों के दुःख और दारिद्र का नाश करने वाले हैं। वे मुनीश्वर से कहने लगे "हे ब्राह्मण उठ कर आजाओ! तुम तो मुझे प्राणों के समान प्यारे हो"

चौ०—मुनिहिमिलत असलोह कृपाला। कनकतरुहि जनु भेट तमाला*॥
रामवदन विलोकि मुनि ठाढ़ा। मानहुँ चित्र माँझ लिखिकाढ़ा॥

शब्दार्थ—कनकतरु=पलाश वृक्ष या सुवर्णकदली। तमाल=काली छाल का वृक्ष विशेष॥

अर्थ—मुनि से मिलने में भगवान कैसे शोभायमान लगते हैं मानो सुवर्णकदली के वृक्ष से तमाल नाम का वृक्ष मिलता हो (अर्थात् गौरवर्ण मुनि संग श्यामवर्ण रामचन्द्र भेट रहे हैं)। (यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है)॥

श्री रामचन्द्र जी के मुख को देख मुनि जी इस प्रकार निश्चल खड़े रह गये मानो चित्र में लिख दिये हैं। (अर्थात् जिस प्रकार चित्र में लिखी हुई आकृति न चलती है, न डुलती है, न बोलती है; इसी प्रकार सुतीच्ण मुनि की दशा उस समय हो गई थी॥

दो०—तब मुनि हृदय धीर धरि, गहि पद बारहिंबार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि, पूजा विविध प्रकार॥१२॥

अर्थ—तब मुनि जी ने हृदय में धीरज रख बारम्बार चरण छूकर प्रभु को अपने आश्रम में ला, उनकी अनेक भाँति से पूजा की॥

चौ०—कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करउँ कवन विधितोरी॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रविसन्मुख खद्योत अँजोरी‡॥

शब्दार्थ—अमित=बहुत। खद्योत=जुगनू, पटबीजना। अँजोरी=उजेला॥

अर्थ—फिर मुनि जी कहने लगे हे स्वामी! मेरी विनय सुनिये मैं आप की बड़ाई किस प्रकार करूं। आप की महिमा तो बहुत है और मेरी बुद्धि थोड़ी है जिस प्रकार सूरज के साम्हने जुगनू का उजेला कुछ भी नहीं॥

---

* मेदिनी कोष में लिखा है:—"तमालस्तिलके खड्ग तापिच्छे वरुणद्रुमे" अर्थात् तमाल शब्द का अर्थ [१] तिलक [२] तलवार [३] तापिच्छ [४] वरुण वृक्ष है॥ तमाल वृक्ष श्यामवर्ण प्रसिद्ध है जैसे जयदेवजी गीतगोविन्द में लिखते हैं "वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमैः" इसी प्रकार "प्रसन्नराघव" नाटक में कदली को हेमलतिका कहा है यथा "हे बालहेमलतिके" इत्यादि

‡ "अँजोरी" के स्थान में कहीं 'उजारी' कहीं 'उँजोरी' लिखा है इन सब का अर्थ उजेला है, परन्तु "अजोरी" पाठान्तर का अर्थ वे जोड़ का होता है अर्थात् बराबरी नहीं कर सका है॥

चौ०–श्याम–तामरस–दाम–शरीरं। जटामुकुट–परिधन–मुनिचीरं॥
पाणिचाप–शर–कटि–तूणीरं। नौमि निरन्तर श्रीरघुवीरं॥

शब्दार्थ—तामरस=कमल। दाम=समूह। परिधन=पहरे हुए। मुनिचीरं=वल्कल (वृक्षों की छाल)। पाणि=हाथ। कटि=कमर। तूणीरं=तरकस॥

अर्थ—आप का शरीर नीले कमलों के समूह के समान श्यामला है, आप जटा का जो जूड़ा बांधे हुए हैं वही मानो मुकुट के समान है और आप वृक्षों की छाल पहने हुए हैं। आप हाथ में धनुष बाण धारण किये हैं और कमर में तरकस बांधे हैं। ऐसे श्री रामचन्द्र जी को मेरा बारम्बार प्रणाम है॥

चौ०–मोह-विपिन–घन-दहन-कृशानुः। संतसरोरुह–कानन भानुः॥
निशिचर करि–वरूथ-मृगराजः। त्रातु सदा नोभवखगबाजः॥

शब्दार्थ—विपिन=जंगल। घन=घना। दहन=जलाने को। कृशानु=अग्नि। सरोरुह=कमल। कानन=वन। भानु=सूर्य। करि=हाथी। वरूथ=झुण्ड। मृगराज=सिंह। त्रातु=रक्षा करो। नो (नः)=हम लोगों की। भवखगबाज=संसार रूपी पक्षी को बाज के समान॥

अर्थ—आप अज्ञानरूपी घने वन को जलाने के लिये अग्नि के समान हैं और संतरूपी कमलों के बन को प्रफुल्लित करने के लिये सूर्य के समान हैं। राक्षसों के हाथीस्वरूपी झुण्ड को नाश करने के लिये सिंह के समान हैं और संसार-रूपी पक्षी को मिटाने के लिये बाज के समान हैं। (अर्थात् जिस प्रकार जुर्रा पक्षी दूसरे पक्षियों का नाश कर डालता है इसी प्रकार आप संसार से आवागमन के मिटाने वाले हैं, हमारी सदा रक्षा कीजिये। (उपमा अलंकार है)॥

चौ०–अरुण–नयन–राजीव–सुवेशं। सीता-नयन-चकोर–निशेशं॥
हर–हृदि–मानस–राजमरालं। नौमि राम-उर-बाहु-विशालं*॥

शब्दार्थ—अरुण=लाल। निशेश (निशा=रात्रि+ईश=स्वामी)=रात्रि का स्वामी अर्थात् चन्द्र। हृदि=हृदय में। मानस=मानसरोवर। राजमराल=राजहंस। उर=हृदय। विशाल=बड़ी, विस्तीर्ण॥

अर्थ—आप के नेत्र कमल समान ललामी लिये हुए हैं, आप का सुन्दर रूप है और आप सीता के चकोररूपी नेत्रों को आनन्द देने वाले चन्द्रमा के समान हैं।

---

* "उर बाहु विशालं" चौड़े हृदय और आजान बाहु पुरुष बड़े पराक्रमी और राज्याधिकारी होते हैं॥ (देखो सामुद्रिकशास्त्र श्लोक ११२, १२४, १३१)॥

(अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा के देखने से चकोर को आनन्द होता है उसी भांति आप को देखकर सीता जी को बड़ा आनन्द होता है)। महादेव जी के हृदयरूपी मानसरोवर के आप राजहंस हो (अर्थात् आप शिव जी के हृदय में निरन्तर वास करते हो) आपका विस्तृत हृदय और लम्बी भुजाएं हैं, आप को मैं प्रणाम करता हूं ॥

चौ०–संशय–सर्प–ग्रसन–उरगादः। शमन–सकल संताप विषादः॥
भय–भञ्जन–रञ्जन–सुरयूथः। त्रातु सदा नः कृपावरूथः॥

शब्दार्थ—उरगाद (उरग=सर्प+अद=खाना)=सर्प का खाने वाला अर्थात् गरुड़। शमन=नाश करने वाले। सन्ताप=चिन्ता, क्रोध। विषाद=दुःख उदासी। भंजन=नाशकर्त्ता। रंजन=सुख देने वाला। यूथ=झुण्ड। त्रातु=रक्षा करो। नः=हमारी। वरूथ=घर, स्थान॥

अर्थ—आप संशयरूपी सर्प को मिटाने के लिये गरुड़ के समान हो और संपूर्ण चिन्ता और दुःख के नाश करने वाले हो। आप भय से छुड़ाने वाले हो और देवताओं की समाज को आनन्द देने वाले हो; हे कृपानिधान ! मेरी रक्षा कीजिये॥

चौ०–निर्गुण–सगुण–विषम–समरूपं। ज्ञान–गिरा–गोतीतमनूपं॥
अमलमखिलमनवद्यमपारं। नौमि राम भञ्जन महिभारं॥

शब्दार्थ—निर्गुण=सत, रज, तम इन तीनों गुणों से अलिप्त। सगुण=तीनों गुणों से युक्त। विषम=जो एकसा न हो। गिरा=वाणी। अनूप=उपमा रहित। अमलम्=मल रहित। अखिलम्=पूर्ण रूप। अनवद्यम्=दूषण रहित। अपारम्=सीमा रहित॥

अर्थ—आप का निर्गुण रूप अर्थात् ब्रह्म स्वरूप तो सदा सम अर्थात् एकसा रहता है उसमें कुछ विकार नहीं होता और आप का सगुण शरीर अर्थात् राम कृष्ण आदि अवतार विषम अर्थात् सदा बदलने वाले हैं और ये दोनों स्वरूप ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से परे हैं॥

दूसरा अर्थ—आप का स्वरूप निर्गुण अर्थात् छोड़ने के योग्य दुर्गुणों से रहित परन्तु सगुण अर्थात् स्वीकार करने योग्य उत्तम गुणों सहित है (सारांश, आप में मद, मत्सर, असूया आदि बुरे गुण नहीं हैं किन्तु दया, उदारता, क्षमा आदि उत्तम गुण परिपूर्ण हैं) और आप का स्वरूप भक्तों और अभक्तों के भेद से विषम अर्थात् एकसा नहीं परन्तु शरणागतों के सम्बन्ध से सम अर्थात् एकसा है और पूर्वोक्त प्रकार का आप का रूप बुद्धि, वाणी और इन्द्रियों से परे है॥

अर्थ—हे राम आप निर्मल हो, अखंड हो, दोष रहित और अनन्त हो, आप पृथ्वी के भार उतारने वाले हो, आप को मेरी दण्डवत है ॥

चौ०—भक्त कल्पपादप आरामः । तर्जन क्रोध लोभ मद कामः ॥
अति-नागर-भवसागर-सेतुः । त्रातु सदा दिनकरकुलकेतुः ॥

शब्दार्थ—पादप (पाद=पांव, जड़+पा=पीना)=जो जड़ के द्वारा खाद्य खींचे अर्थात् वृक्ष । कल्पपादप=कल्पवृक्ष अर्थात् वह वृक्ष जिस के नीचे बैठने से जो इच्छा करो सो पूर्ण होती है । आराम=बग़ीचा । तर्जन=नाशकर्त्ता । नागर=चतुर । सेतु=पुल । दिनकर=सूरज । केतु=झंडा ॥

अर्थ—आप भक्तों को कल्पवृक्ष के बग़ीचे के समान हो (अर्थात् भक्तों के सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करते हो) और आप क्रोध, लालच, अहंकार और काम को नाश करनेवाले हो । आप संसाररूपी समुद्र के पुल बाँधने में बड़े चतुर हो (अर्थात् आप अपने भक्तों को भवसागर पार उतारनेवाले हो) हे सूर्यकुल की ध्वजा अर्थात् सूर्यवंशियों में श्रेष्ठ ! आप सदा हमारी रक्षा कीजिये ॥

चौ०—अतुलित-भुज-प्रताप—बलधामा । कलिमल-विपुल-विभंजननामा ॥
धर्म्म वर्म्म नर्म्मद गुणग्रामः । सन्तत शंतनोतु मम रामः * ॥

शब्दार्थ—अतुलित=अतौल, बे हिसाब, अत्यन्त । विपुल=बहुत । वर्म्म=कवच या बख्तर । नर्म्मद=कल्याणदाता । गुणग्रामः=गुणों का समूह । शं=कल्याण । तनोतु=फैलाइये या दीजिये । मम= मुझ को ।

अर्थ—आप की भुजाओं का बड़ा प्रताप है, आप सामर्थ्यवान् हो और आप का नाम कलियुग के असंख्य पापों का नाश करने वाला है । आप के गुणों का समूह धर्म का रक्षक और कल्याणदाता है, हे राम ! आप सदैव मुझे कल्याण दीजिये ॥

चौ०—यदपि विरजव्यापक अविनासी । सब के हृदय निरन्तर वासी ॥
तदपि अनुज सिय सहित खरारी † । बसहु मनसि मम काननचारी ॥

---

* "मम रामः" इस के पाठान्तर कहीं "अभिरामं" और कहीं "मम कामं" है ।

† "खरारी" यहाँ यह सन्देह हो सकता है कि रामचन्द्र जी ने अभी खर नाम राक्षस को तो मारा ही नहीं "खरारि" का विशेषण कैसे पाया । उस का समाधान एक तो यह है कि मुनि तप बल से त्रिकालदर्शी होते हैं सो भविष्य का हाल बताते हैं कि अल्पकाल में आप खर का बध करेंगे, और दूसरा यह है कि अवतार अनेक बार हुआ करते हैं कदा-

शब्दार्थ—यदपि=अगरचे । विरज=जन्म रहित । व्यापक=सब में भरे हुए । तदपि=तौभी । खरारी (खर=एक राक्षस का नाम+अरि=शत्रु)=खर नाम राक्षस के मारने वाले । मनसि=मन में । काननचारी=जंगल के घूमने वाले ॥

अर्थ—(हे भगवान) यद्यपि आप जन्म रहित, व्यापक, नाश रहित और सब के हृदय में लगातार वास करने वाले हैं । तौभी हे खर नाम राक्षस के मारनेवाले ! वनवासी राम लक्ष्मण सीता जी सहित मेरे हृदय में निवास करो ॥

चौ०–जे जानहिं ते जानहु स्वामी । सगुन अगुन उर-अन्तरयामी ॥
‡जो कोशलपति राजिवनयना । करउ सो राम हृदय मम अयना ॥

शब्दार्थ—अयना (अयन)=स्थान ॥

अर्थ—हे हृदय की जानने वाले स्वामी ! जो आप के सगुण और निर्गुण रूपों के भेदों को जानते हों सो जाने । परन्तु जो अयोध्यानाथ कमलनयन आप हैं सो मेरे हृदय में इसी रूप से वास कीजिये (सारांश यह है कि कोई तो आप को ब्रह्मरूप मानता है और कोई आप के किसी अवतार का उपासक है परन्तु मैं तो केवल रामरूप का प्रेमी हूं)॥

चौ०–†अस अभिमान जाय जनि भोरे । मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥

अर्थ—ऐसा विश्वास भूल करके भी न जाय कि मैं तो दास हूं और रामचन्द्र जी मेरे स्वामी हैं (अर्थात् मुझ में सेवक भाव सदा बना रहे)॥

चित् पूर्व अनुसंधान से ऐसा कहा गया हो कि पहिले किसी कल्प के रामावतार में खर को मार चुके हैं ॥ कहा है तुलसीदास जी ने बालकाण्ड में :—

नाना भाँति राम अवतारा । रामायण शतकोटि अपारा ॥
कल्प भेद हरि चरित सुहाये । भाँति अनेक मुनीशन गाये ॥
करिय न संशय अस उर आनी । सुनिय कथा सादर रतिमानी ॥
दो०—राम अनन्त अनन्तगुण, अमित कथा विस्तार ।
सुनि आचरज न मानहहिं, जिन के विमल विचार ॥

‡ जो कोशलपति राजिव नयना । करउ सो राम हृदय मम अयना—के पश्चात का सो०

सो०—मायावश जिमि जीव, रहहि सदा सन्तत मगन ।
तिमि लागहु मोहि पीव, करुणाकर सुन्दर सुखद ॥

अर्थ—जिस प्रकार जीव माया के आधीन हो निरन्तर अपने को आनन्द में डूबा हुआ समझता है इसी भाँति हे दयासागर सुन्दर सुख देनेवाले (प्रभु)! आप मुझे प्यारे लगें ।

† अस अभिमान जाय जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे—के पश्चात् का दो०—
राम भक्ति तजि चह कल्याना । सो नर अधम शृगाल समाना ॥

(अर्थ)

चौ०—सुनि मुनिवचन राममन भाये । बहुरि हरषि मुनिवर उरलाये ॥
परम प्रसन्न जानि मुनि मोही । जो वर माँगहु देउँ सो तोही ॥

अर्थ—रघुनाथजी को मुनि के वचन प्रिय लगे और उन्हों ने आनन्द-पूर्वक श्रेष्ठ मुनि को अपने हृदय से लगा लिया । (रामचन्द्रजी कहने लगे) हे मुनि ! तुम मुझे बहुत प्रसन्न समझो, जो वर माँगोगे सो पाओगे ॥

चौ०—मुनि कह मैं वर कबहुँ न जाँचा । समुझि न परइ झूठ का साँचा ॥
तुमहिं नीक लागइ रघुराई । सो मोहि देहु दास सुखदाई ॥

अर्थ—मुनि जी बोले मैंने वरदान कभी नहीं मांगा, क्योंकि मैं यह नहीं जानता कि सत्य क्या है और असत्य क्या है । हे भक्तों को सुख देनेवाले रामचन्द्रजी ! जो आप को अच्छा समझ पड़े, वही मुझे दीजिये ॥

चौ०—अविरल भक्तिविरति विज्ञाना । होहु सकल-गुन—ज्ञाननिधाना ॥
प्रभु जो दीन्ह सो वर मैं पावा । अब सो देहु*मोहि जो भावा ॥

अर्थ—(रामचन्द्रजी बोले) तुम्हारी अटल भक्ति मुझ में हो, तुम को वैराग्य और विशेष ज्ञान हो और तुम सम्पूर्ण गुण और ज्ञान से भरे पूरे हो जाओ । (मुनि जी कहने लगे कि) हे स्वामी ! जो वरदान आप ने दिये सो तो मैंने पाये, अब यह वरदान भी दीजिये जिसमें मेरी रुचि है ॥

दो०—अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप—बान—धरि राम ।
मम हियगगन इन्दुइव, बसहु सदा निष्काम† ॥ १२ ॥

अर्थ—जो मनुष्य श्री रामचन्द्र जी की भक्ति छोड़ अपनी भलाई चाहे वह सियार के समान नीच प्रकृति है । (अर्थात् रामभक्ति बिन कल्याण नहीं है) ॥

* शंका—यदि कोई कहे कि पहिले तो मुनि जी ने कहा था कि "मैं यह नहीं जानता कि क्या झूठ है और क्या सच है इसलिये वरदान नहीं माँगता" और फिर क्यों माँगा उस का समाधान यह है कि सचमुच मुनि जी ने कभी वरदान नहीं माँगा था । परन्तु जब रामचन्द्र जी ने अपनी इच्छा से यह वरदान दिया कि तुम सम्पूर्ण ज्ञान और विज्ञान वाले होओ, तब तो मुनि को ज्ञान उत्पन्न हुआ और वे माँगने को तत्पर हुए ॥

† "निष्काम" यह विशेषण देहरी दीपकवत् है अर्थात् रामचन्द्र जी कामना रहित हैं और जब इनका निवास मुनिजी के हृदय में होगा तो वे भी निष्काम हो जावंगे । "निष्काम" के स्थान में कहीं २ "यह काम" ऐसा पाठान्तर है, जिस का अर्थ "यह मेरी कामना है" ॥

॥ अर्थ—हे स्वामी श्री रामचन्द्र जी! आप धनुष वाण धारण लिये हुए सीता लक्ष्मण सहित मेरे हृदय में इसप्रकार वास करो। जैसे चन्द्रमा आकाश में निवास करता है और ऐसा करने से मुझ में और किसी बात की इच्छा न रहेगी॥

चौ०—*एवमस्तु कहि रमानिवासा। हरषि चले कुम्भज ऋषि पासा॥

शब्दार्थ—एवमस्तु (एवम्=ऐसा + अस्तु होय)=ऐसा ही होवे। रमानिवास =लक्ष्मी के निवास स्थान अर्थात् रामचन्द्र जी॥

॥ अर्थ—श्री रामचन्द्र जी एवमस्तु (ऐसा ही होय) यह कह कर प्रसन्नता-पूर्वक अगस्त्य ऋषि के आश्रम की ओर चले।

चौ०—बहुत दिवस गुरुदर्शन पाये। भये मोहि एहि आश्रम आये॥
†अब प्रभु संग जाउँ गुरु पाहीं। तुमकहँ नाथ निहोरा नाहीं॥

अर्थ—मुझे अपने गुरु (अगस्त्य ऋषि) के दर्शन लेकर इस आश्रम में आये हुए बहुत दिन होचुके हैं। अब आप के संग गुरु जी के पास चलना चाहता हूं, हे स्वामी! इस में आपका कुछ निहोरा नहीं है॥

चौ०—देखि कृपानिधि मुनिचतुराई। लियेसंग बिहँसे दोउ भाई॥
‡पन्थ कहत निज भक्ति अनूपा। मुनिआश्रम पहुँचे सुरभूपा॥

---

* एवमस्तु कहि रमानिवासा। हरषि चले कुम्भज ऋषि पासा—के पश्चात् का क्षेपक—
मुनि प्रणाम करि युग कर जोरी। सुनहु नाथ कछु विनती मोरी॥
अर्थ—सुतीक्ष्ण दोनों हाथ जोड़ कर कहने लगे हे नाथ! कुछ विनय मेरी और भी सुनिये॥

† अब प्रभु संग जाउँ गुरु पाहीं। तुम कहँ नाथ निहोरा नाहीं—के पश्चात् का क्षेपक—
चले जात मग तव पदकंजा। देखिहौं जे विराधमद गंजा॥
अर्थ—मार्ग में जाते हुए आपके इन चरण कमलों का दर्शन करता चलूंगा जिन्हों ने अभी विराध नाम राक्षस के घमण्ड का नाश किया है॥

‡ पन्थ कहत निज भक्ति अनूपा। मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा-के पश्चात् का क्षे०—
आश्रम देखि महा शुचि सुन्दर। सरित सरोवर कानन भूधर॥
जलचर थलचल जीव जहाँ ते। वैर न करहिं प्रीति सब हो ते॥
शब्दार्थ—महाशुचि=बहुत पवित्र। सरित=नदी। कानन=जंगल। भूधर=पहाड़॥

अर्थ—बहुत ही पवित्र और उत्तम आश्रम दिखाई दिया, उसमें नदी, तालाब, जङ्गल, पहाड़, (सब मनोहर थे)। पानी में और पृथ्वी पर रहने वाले जितने जीवधारी वहाँ थे, वे एक दूसरे से वैर नहीं करते थे, वरन परस्पर मेल से रहते थे॥
*, 'वैर न करहिं' तपस्वी महात्माओं के प्रताप से तपोवन-वासी जीवधारी, चाहे वे
(स्वभाव)

अर्थ—दयासागर रामचन्द्र जी ने मुनि की यह चतुराई देख उन्हें साथ लेलिया और दोनों हँसते हँसते चले। मार्ग में अपनी श्रेष्ठ भक्ति का कथन करते हुए देवताओं के राजा रामचन्द्र जी अगस्त्यमुनि के आश्रम में पहुंचे।

चौ०—तुरत सुतीक्षण गुरुपहँ गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥
नाथ केशलाधीशकुमारा। आये मिलन जगतआधारा॥
राम अनुज समेत वैदेही। निशिदिन देव जपतहहु जेही॥

अर्थ—सुतीक्षण अगस्त्य ऋषि के पास जल्दी से गये और उन्हें प्रणाम कर कहने लगे हे स्वामिन्! अयोध्याधिराज राजकुमार संसार के आधार (श्री रामचन्द्र जी) आप से मिलने को आये हैं। हे गुरुदेव! वही रामचन्द्र जी लक्ष्मण और सीता समेत (आये हैं) जिनका आप रातदिन स्मरण किया करते हैं।

चौ०—सुनत अगस्त्य* तुरत उठिधाये। हरिबिलोकि लोचन जलछाये॥

अर्थ—यह समाचार सुनकर अगस्त्य ऋषि जल्दी से उठ दौड़े और श्रीरामचन्द्र जी को देखते ही उनके नेत्रों में प्रेम के आँसू भर आये।

चौ०—मुनि-पद-कमल परे दोउभाई। ऋषि अतिप्रीति लिये उरलाई॥
सादर कुशल पूछि मुनि ज्ञानी। आसन पर बैठारे आनी॥

स्वभाव ही से परस्पर के विरोधी क्यों न हों सहज बैर बिसराय, मित्र भाव से रहते हैं कारण महात्माओं की समदृष्टिऔर उग्र तपस्या का प्रभाव ही ऐसा है जैसे महादेव जी का प्रताप कैलास पर और कुम्भज ऋषि का इस तपोवन में। यथा—

मत्तगयन्द सवैया :—

शम्भु भवानि के बैल रु सिंह सप्रेम बसैं मिल चाहिये जैसो।
त्यौंहि मयूर षड़ानन यान ग्रसै नहिं व्याल सुकाल हितैसो।
नागहि संग गजानन वाहन प्रीति करै! कहु कारण कैसो?
है सु "विनायक" धन्य प्रभाव तपोवन औ तपसीन को ऐसो॥

दो०—तरु बहु बिधि सो विहँगमृग, बोलत बिबिध प्रकार।
बसहिं सिद्ध मुनि तप करहिं, महिमा गुन-आगार॥

अर्थ—वृक्षों पर नाना प्रकार के पक्षी और भूमि पर भाँति भाँति के जीवधारी अनेक प्रकार की बोलियां बोल रहे थे। वहीं पर प्रतापवान् सकल गुणनिधान सिद्ध और मुनि तपस्या के हेतु निवास करते थे॥

* "अगस्त्य किंवा अगस्ति"—ये प्रसिद्ध महर्षि ऋग्वेद के कई सूक्तों के ऋषि अर्थात् द्रष्टा हैं। वेद में इन महात्मा की उत्पत्ति मित्रावरुण के वीर्य से कही गयी है। कहते हैं कि एक समय आकाश मार्ग से शृंगारयुक्त उर्वशी को जाते हुए देख मित्रावरुण का वीर्य स्खलित हुआ जिस में कुछ तो घड़े के संसर्ग

अर्थ—दोनों भाई मुनि के चरण कमलों में गिरे तब ऋषि ने बड़ी प्रीति से उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। ज्ञानवान् मुनि ने आदर से उनकी कुशल पूछी और फिर उन्हें आसन पर बैठाया॥

से अगस्त्य के जन्म का कारण हुआ (और शेष वशिष्ठ के जन्म का)। इसी कारण अगस्ति के नाम घटयोनि, घटज, कुम्भज, घटोद्भव, कलशीसुत आदि हैं। इन को मैत्रावरुणी और और्वशेय भी कहते हैं। (१) कथा है कि एकबार मेरु [अर्थात् हिमालय] पर्वत की श्रेष्ठता और महत्व प्राप्त करने की इच्छा से, विन्ध्याचल इतना ऊँचा बढ़ा कि उसने सूर्य चन्द्रादि का मार्ग रोक दिया। देवताओं की प्रार्थना से अगस्त्य ऋषि अपने शिष्य विन्ध्याचल के पास गये, ज्यों हीं उसने इन्हें साष्टांग प्रणाम किया त्यों हीं उसे आशीर्वाद दे ऐसा कह दक्षिण को चले गये "कि मेरे आने तक तुम इसी अवस्था में रहना" और फिर न लौटे। दक्षिण में जाकर अगस्त्य ऋषि ने दण्डकारण्य के कुंजर पर्वत पर अपना निवासस्थान बनाया और वहाँ पर बड़े बड़े पुण्यपराक्रम और प्रभावशाली कार्य कर राक्षसों की उद्दण्डता को दबाये रहे। [२] एक कथा यों है कि 'इल्वल श्राद्ध के बहाने ब्राह्मणों का निमंत्रण किया करता था, और अपने भाई वातापी को मढ़ा रूप धारण कराता था, फिर उसका मांस पकाकर निमंत्रित ब्राह्मणों को खिला देता था। जब वे खा चुकते थे तो 'इल्वल' मायावी वातापी का नाम लेकर पुकारता था वह झटपट ब्राह्मणों का पेट फाड़ कर बाहर निकल आता था। इसीप्रकार असंख्य ब्राह्मणों की मृत्यु हुआ करती थी। देवताओं की प्रार्थना से अगस्ति ऋषि पहिले तो वातापी को खाकर पचागये और पीछे से उन्हों ने इल्वल को भी क्रोध दृष्टि से भस्म कर डाला। [३] एकबार ब्रह्महत्या के कारण छिपेहुए इन्द्र के स्थान में स्वर्ग का राज्य करतेहुए राजा नहुष को, जिसने इन्द्रानी सहगमन की आकांक्षा से, कई ब्रह्म ऋषियों को पालकी में लगाकर अगस्त्य जी को अपने चरण से छुआ था, इन्हीं अगस्त्य जी ने शाप दे सर्प बना दिया था परन्तु उसकी करुणा से दयालु हो उसके उद्धार का उपाय और समय बता दिया। [३] इन्हें "पीताब्धि" इसलिये कहते हैं कि इन्हों ने एकबार कुछ तो समुद्र से क्रोधित होने के कारण और कुछ इन्द्र और देवताओं की सहायता के लिये जिन्हें त्रैलोक्यत्रासी राक्षसगण बहुत सताकर समुद्र में जा छिपते थे; समुद्र को पी लिया था और इस उपाय से उस में छिपे हुए राक्षसों का भी नाश किया। [५] वाल्मीकीय रामायण में कथा है कि इन्होंने विष्णु का धनुष बाणों से सदा परिपूर्ण रहनेवाले दो तरकस और एक खड्ग ये अमोघ अस्त्र श्री रामचन्द्र जी को उस समय दिये थे जब कि वे बनवास के समय इनके आश्रम में पधारे थे। ये महर्षि दक्षिण में प्राचीन द्राविड़ जातियों के विज्ञान शास्त्र और साहित्य आदि के प्रथम उपदेशक थे। तामिल भाषा और उसके साहित्य के यही एक मुख्य कर्त्ता गिने जाते हैं। दक्षिण में सनातन धर्म के प्रचारक अगस्त्य ऋषि ही थे। ये महात्मा परमदयालु, उदारचित्त और बड़े तत्वज्ञानी थे। धनुर्विद्या में अद्वितीय होकर इन महात्मा जी ने दक्खन [दक्षिण] देश बसाने में विशेष प्रयत्न किया था। इन की स्त्री लोपामुद्रा सर्वाङ्गसुन्दरी और साध्वी थी॥

पौराणिक कथाओं का समाधान किष्किन्धा कांड पृ० ५० और ५१ की टिप्पणी में मिलेगा।

चौ०—पुनिकरि बहुप्रकार प्रभुपूजा । मोहि सम भागवन्त नहिं दूजा ।
जहँ लगि रहे अपरमुनिवृन्दा। हरषे सब्र विलोकि सुखकन्दा ।।

अर्थ—फिर अनेक भांति से उनका पूजन किया (और कहा) मेरे समान भाग्यवान् पुरुष दूसरा नहीं है। और भी जितने मुनियों के समूह थे वे सब के सब सुखके मूल कारण श्री रामचन्द्र जी को देख कर प्रसन्न हुए ।।

दो०—मुनिसमूह महँ बैठ प्रभु, सन्मुख*सब की ओर ।
शरद इन्दु तन चितवत, मानहुँ निकर चकोर ।। १४ ।।

अर्थ—मुनियों की समाज में रामचन्द्र जी इस प्रकार बैठे थे कि उन का मुख सब के साम्हने पड़ता था और रामचन्द्र जी को मुनियों का समूह इस प्रकार देख रहा था मानो चकोर पक्षियों के झुंड चन्द्रमा की ओर देख रहे हों ।।

चौदहवें दोहे के पश्चात् का क्षेपक—

चौ०—पाइ सुथल जल हर्षित मीना । पारस पाइ सुखी जिमि दीना ।।
प्रभुहि निरखि सुखभा इहिभाँती । चातक जिमि पाई जल स्वांती ।।

अर्थ—जैसे सुन्दर जल के स्थान को पाकर मछली प्रसन्न हो, जैसे कंगाल मनुष्य पारस पाकर सुखी हो, उसी प्रकार रामचन्द्र जी को देख (मुनि) को ऐसा सुख हुआ जैसे पपीहा स्वांति के जल को पाकर सुखी होता है ।।

"पारस"—इसे स्पर्शमणि अथवा स्पर्श उपल कहते हैं और इस का स्वभाव यह बतलाते हैं कि इस के स्पर्श से लोहा स्वर्ण हो जाता है और इसीलिये यह दरिद्रियों को विशेष आनन्ददायक समझा जाता है ।।

"चातक" जिसे पपीहा भी कहते हैं अपना प्रेम, वर्षाऋतु में स्वाति नक्षत्र के समय गिरती हुई बूँदों पर, अटल रखता है और इन्हीं बूँदों से इस की प्यास बुझती है। तुलसीदास जी ने इसका वर्णन बहुतेरे स्थानों में पूर्ण प्रेम की पुष्टि में किया है। जैसे

दो०—गंगा जमुना सरस्वती , सात समुँद भर पूर ।
तुलसी चातक के मते, बिना स्वाति सब धूर ।।

* "सन्मुख सब की ओर" सन्मुख बैठने का यह अभिप्राय है कि एक ओर अगस्त्य मुनि के समीप रामचन्द्र जी बैठे थे और मुनियों का समाज उनके सामने बैठा था। जैसे व्याख्यानदाता के सामने श्रोताओं का समाज बैठता है। कोई कोई पंडितों का यह मत है कि रामचन्द्र जी सभा के मध्य विराजमान थे और मुनिगण उन के चारों ओर बैठे थे तौभी चारों ओर के मुनि रामचन्द्र जी को अपनी ही ओर मुँह किये हुए बैठे समझते थे सो यह रघुनाथ जी का रहस्य है जिसे किसी ने नहीं समझा। गोस्वामी जी ने बालकाण्ड के आदि में कहा भी तो है "सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुप्त प्रगट जहँ जो जेहि खानिक "रामचन्द्र जी के गुप्त रहस्य का और भी एक दृष्टान्त लिखते हैं "छण महँ सबहि मिले भगवाना। उमा मर्म यह काहु न जाना" ।। (उत्तरकाण्ड)

चौ०–तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं । तुम सन प्रभु दुराव कछु नाहीं ॥
तुम जानहु जेहि कारन आयउँ । ता तें नाथ न कहि समझायउँ ॥

अर्थ—तब रामचन्द्र जी ने कहा हे स्वामी ! आप से तो कुछ छिपा हुआ नहीं है । हे प्रभु ! जिस कारण मैं आया हूं सो आप जानते ही हौ, इसी से समझा कर नहीं कहा ॥

चौ०–†अब सो मन्त्र देहु प्रभु मोही । जेहि प्रकार मारउँ मुनिद्रोही ॥

अर्थ—हे प्रभु ! अब मुझे ऐसा उपदेश दीजिये कि जिस से मैं मुनियों के वैरी राक्षसों को मारूं ।

चौ०–मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी । पूछेहु नाथ मोहि का जानी ॥
तुम्हरेइ भजनप्रभाव अघारी । जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी ॥

अर्थ—राम जी का वचन सुनकर मुनि जी मुसुकराये और कहने लगे हे स्वामी ! आप मुझ से क्या जानकर ऐसा पूछते हो ? हे पापनाशक ! आप ही के भजन प्रताप से आप की महिमा कुछ थोड़ी सी जानता हूं ॥

---

† अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही—के पश्चात् का क्षेपक—
द्विजद्रोही न बचहिं मुनिराई । जिमि पङ्कजवन हिमऋतु पाई ॥
अर्थ—हे मुनिराज ! ब्राह्मणों के वैरी राक्षस इस प्रकार न बचें जैसे शरद ऋतु के आने पर कमलों का बन नहीं बचता (अर्थात् सूख जाता है) ॥

८ ६ १ १० ७ ५
क्षे० सो०–भ्रुकुटी निरखत नाथ, रहत सदा पद कमलतर ।
३ ६ ४ २
जिन डारे निज गात, विबुध विधाता सिद्ध हर ॥

अर्थ—हे रामचन्द्र जी ! देवता, ब्रह्मा, सिद्ध और महादेव जी, जिन्हों ने अपने अपने शरीर आप के कमलरूपी चरणों के नीचे डाल रक्खे हैं वे सदैव आप की भ्रुकुटी की ओर निहारा करते हैं) अर्थात् सम्पूर्ण देवता जो आप की सेवा में तत्पर रहते हैं निरन्तर इस बात की चिन्ता से आप की भृकुटी को ताकते रहते हैं कि कदाचित् हमारी सेवा में कोई भूल तो नहीं हुई, सारांश वे सब सदा आप को प्रसन्नता चाहते हैं) ॥

'विबुध विधाता सिद्ध हर" इनकी सेवा के विषय में गोसाईं जी ने प्रायः इसी आशय का कथन बालकाण्ड में उस समय किया है जब कि रामावतार के विषय सती को मोह हुआ था । जैसे—

जहँ चितवत तहँ प्रभु आसीना । सेवहिं सिद्ध मुनीश प्रवीना ।

(देखे)

चौ०-ऊमरतरु विशाल तव माया । फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥

अर्थ—तुम्हारी अद्भुत माया ऊमर के वृक्ष के समान है और जो सहस्रों ब्रह्मांड हैं वे मानो उस वृक्ष के फल हैं ॥

चौ०-जीव चराचर जन्तुसमाना । भीतर बसहिं न जानहिं आना ॥
ते फलभच्छक कठिन कराला । तव भय डरत सदा सोउ काला ॥

अर्थ—चलने वाले और स्थिर जीव मानो फलों के भीतर के कीड़े हैं जो उस के बाहर के फलों आदि का हाल नहीं जानते । इन ब्रह्मांडरूपी फलों का नाश करने वाला वह अति भयंकर काल भी आप के भय से सदा डरता रहता है ॥

चौ०-ते तुम सकल लोकपति साईं । पूछेहु मोहि मनुज की नाईं ।
यह वर माँगउँ कृपानिकेता । बसहु हृदय श्री-अनुज-समेता ॥

अर्थ—ऐसे सम्पूर्ण ब्रह्मांडों के स्वामी आप ने मुझ से मनुष्य की नाईं पूछा । हे कृपालु रामचन्द्र जी ! मैं यह वरदान मांगता हूं कि आप सीता और लक्ष्मण सहित मेरे हृदय में वास कीजिये ॥

चौ०-अविरल भक्ति विरति सतसंगा । चरनसरोरुह प्रीति अभंगा ॥
यद्यपि ब्रह्म अखण्ड अनन्ता । अनुभवगम्य भजहिं जेहि संता ॥
अस तव रूप बखानउँ जानउँ । फिरिफिरि सगुनब्रह्मरतिमानउँ ॥

अर्थ—अपनी निश्चल भक्ति, वैराग्य, सज्जनों का संग और चरण कमलों में अचल प्रीति दीजिये । यद्यपि आप का निर्गुण स्वरूप अखण्ड और अन्त रहित है तौ भी उस स्वरूप को जब संत जन भजते हैं तो वह उन्हें निज अभ्यास से प्राप्त हो सक्ता है । इस प्रकार से आप के निर्गुण स्वरूप का वर्णन है और उसे मैं जानता हूं तौ भी बारम्बार आप के सगुण स्वरूप में मेरी प्रीति है ॥

देखे शिव विधि विष्णु अनेका । अमित प्रभाव एक तें एका ॥
बन्दत चरन करत प्रभु सेवा । विविधि वेष देखे सब देवा ॥

इसी सोरठे में "नाथ" के साथ "गात" यह तुकान्त नहीं मिलती उसका कारण क्षेपक ही है । कहीं पाठान्तर करके "रचि डारे निज हाथ" किया है जिस से तुक तो मिलती है पर भाव में भेद होता है ॥

क्षे० अति कराल सब पर जग जाना । अउरउ कहउँ सुनिय भगवाना ॥

अर्थ— जगत जानता है कि आप की भृकुटी सब के ऊपर अति कराल है । हे प्रभु सुनिये ! मैं और भी कुछ वर्णन करता हूँ ॥

इसी कांड में तुलसीदास जी ने 'भृकुटी' के विषय में यों कहा है "भृकुटि विलास सृष्टिलय होई"

चौ०–*सन्तत दासन्ह देहु बड़ाई । ता तें मोहि पूछेहु रघुराई ॥
‡है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ । पावन पंचवटी तेहि नाऊँ ॥

अर्थ––हे रामचन्द्र जी ! आप सदैव अपने सेवकों को बड़प्पन देते हो इसलिये मुझ से पूछते हो, सो हे स्वामी ! एक अधिक रमणीक पवित्र स्थान है जिस का नाम पंचवटी है ॥

चौ०–दण्डक†बन पुनीतप्रभु करहू । उग्र शाप मुनिवर के हरहू ॥

---

* सन्तत दासन्ह देहु बड़ाई के पहिले का दोपक–

दो०–जाहि जीव पर तव कृपा, सन्तत रहत हुलास ।
तिनकी महिमा को कहै, जेअनन्य प्रिय दास ॥

शब्दार्थ–हुलास=प्रसन्न । अनन्य (अन्=नहीं + अन्य=दूसरा=दूसरा नहीं)॥

अर्थ–जिस प्राणी पर आप की दयामात्र होती है वह सदा प्रसन्न रहता है तो फिर जो केवल आप ही के दास होकर रहते हैं उन की बड़ाई कौन कर सकता है !

‡ है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ । पावन पंचवटी तेहि नाऊँ – के पश्चात् का क्षे०

गोदावरी नदी तहँ बहई । चारिहु युग प्रसिद्ध सो अहई ॥

अर्थ–वहाँ गोदावरी नदी बहती है जो चारों युग से प्रसिद्ध चली आती है । "गोदावरी" (गो = स्वर्ग + दा = देना) = स्वर्ग देनेवाली । एक नदी है जो दक्षिण में नासिक के पास से निकलकर बंगाल समुद्र में गिरती है । इस के मनोहर तट पर श्री रामचन्द्रजी बनवास के समय पर्णकुटी बनाकर रहे थे । इसकी महिमा यों है :–

दो०–विषमय यह गोदावरी, अमृतन को फल देति ।
"केशव" जीवनहार को, दुख अशेष हरि लेति ॥
तनु परसत हरसत हियो, सरसत त्रिविधि समीर ।
सुख बरसत दरसत छटा, जहँ निवसत रघुबीर ॥

शब्दार्थ–विषमय = जलपूरित ॥

† "दण्डकवन" दण्डक नाम राजा हिन्दुस्थान के दक्षिणी विभाग में जो नर्मदा और गोदावरी नदियों के बीच में है राज्य करता था । एक बार इसने अपने गुरु शुक्राचार्य की पुत्री का कौमार्य भंग किया इसहेतु मुनिवर ने शाप दिया कि "रे दुर्बुद्धि दण्डक ! तू सदेश दग्ध हो तेरा राज्य जनशून्य जंगल हो और उस में राक्षस बास करें" । शाप के कारण ऋषि समूह यहां से भागकर पंचवटी में जा बसे । वहां भी एक समय अकाल पीड़ित हो मुनिगण अपनी रक्षार्थ गौतम ऋषिके पास गये । मुनि श्रेष्ठ नेउन्हें अपने समीप रख तपोबल से उन का पोषण किया, परन्तु जब मुनिगण को जनस्थान में लौट जाने की इच्छा हुई तब उन्हों ने छल कर मायावी गौ बना उसे गौतम जी के आश्रम में छोड़ दिया । ज्योंहीं मुनि ने उसे स्पर्श कियात्योंही वह निर्जीव हो गिर पड़ी मुनि को ऐसा छलकृत गोहत्या दोष लगाय वे सब के सब जनस्थान को लौट आये । परन्तु यह स्थान भी मुनि जी के शाप से नष्ट भ्रष्ट हो गया, कारण, मुनि जी उन के छल को समझ गये । स्मरण रहे कपट और छल का फल जो विनाश कहा गया है सो सदा सत्य है॥

अर्थ—हे प्रभु ! आप दण्डकवन को पवित्र कीजिये और श्रेष्ठ ऋषि के कठिन शाप को मिटाइये ॥

चौ०—बास करहु तहँ रघुकुलराया । कीजिय सकल मुनिन पर दाया ॥
†चले राम मुनिआयसु पाई । तुरतहिं *पंचवटी नियराई ॥

अर्थ—हे रघुकुल में श्रेष्ठ रामचन्द्र जी ! आप वहां जाकर बसिये और सम्पूर्ण मुनियों पर दया कीजिये । मुनि जी की आज्ञा पाकर रामचन्द्र जी चले और शीघ्र ही पंचवटी के पास जा पहुँचे ॥

दो०—†गीधराज सों भेट भइ, बहु विधि प्रीति दृढ़ाइ ।
गोदावरी समीप प्रभु, रहे पर्णगृह छाइ ॥ १५ ॥

---

† चले राम मुनि आयसु पाई । आदि—के आगे का क्षे०
चौ०—दिव्यलता द्रुम प्रभु मनभाये । निरखि राम ते भये सुहाये ॥
लषन-राम-सिय चरन निहारी । कानन अघ गा भा सुखकारी ॥
अर्थ—सुन्दर बेल और वृक्ष भगवान को मनोहर लगे और वे भी रामचन्द्र जी के शुभागमन से सुहावने हो गये । लक्ष्मण रामचन्द्र और सीता जी के चरणों को देख वन का शाप मिट गया और वह सुखदाई हो गया ॥

* "पंचवटी-दो०—गोदा तट नासिक निकट, मिलि अशोक बट बेल ॥
धात्री पीपल पंचवटि, गीध प्रभुहि भौ मेल ॥

सवैया—[एक रामचन्द्रिका से, दूसरा हनुमन्नाटक से]
(१) सब जात फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी ।
निघटी रुचि मीच घटी हुं घटी जग जीव जतीन की छूटी चटी ॥
अघ ओघ की बेरी कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी ।
चहुँ ओरन नाचति मुक्ति नटी गुन धूरजटी जटि पञ्चबटी ॥ १ ॥
(२) मुनिवृन्द जहां नित वेद पठी शुक सारस हंस चकोर चटी ।
जिनकी धनु नैनन जोल घटी तिनके सँग मुक्ति फिरै लिपटी ॥
दुपटी फटि जाति तहां तम की प्रकटी घट में गुरु ज्ञान घटी ।
कहिये कहँ मुक्ति हटी घरटी जहँ पर्णकुटी रघुनाथ ठटी ॥

† 'गीधराज' (जटायु)—कश्यप ऋषि की विनता नाम पत्नी से दो पुत्र उत्पन्न हुए, एक अरुण दूसरा गरुड़ । अरुण के श्येनी नाम पत्नी से संपाती और जटायु हुए । ये अपने बल के गर्व से मदान्ध हो, सूर्य के समीप जाने को उड़े । सूर्य की तीव्र तपन असह्य होने के कारण जटायु तो लौट आया, परन्तु संपाती इतने समीप जा पहुंचा कि उस के पंख जलगये, तब तो वह दक्षिण में समुद्र के किनारे जा गिरा । एकसमय शनि के प्रकोप से बड़ा भारी अकाल पड़ा, जिस के कारण संसार भर के प्राणी अन्न जल के कष्ट से बड़े दुःखित हुए । तब राजा दशरथ ने शनि से युद्ध ठाना, परंतु उस पराक्रमी ग्रह ने इन्हें रथ सहित पृथ्वी की ओर धर फेंका । जटायु पक्षी ने इन्हें

अर्थ—वहाँ जटायु से भेट हुई सो अनेक प्रकार से परस्पर प्रेम को पक्का करके भगवान गोदावरी नदी के निकट पत्तों की कुटी बनाकर रहने लगे ॥

चौ०—जब तें राम कीन्ह तहँ बासा । सुखी भये मुनि बीती त्रासा ॥
गिरि बन नदी ताल छबि छाये। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाये ॥

अर्थ—जब से रामचन्द्र जी वहाँ आ बसे तब ही से मुनीश्वर सुखी हुए और उन के सब भय मिट गये। पर्वत, वन, नदी और सरोवर शोभायमान हो गये और वे दिनोंदिन अधिक सुहावने लगने लगे ॥

चौ०—खगमृगबृन्द अनन्दित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं ॥
सो बन बरनि न सक अहिराजा* । जहां प्रकट रघुबीर बिराजा ॥

अर्थ—पशु पक्षियों के झुण्ड आनन्द से रहने लगे और भौंरे मधुर शब्द करते हुए शोभा पाने लगे। उस बन का वर्णन तो शेषनाग भी नहीं कर सक्के जहां साक्षात् रामचन्द्र जी विराजमान थे।

चौ०—एकबार प्रभु सुख आसीना। लछिमन वचन कहे छलहीना† ॥
सुरनरमुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं

अधर झेल कर पृथ्वी तक पहुँचा दिया, इस कारण इसकी मैत्री राजासे हुई। रामचन्द्र जी के पंचवटी निवास करते समय गृध्रराज [जटायु] ने अपनी कथा इन्हें सुनाई और वे इन्हीं के निकट जा बसे। जटायु की विशेष कथा इसी काण्ड में गोसाईंजी ने कही है ॥

* "अहिराज"—इनके अनेक नामहैं जैसे शेष, अहिपति, अनन्त और कोई २ इन्हें वासुकी भी कहते हैं। इनके जन्मदाता कश्यप मुनि और उनकी स्त्री कद्रू हैं। ये सहस्र शिर और दो सहस्र जिह्वा वाले कहे जाते हैं और इसीहेतु जो बातें अकथनीय होती हैं उनके विषयमें कहा जाता है कि शेष भी हजार मुँहसे उनका वर्णन नहीं कर सके। पुराणों में लिखा है कि शेषनाग पृथ्वी को अपने शिरपर धारण किये रहते हैं और प्रत्येक कल्प के अन्तमें ये अपने सहस्र मुखोंकी तीव्र अग्निज्वालाओं से सृष्टिको भस्म कर डालते हैं। फिर अपने शरीर की शैया और फण की मशहरी बनाकर विष्णु भगवान को विश्राम देते हैं। फिर सृष्टि रचना के पश्चात् जब परमात्मा अवतार धारण करते हैं तब कभी२ ये भी अवतार ले लेते हैं; जैसे इन ने रामावतार में लक्ष्मण स्वरूप और कृष्णावतार में बलराम रूप धारण किया था ॥ कूर्म्मावतार में समुद्र मथने के हेतु परब्रह्म तो कच्छप हो मंदराचल को पीठ पर धारण कर मथानी बनगये थे और शेष जी ने कड़नियां रस्सी का काम दिया था ॥

† छलहीना-छल रहित वचन कहने से यह सन्देह होता है कि लक्ष्मणजी क्या सदा छल सहित बातें किया करते थे और केवल इसी अवसर पर उन्हीं ने छल रहित वचन कहे। समाधान-छल रहित कहने से तात्पर्य यह है कि उन्हों ने अपना सन्देह मिटाने

अन्वय—छलहीना लछिमन वचन कहे ।

अर्थ—एक समय रामचन्द्र जी जब आनन्द में बैठे थे । छलहीन अर्थात् सीधे सच्चे स्वभाव वाले लक्ष्मण जी उन से कहने लगे ॥

अन्वय दूसरे प्रकार से—लछिमन छल हीना वचन कहे ।

अर्थ—लक्ष्मण जी ने छल रहित वचन कहे । हे देवताओं, मनुष्यों, मुनियों और सब चराचर जगत के स्वामी रामचन्द्र जी ! मैं इस विचार से प्रश्न करता हूं जैसा कि सेवक अपने स्वामी से शंका मिटाने को प्रश्न करता है ॥

चौ०—मोहि समुझाय कहहु सोइ देवा । सब तजि करउँ चरनरज सेवा ॥
कहहु ज्ञान विराग अरु माया । कहहु सो भक्ति करहु जेहिदाया ॥

अर्थ—हे देव ! आप मुझे वही समझाकर कहिये, जिस से मैं सब को छोड़, आप ही के चरणों की सेवा करूं । ज्ञान, वैराग्य और माया का वर्णन कीजिये और उस भक्ति को कहिये, जिस के कारण आप भक्तों पर कृपा करते हैं ॥

दो०—ईश्वर जीवहि भेद प्रभु, सकल कहहु समुझाइ ।
जा ते होइ चरन रति, शोक मोह भ्रम जाइ ॥१६॥

अर्थ—हे स्वामी ! ईश्वर और जीव में क्या भेद है यह सब मुझे समझा कर कहिये ! जिस से आप के चरणों में मेरी प्रीति हो और दुःख, मोह और सन्देह मिटें ।

सूचना—

(१) इच्छित पदार्थ की अप्राप्ति अथवा प्राप्तपदार्थ का नाश " शोक " है ।

(२) सांसारिक वस्तुओं में अपनापन मानना " मोह " है ।

(३) शरीरादि में सत्यभाव और आत्मा में असत्यभाव ही " भ्रम " है ॥

लक्ष्मण जी तो परम अनन्य-भक्त हैं उन्हें शोक, मोह, भ्रम कैसा ? समाधान-ये सब जीवों के आचार्य हैं इसहेतु मुमुक्षु जनों अथवा साधारण जीवों के लिये ये प्रश्न हैं ॥

चौ०—थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई । सुनहु तात मति मन चितलाई ॥

के निमित्त प्रश्न किये थे न कि धूर्त्तता से परीक्षा लेने को । विद्वानों का कथन है कि प्रश्न चार प्रकार के होते हैं:—पहिला आपस में वितंडबाद के लिये अर्थात् जीत हार के विचार से, यह निकृष्ट है । दूसरा उत्तरदाता की जांच के निमित्त, सो लघु है । तीसरा अपनी चतुराई बताने के विचार से, यह साधारण है । चौथा सन्देह निवारणार्थ, सो उत्तम है और इसी चौथे प्रकार के प्रश्न लक्ष्मण जी के हैं ॥

अर्थ--(रामचन्द्र जी ने कहा) हे प्यारे! मैं थोड़े ही में तुम्हारे सब प्रश्नों का उत्तर समझा के कहता हूं चित्त, मन और बुद्धि लगा कर सुनो॥

सूचनाः--लक्ष्मण जी के प्रश्न इस क्रम से हैं पहिला ज्ञान, दूसरा विराग, तीसरा माया, चौथा भक्ति, पांचवाँ ईश्वर और जीव का भेद। इन पांचों का वर्णन रामचन्द्र जी सुभीते के लिये इस क्रम से करते हैं। पहले माया, दूसरे ज्ञान, तीसरे विराग, चौथे ईश्वर और जीव का भेद और पांचवें भक्ति। इस के सिवाय कवि जी ने भी भक्ति को अंत में रखकर यह दर्शाया है कि इस काल में भक्ति ही सुलभ अतएव श्रेष्ठ है और उसी भक्ति के कारण गोसाईं जी ने मुक्ति पाई (देखो उत्तरकांड)

चौ०--मैं* अरु मोर तोर तैं माया। जेहि वश कीन्हे जीवनिकाया॥

अर्थ--"मैं कोई व्यक्ति हूं और ये पदार्थ मेरे हैं, दूसरा मनुष्य अर्थात् तू कोई दूसरी व्यक्ति है और तेरे पदार्थ अलग हैं" ऐसा विचार "माया है; जिस ने सम्पूर्ण जीवधारियों को अपने वश में कर रक्खा है (अर्थात् सभी को ये विचार उठते हैं कि हमारे और तुम्हारे में भेद है)॥

चौ०--गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥

अर्थ--हे लक्ष्मण! इन्द्रियों की और इन्द्रियों में विचरनेवाले मन की पहुँच जहां तक हो सक्ती है वहां तक सब माया है (अर्थात् मन और इन्द्रियों से जिन पदार्थों का ज्ञान होता है वे सब मायामय हैं) तुम उस माया के भेद सुनो, एक विद्या और दूसरी अविद्या॥

चौ०--एक दुष्ट अतिशय दुखरूपा। जा वश जीव पग भवकूपा॥
एक रचइ जग गुणवश जाके। †प्रभुप्रेरित नहिं निज बल ताके॥

---

* मैं अरु मोर तोर तैं माया--

अयं निजः परोवेति, गणना लघु चेतसाम्॥
उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

अर्थात् यह मेरा है और वह उसका है यह विचार अल्प बुद्धियों का है; महात्माओं को तो सब जगत ही कुटुम्ब है॥

† प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके--श्री मद्भगवद् गीता के नवें अध्याय में लिखा हैः--

श्लोक--मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्
हेतुनानेन कौंतेय जगद्विपरिवर्त्तते॥१०॥

अर्थात् मेरी सत्ता से माया चराचर जगत को उत्पन्न करती है, हे अर्जुन! इसी हेतु से यह संसार बारम्बार होता है॥

अर्थ—अविद्या रूपी माया बड़ी दुष्ट और दुख देनेवाली है इसी के आधीन हो जीव संसाररूपी गड्ढे में गिरता है (अर्थात् अज्ञान के कारण जीव संसार में जन्म लेता है) दूसरी विद्यारूपी माया संसार को उत्पन्न करती है क्योंकि संसार रचने के गुण उसके आधीन हैं तौ भी सृष्टि का काम वह ईश्वर की प्रेरणा से कर सक्ती है न कि केवल अपनी शक्ति से ॥

चौ०–ज्ञान मान जहँ एकउ नाहीं। देखत ब्रह्मरूप सब माहीं॥
कहिय तात सो परम बिरागी*। तृणसम सिद्धि† तीनिगुण‡ त्यागी॥

अर्थ—जिस अवस्था में अहंकार मूलक 'जाति, आश्रम, आदि का भेद नहीं रहता और वह सब संसार के पदार्थों को नारायण रूप देखता है तब ही (सच्चा) "ज्ञान" समझना चाहिये। (श्रुति का वाक्य है "सर्वंखल्विदंब्रह्म, नेहनानास्तिकिंचन"। अर्थात् यह सम्पूर्ण संसार ब्रह्मरूप है इस में कोई भी पदार्थ प्रकार भेद से नहीं है। हे भाई! उसे पूरा विरागी समझना चाहिये. जो आठों प्रकार की सिद्धियों और तीनों गुणों को तिनका के समान तुच्छ समझकर त्याग दे॥

दो०–माया ईश न आपु कहँ, जान कहिय सो जीव।
बन्ध मोक्षप्रद सर्व पर, माया प्रेरक सीव ॥ १७ ॥

अन्वय—(जो) आप कहँ माया ईश न जाने सो जीव कहिये (ईश्वर) बन्ध मोक्ष प्रद, सर्वपर, मायाप्रेरक, (और) सीव (है)॥

अर्थ—जो अपने को माया का स्वामी नहीं समझता वही "जीव" कहलाता है और जो बन्धन में डालने वाला या मोक्ष का देने वाला सब से परे माया की प्रेरणा करने वाला और सब की सीमा है वही "ईश्वर" है (अर्थात् जीव और

* "परम विरागी" के विषय श्रीमद्भागवत में यों कहा है:—
न नाक पृष्ठं न च सार्वभौमं, न योग सिद्धि न पुनर्भवं वा।
न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यं वाञ्छन्ति यत्पादरज प्रपन्नाः॥
सारांश—परमेश्वर के चरणों में लीन प्राणी को स्वर्ग संसारादि का अधिकार योग, सिद्धि इत्यादि सब तुच्छ हैं॥

† सिद्धि—आठ हैं जो बड़ी तपस्या करके साधुओं को प्राप्त हो सक्ती हैं यथा—
दो०—अणिमा महिमा गरुअता, लघिमा प्रापति काम।
वशीकरण अरु ईशता, अष्ट सिद्धि के नाम॥
सिद्धियों का विशेष वर्णन अयोध्याकाण्ड की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० ३१७ में देखो।

‡ गुण तीन हैं यथा, "गुणाः सत्वं रजस्तमः" अर्थात् सत, रज और तम ये तीन गुण हैं॥

ईश्वर में यही भेद है कि जीव अपने शुद्ध रूप को नहीं पहिचानता, ज्यों हीं पहिचानने का ज्ञान हुआ त्यों हीं मानो ईश्वर हो गया। जैसा अयोध्याकांड में कह आये हैं 'जानत तुमहिं तुमहिं हुइ जाई' ॥

चौ०–धर्म तें बिरति योग ते ज्ञाना। ज्ञान–मोक्ष–प्रद वेद बखाना ॥
जा तें वेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भक्ति भक्तसुखदाई ॥

अर्थ—धर्म से वैराग्य, वैराग्य से योग और योग से ज्ञान होता है और ज्ञान मोक्ष का देने वाला है ऐसा वेदों में वर्णन किया गया है। हे भाई! जिससे मैं शीघ्र प्रसन्न होता हूं वही मेरी भक्ति है जो भक्तों को सुख देनी वाली है॥

चौ०–सो स्वतंत्र अवलम्ब न आना। जेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना ॥
भक्ति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो सन्त होहि अनुकूला ॥

अर्थ—सो भक्ति स्वतंत्र है उसे दूसरे का सहारा नहीं है (अर्थात् इसमें मनुष्य निदिध्यास से ही परमात्मा को पहिचान लेता है। जैसा लिखा है—उत्तरकांड में रामभक्ति चिंतामणि सुन्दर। बसहि गरुड़ जाके उर अन्तर॥ परम प्रकाश रूप दिन राती॥ नहिं कछु चहिय दिया घृत बाती)॥ और ज्ञान विज्ञान सब उसी के आधीन है। हे लक्ष्मण जी! वह भक्ति उपमा रहित सुख की जड़ है और वह तब ही मिलती है जब सन्त लोग कृपा करते हैं॥

चौ०–भक्तिकेसाधन कहउँ बखानी। सुगम पन्थ मोहिपावहिंप्रानी ॥
प्रथमहिंविप्रचरन अतिप्रीती। निजनिजधर्मनिरत श्रुतिरीती ॥

अर्थ—भक्ति के उपाय वर्णन कर कहता हूं जिससे जीव मुझको सहज मार्ग से पा सक्ता है। पहिली भक्ति ब्राह्मणों के चरणों में अधिक प्रेम करना और वेद के अनुसार अपने२ धर्मों में लगे रहना है (इस से स्पष्ट है कि ब्राह्मणों का कर्तव्य ही है कि वे ज्ञान और विद्या का सम्पादन करें)॥

चौ०–इहिकर फलमन विषयविरागा। तबममचरन उपज अनुरागा ॥
श्रवणादिक नवभक्ति*दृढ़ाहीं। ममलीलारति अतिमनमाहीं ॥

अर्थ—इस का यह परिणाम होता है कि मन विषयों से हट जाता है और तब मेरे चरणों में प्रीति उत्पन्न हो जाती है। श्रवण आदि नौ प्रकार की भक्तियां दृढ़ होती हैं और मन में मेरे ही चरणों का अधिक प्रेम बढ़ता है॥

---

* नौ प्रकार की भक्तियां ये हैं:—
दो०—श्रवण सुनावन विष्णुयश, सुमिरन अरु पदसेव।
पूजन वन्दन दास्यता, सख्य आत्म कहि देव॥ (विनायक)

चौ०—*सन्तचरन पंकज अति प्रेमा। मनक्रम वचन भजन दृढ़नेमा॥
†गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा। सब मोहि कहँ जानइ दृढ़सेवा॥

अर्थ—साधुओं के कमलस्वरूपी चरणों में अधिक प्रेम करै और मनसा, वाचा, कर्मणा पक्का नियम बांध भजन करै। गुरु, पिता, माता, भाई, स्वामी और देवता इन सब में मुझ ही को जान कर उन की अच्छी सेवा करै॥

चौ०—मम गुण गावत पुलक शरीरा। गदगद गिरा नयन वह नीरा॥
काम आदि मद दम्भ न जाके। तात निरंतर वश मैं ताके॥

अर्थ—मेरे गुणों को गाते हुए जिनका शरीर रोमांचित हो उठे, वाणी गदगद हो जाय और नेत्रों में से प्रेम के आंसू बहने लगें (सच्चे भक्त के यही चिन्ह हैं)। हे भाई! जिस में कामादि अभिमान और पाखंड न हों, मैं सदा उस के वश में रहता हूं॥

दो०—वचन कर्म मन मोरि गति, भजन करहिं निष्काम।
तिनके हृदय कमल महँ, करउँ सदा विश्राम॥१८॥

अर्थ—जो मनसा, वाचा, कर्मणा मेरी शरण गहते हैं और सब कामनाओं को छोड़ भजन करते हैं, मैं उन के कमलस्वरूपी हृदय में सदैव वास करता हूं॥

चौ०—भक्तियोग‡सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्ह शिर नावा॥

---

* "सन्त चरन पंकज अति प्रेमा":—
तुलसीदास जी के विचारों की गंभीरता तो देखिये कि उन्हों ने संतों के चरणों में प्रेम रखने से सतोगुणी वृत्ति का अवलम्बन सूचित किया है। मन, कर्म और वचन से मन शुद्धि सत्कर्म और वचनों की पवित्रता बताई है और दृढ़ नेम से अटल श्रद्धा दर्शाई है ये सब बातें भक्तों के लिये अवश्य ही हैं॥

† गुरु, पितु मातु आदि सब ईश्वर तुल्य पूजनीय हैं। यथा:—
त्वमेव माता च पिता त्वमेव। त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव॥
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव। त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

और भी सवैया—राम हैं मातु पिता सुत बन्धु रु राम सखा गुरु स्वामि सनेही।
राम की सौंह भरोसो है रामको राम रँग्यो रुचि राच्यो न केही।
जीवत राम मुए पुनि राम सदा रघुनाथहि की गति जेही।
सोई जियै जग में तुलसी नतु डोलत और मुए धरि देही॥

‡ "योग"—अष्टांग योग जैसे [१] यम [२] नियम [३] आसन [४] प्राणायाम [५] प्रत्याहार [६] धारणा [७] ध्यान और [८] समाधि।

‡ भक्ति योग सुनि अति सुख पावा—के आगे का क्षेपक
नाथ सुने गत मम संदेहा। भयेउ ज्ञान उपजेउ नवनेहा॥

[अर्थ]

अर्थ--लछमण जी ने रामचन्द्र जी से जब (नवधा) भक्ति आदि का वर्णन और (अष्टांग) योग सुना। तब तो वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्हों ने रामचन्द्र जी को शीस नवाया।

चौ०-इहि विधि गये कछुक दिन बीती। कहत विराग ज्ञान गुन नीती॥

अर्थ--ऊपर कहे अनुसार ज्ञान, वैराग्य और नीति की चर्चा करते हुए कुछ दिन बीत गये॥

चौ०-सूपनखा रावन की बहिनी। दुष्टहृदय दारुन जिमि अहिनी॥
पंचवटी सो गइ इकबारा। देखि विकल भइ युगुल कुमारा॥

शब्दार्थ--सूपनखा (सूप=सूपा + नखा=नखवाली)=सूपा के समान नखवाली। दारुण=कठिन, क्रूर॥

अर्थ--सूर्पनखा जो रावण की बहिन थी, सो ऐसे दुष्ट स्वभाव की थी जैसे क्रूर नागिनी हो। वह एक समय पंचवटी में जा पहुँची, वहां पर दोनों राजकुमारों को देख मोहित होगई॥

सूचना--अहिनी से तुलना अतिउत्तम है कारण जैसे नागिनि अपने बच्चों को खाकर वंश का विनाश करती है वैसे ही सूर्पनखा कुलनाशिनी हुई॥

चौ०-भ्राता पिता पुत्र उरगारी। ‡ पुरुष मनोहर निरखत नारी॥

अर्थ-[लक्ष्मणने कहा] हे स्वामी ! इन सब बातों के सुनने से मेरा सन्देह दूर हो गया और ज्ञान उत्पन्न होने के कारण आप के चरणों में विशेष प्रीति हुई॥

दो० अनुज वचन सुनि प्रभु मन भाये। हरषि राम निज हृदय लगाये॥

अर्थ—लक्ष्मण जी के वचन रामचन्द्र जी के चित्त को सुहावने लगे और उन्हों ने प्रसन्नता पूर्वक अपने भाई को हृदय से लगा लिया।

* "सूपनखा"—प्रजापति पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा की चार पत्नी थीं। इलबिला नामक ब्राह्मणी पत्नी से [जो भारद्वाज मुनि की पुत्री थी] कुबेर उत्पन्न हुए थे। निकषा से [जो सुमाली नाम राक्षस की कन्या थी] महाबली रावण और कुम्भकर्ण दो पुत्र हुए थे। मालनी राक्षसी से विभीषण और राका निश्चरी से खर और शूर्पनखा की उत्पत्ति हुई थी। शूर्पनखा बड़ी मायाविनी राक्षसी थी जो इच्छित रूप धारणकर दण्डकारण्य में स्वतंत्र विचरा करती और तपोवनवासी मुनियों को त्रास दिया करती थी। यह वनवास के समय श्री राम लक्ष्मण से छेड़ छाड़ कर अपने नाक कान कटाय राम और रावण के विरोध का मूल कारण होगई थी॥ [महाभारत]

‡ "पुरुष मनोहर निरखत नारी" तुलसीदास जी के इस यथोचित कथन को यह श्लोक भी पुष्ट करता है:—

*** होइ बिकल सक मनहिं न रोकी । जिमि रविमणिद्रवरविहिं बिलोकी ॥**

शब्दार्थ--विकल=बेचैन । रविमणि=सूर्यकान्ति मणि। द्रव=पिघले, अंगारछोड़ै॥

अर्थ--(कागभुशुण्डि जी कहते हैं) हे गरुड़! भाई के समान बराबर अवस्था वाला, पिता के समान अधिक अवस्थावाला अथवा पुत्र के समान छोटी अवस्था वाला कितनी ही उमर का पुरुष क्यों न हो, स्त्री तो उसकी सुन्दरता को देखती है। रूपवान को देखते ही स्त्री चलचित्त हो अपने मन को नहीं सम्हाल सक्ती (अर्थात् उस पर मोहित हो जाती है) जैसे सूर्यकान्ति मणि सूर्य के सामने आते ही अग्नि छोड़ने लगता है। देखिये कहाँ तो वृद्धा-शूर्पनखा और कहाँ युवा-राजकुमार, परन्तु स्त्री जाति होने के कारण सौन्दर्य पर मोहित हो गई। जैसा कहा है--

शूपनखा रावन की बहिनी, पंचवटी जब आई।
कोटि मदन मदमारक मूरति, लखि सो रही लुभाई ॥ इत्यादि

चौ०-रुचिर रूप धरि प्रभु पहँ आई। बोली वचन मधुर मुसुकाई ॥
†तुम सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँयोग विधि रचा बिचारी ॥

अर्थ--सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर वह रामचन्द्र जी के पास आई और धीरे २ मुसुकराते हुए कहने लगी--न तो तुम्हारे समान पुरुष है और न मेरे समान कोई स्त्री, तुम्हारा हमारा जोड़ा ब्रह्मा ने बड़े विचार से बनाया है॥

कन्यावरयते रूपं, माता वित्तं पिता श्रुतम्।
बान्धवाः कुलमिच्छन्ति, मिष्टान्नमितरे जनाः॥

अर्थात् यदि कन्या से कहा जाय कि तू अपने लिये वर ढूँढ़ ले तो उसकी रुचि रूपवान पुरुष पर ही होगी, माता धनवान् और पिता कीर्तिवान् जामाता ढूँढ़ेंगे, जाति के लोग कुलवान् वर खोजेंगे परन्तु दूसरे लोग तो केवल मिठाई ही पाने से सगाई उचित समझेंगे।

* होइ विकल सक मनहिं न रोकी--के पश्चात् का दो०--

दो०--अधम निशाचरि कुटिल अति, चली करन उपहास।
सुनु खगेश भावी प्रबल, भा चह निशिचर नास॥

अर्थ--वह नीच अत्यन्त कुटिल राक्षसी रामचन्द्र जी से हँसी करने को चली। [कागभुशुण्डि जी कहते हैं] हे गरुड़ सुनो! होनहार बलवान् होती है अब राक्षसों का नाश होना चाहता है॥

"भावी प्रबल" सत्य ही कहा है:--

दो०--जैसी हो भवतव्यता, तैसी उपजै बुद्धि।
होनहार हिरदे बसै, बिसर जात सब सुद्धि॥

† "तुम सम ....लोक तिहुँ माहीं"--धन्य है तुलसीदास जी को जिन्हों ने

[शूर्पनखा]

चौ०—मम अनुरूप पुरुष जग नाहीं । देखेउँ खोज लोक तिहुँ माहीं ॥
तातें अब लगि रहेउँ कुमारी । मनमाना कछु तुमहिं निहारी ॥

अर्थ—मेरे योग्य पुरुष संसारभर में नहीं है, मैं ने तीनों लोक खोज डाले । इस से अभी तक बिन-ब्याही रही, अब तुम्हें देख कुछ कुछ मन भरा है ॥

चौ०—सीतहि चितइ* कही प्रभु बाता । अहइ कुमार‡ मोर लघु भ्राता ॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी । प्रभु बिलोकि बोले मृदुबानी ॥

अर्थ—रामचन्द्र जी ने सीता जी की ओर देख यह बात कही कि मेरे छोटे भाई कुमार हैं सो तू उनके पास जा । शूर्पनखा लक्ष्मण के पास गई और उन्होंने पहिचान लिया कि यह रावण की बहिन है तौ भी वे रामचन्द्र जी की ओर देखकर मीठे बचन बोले ॥

शूर्पनखा के द्वारा भी यथार्थ शब्द कहलाये हैं । सच पूछो तो रामचन्द्र जी के समान परम पुरुष त्रैलोक्य में दूसरा नहीं है और न शूर्पनखा की नाईं नीच कुरूपा राक्षसी ! तभी तो ऐसी दुष्टा कुरूपा चलचित्ता के अनुरूप पुरुष भी जगत में दुर्लभ हुआ ॥

* "सीतहिं चितइ" सीता जी की ओर देखने के पण्डित लोग अनेक कारण बतलाते हैं । जैसे [१] रामचन्द्र जी ने यह सूचित किया कि हमारे तो स्त्री है । [२] शूर्पनखा अपनी समझ में बहुत ही सुन्दर स्त्री का रूप धारण करके आई थी परन्तु रामचन्द्र जी ने उसे अतिही तुच्छ समझ उसकी ओर देखा भी नहीं, सीता जी की ओर ही देखते रहे । [३]यह दर्शाया कि तू अपने को सुन्दरी समझती है, सीता जी के रूप से मिलान तो कर । [४] सीता जी रावण की इष्ट हैं इसलिये उनकी ओर देख रामचन्द्र जी यह जानना चाहते थे कि अब रावण से विरोध आरंभ होता है, तुम अपने भक्त का पक्ष तो न करोगी ? [५] हास्यरस की रीति पर मानो यह चिताते थे कि देखो स्त्रियों की प्रकृति ऐसी चंचल होती है । [६] यदि कुमार शब्द का अर्थ बिन ब्याहा किया जावे तो सीता जी की ओर देखने का यह कारण हो सक्ता है कि लक्ष्मण जी को ब्याहा न कह उठना ॥ इत्यादि

‡ "कुमार"—कुमार शब्द का अर्थ बिन ब्याहा करने से यह शंका होती है कि रामचन्द्र जी झूठ काहे को कहेंगे । इसका समाधान कोई २ यों करते हैं कि—रामचन्द्र जी शूर्पनखा के साथ हँसी कर रहे थे इसलिये ऐसा कह दिया, परन्तु बहुतेरे पण्डितों का यह मत है कि "कुमार" शब्द का अर्थ "राजा का पुत्र" है इसलिये इससे यह सूचित होता है कि राजा दशरथ की बहुत सी रानियाँ थीं उन्हीं के लड़के ये हैं सो ये भी कई विवाह कर सक्ते हैं; अथवा "कुमार" शब्द का अर्थ (कु = पृथ्वी + मार = कामदेव) = "पृथ्वी पर कामदेव के समान" ऐसा कहने से सूचित होता है कि यदि तू सुन्दरी है तो लक्ष्मण जी भी अति रूपवान् हैं उनसे ब्याह करले, रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण को बिन ब्याहा नहीं कहा । इसी आशय के समर्थन में ललित कवि का कथन भी है । यथा :—

[मनहर]

चौ०—सुन्दरि सुन मैं उनकर दासा । पराधीन नहिं तोर सुपासा ॥
***प्रभु समरथ कोशलपुरराजा । जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा ॥**

अर्थ—हे सुन्दरी सुन ! मैं रामचन्द्र जी का दास हूं, दूसरे के आधीन होने से तुझे सुख नहीं मिलेगा । रामचन्द्र जी अयोध्यापुरी के राजा हैं वे जो कुछ करैं उन्हें सब शोभा देता है (अर्थात् यदि वे चाहें तो तेरे साथ दूसरा विवाह करलें । अथवा जो उन्होंने तुझ को मेरे पास भेजा है सो उनकी इच्छा वे चाहें सो करैं) ॥

चौ०—*सेवक सुख चह मान भिखारी । व्यसनी धन शुभगति व्यभिचारी ॥
लोभी यश चह चारु गुमानी । नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी ॥

(मनहर)

मो को तो सबाम तू बिलोकु री चपल नैनी, वह है हमारो बन्धु पुंज छबि जापै है ।
"ललित" सलोनो शील सिंधु सुखमा सों सनो, मोहित सकल कला गहत प्रतापै है ।
गोरो गुरु गौरव गरूरबिन गुणवन्त, कोमल कुमार कोटि काम दुति दापै है ।
पेखि अरि का पै ता पै ढरै धनु चापै दखु जैसा रूप वापै तैसो आजु ना धरा पै है ॥

† गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी ।

कवित्त—चली तब धाइ लछिमन पाइ छूए जाइ बोली मुसुकाइ एक बात कहौं भावती ।
बरिबे के काज राम तुम पै पठाई हौं गजानन मनाइ आई ताते उतलावती ।
कह्यो सोई कीजो न पत्याहु जाहु बूझ लीजो रूप बस भई नाहीं तुम्हें न सतावती ।
रावन सु भाई लंक हेम की बनाई जिन बन ही में आई निधि फेरो जिन आवती ॥

× 'मृदुबानी'—इस में यह सन्देह हो सकता है कि जब लक्ष्मण जी ने जान लिया कि यह शत्रु की बहिन है तौभी नम्र वचन क्यों बोले । इसका समाधान यह है कि—लक्ष्मण जी ने पहिले रामचन्द्र जी की ओर देखा और जब उन्हें ज्ञात हुआ कि रामचन्द्र जी का चित्त हास्य रस पर है तो वे भी समयानुकूल बर्तावा करने लगे ॥

* प्रभु समरथ कोशलपुर राजा । जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा—के आगे का क्षे०

दो०—केहरि सम करिवर नहीं, लवा कि बाज समान ।
प्रभु सेवक इमि जानहू, मानहु वचन प्रमान ॥

शब्दार्थ—केहरि (शुद्ध शब्द केसरी) = गर्दन पर बाल वाला, सिंह [योगरूढ़ि संज्ञा है] । करिवर = श्रेष्ठ हाथी । लवा = चिड़िया ॥

अर्थ—सिंह के समान श्रेष्ठ हाथी भी नहीं हो सकता, क्या लवा पक्षी बाज के समान हो सकता है ? [अर्थात् नहीं हो सकता है] । इसी प्रकार सेवक भी स्वामी की बराबरी नहीं कर सकता । हमारे इस कथन को सत्य मानो ॥

* सेवक सुख चह मान भिखारी—

भिक्षुक मान चहै तो वृथा औ वृथा गति उत्तम चाहै जु कामी ।
जो यश लोभी चहै तो वृथा सुख चाहै वृथाहि कुमारग गामी ।
यों 'रसिकेस' विचारि हिये है वृथा जु पै मुक्ति चहै नर वामी ।
तो तेहि के सब काज वृथा जेहि के ढिग सेवक होय हरामी ॥

अर्थ--यदि दास होकर सुख चाहै, भिखारी होकर आदर चाहै, दुराचारी होकर धन चाहै, विषयी होकर मुक्ति चाहै, लालची जो बड़ाई चाहै और अभिमानी जो शोभा चाहै तो नहीं पा सक्ता (अर्थात् ये सब के सब मानो आकाश से दूध दुहना चाहते हैं अर्थात् अनहोनी बात करना चाहते हैं) कहीं आकाश से दूध मिल सक्ता है, वहां से तो केवल पानी ही मिलेगा। (निदर्शना अलंकार)

चौ०-पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहँ बहुरि पठाई॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृण तोरि लाज परिहरई॥

अर्थ--(लक्ष्मण के वचन सुन) शूर्पनखा रामचन्द्र जी के पास फिर लौट आई और उन्हों ने फिर लक्ष्मण जी के पास भेजी। लक्ष्मण जी कहने लगे—तेरे साथ वही विवाह करेगा जो लाज को तिनका के समान तोड़ दे (अर्थात् जो तेरे ही समान निर्लज्ज हो)

चौ०-†तब खिसियानि राम पहँ गई। रूप भयंकर प्रगटत भई॥

अर्थ--तब क्रोधित होकर रामचन्द्र जी के पास गई और डरावना रूप प्रकटकर दिखाने लगी।

चौ०-सीतहि सभय देखि रघुराई। ‡कहा अनुजसन सैन बुझाई॥

अर्थ--सीता जी को भयभीत देखकर रामचन्द्र जी ने हाथ के संकेत से लक्ष्मण जी को समझाया।

---

† तब खिसियानि राम पहँ गई—के पश्चात् का क्षे०—

चौ०—बिथुरे केश रदन बिकराला। भृकुटी कुटिल करण लगि गाला॥

अर्थ—[शूर्पनखा के भयङ्कर रूप का वर्णन यों है] बिखरे हुए बाल, बड़े बड़े दाँत, टेढ़ी भौंह कानों तक फूले हुए गाल॥

‡ कहा अनुज सन सैन बुझाई—के पश्चात् का क्षेपक—

चौ०—अनुज राम मन की गतिजानी। उठे रिसाइ सो सुनहु भवानी॥

"सैन बुझाई" इस के विषय में तुलसीदासजी ने बरवा रामायण में यों कहा है—

वेद नाम कहि अँगुरिन, खंड अकास। शूर्पनखा प्रभु पठई, लछिमन पास॥

अर्थात् चार अँगुलियों को आकाश की ओर उठा कर [अँगूठे को अँगुलियों के मध्य भाग में फिराकर] गुप्त रीति से मानो यह सूचित किया कि चार अँगुलियां चार वेद जिन्हें श्रुति कहते हैं, कानों की बोधक हुई क्योंकि श्रुति कान को भी कहते हैं और आकाश जिसके लिये दूसरा शब्द नाक है, नासिका सूचक हुआ और अँगूठा फेरने से खंड करना या काटना हुआ। सारांश यह संकेत नाक कान काटने का सूचक हुआ॥

दो०—लछिमन अतिलाघव सों, नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहँ, मनहुँ चुनौती दीन्हि॥ १६॥

शब्दार्थ—चुनौती=लड़ाई के लिये प्रचार करना। महावरे में लोग ऐसा कहते हैं "जाओ तुम्हारे बाप को चुनौती दी" (अर्थात् यदि तुम्हारा बाप चला आवे तो उस से भी लड़ने के लिये हम तैयार हैं)॥

अर्थ—लक्ष्मण जी ने बड़ी कुशलता से उस के नाक कान काट डाले, ऐसा करने से मानो उन्हों ने रावण को लड़ाई के लिये प्रचार किया॥

चौ०—नाक कान बिनु भइ बिकरारा। जनु स्रव शैल गेरु कै धारा॥
खर*दूषण†पहँ गइ बिलखाता। धिकधिक तवपौरुष बल भ्राता॥

अर्थ—नाक कान के कट जाने से वह बड़ी कुरूप दिखाई देने लगी और घावों से जो रक्त बहता था सो इस प्रकार दिखाई देता था, मानो पर्वत से गेरू की धाराएं बह निकली हों। वह खरदूषण के पास विलाप करती हुई गई और बोली हे भाई! धिक्कार है तुम्हारे बल और पराक्रम को॥

चौ०—‡तेइ पूछा सब कहेसि बुझाई। यातुधान सुनि सैन बुलाई॥

शब्दार्थ—यातुधान (यातु=जावे+धान=कहना)=जिसके विषय में कहा जाता है कि यह जावे अर्थात् राक्षस॥

अर्थ—पूछने पर शूर्पनखा ने सब हाल समझाकर कहा। यह सुन उन ने राक्षसों की सेना बुलाई।

चौ०—धाये निशिचर निकर बरूथा। जनु सपक्ष×कज्जलगिरि×यूथा॥

---

* "खर"—यह राक्षस बड़ा योद्धा रावण का सौतेला भाई था। इसी को मार कर रामचन्द्रजी खरारि कहलाये॥

† दूषण—दूषण खर राक्षस का सेनापति, था,इसके दो भाई और थे, एक का नाम बज्रवेग और दूसरे का प्रमाथि था। यह अपने चार मंत्रियों समेत पंचवटी की लड़ाई में रामचन्द्र जी के हाथ से मारा गया था॥

‡ तेइ पूछा सब कहेसि बुझाई—के पश्चात् का क्षे०
चौ०—चौदह सहस सुभट सँग लीन्हे। जिन सपनेहुँ रण पीठ न दीन्हे॥

× जनु सपक्ष (कज्जलगिरि)—
पुराणों में कथा है कि प्राचीन समय में पर्वतों के पंख होते थे, सो वे उड़कर बड़ी हानि किया करतेथे। एकबार इन्द्रने अपने बज्र से पर्वतोंके पंख काटडाले, केवल मैनाक नाम का पर्वत जो हिमांचल का पुत्र और पार्वती का भाई था, जाकर समुद्रमें छिप गया, इसहेतु उसके पंख नहीं काटे गये: गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसी काण्ड में जटायु के विषय रावण का अनुमान यों लिखा है:—"की मैनाक कि खगपति होई"

[कज्जलगिरि]

† नानावाहन नानाकारा । नानायुधधर घोर अपारा ॥

शब्दार्थ—वाहन=सवारी जैसे रथ, घोड़ा आदि । नानाकारा (नाना=अनेक + आकारा=रूप)=अनेक रूप वाले ॥

अर्थ—राक्षसों के झुंड के झुंड इस प्रकार दौड़े कि मानो पंख वाले काजल के पर्वतों के समूह उड़ आये हों । राक्षसों की भांति भांति की सवारियां और कई प्रकार के रूप थे; वे अनेक हथियार धारण किये थे और वहां बड़ा कोलाहल मच रहा था ॥

चौ०—सूपनखहि आगे करिलीनी । अशुभरूप श्रुति-नासा-हीनी ॥

अर्थ—उन्हों ने अमंगल सूचक चिन्ह वाली (अर्थात् नकटी बूची) शूर्पनखा को आगे कर लिया ॥

सूचना—राक्षसों ने तो इस विचार से शूर्पनखा को आगे कर लिया था कि वह उस स्थान को बतावे कि जहां रामचन्द्र जी थे, परन्तु कवि जी उस में से अपशकुन सूचक चिन्ह दरशाते हैं, जैसे यदि नकटा, बूचा, काना, कूबरा आदि किसी के चलते समय सन्मुख आजावे तो उसके कार्य सिद्धि में सन्देह रहता है ॥

चौ०—अशकुनअमितहोहिंभयकारी । गनहिं न मृत्युविवश सब झारी ॥
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं । देखि बिकट भट अति हरषाहीं ॥

अर्थ—मार्ग में अनेक भयानक अपशकुन होते थे परन्तु राक्षसगण मृत्यु के आधीन होने के कारण उनका विचार नहीं करते थे । वे गर्जना करते थे, उछलते थे और कभी कभी आकाश में उड़ते थे । योद्धालोग बड़ी सेना देखकर बहुत प्रसन्न होते थे ।

---

‡ कज्जलगिरि कहने का तात्पर्य यह है कि राक्षस काले भुच थे, परन्तु ऐसी तीव्र गति से चलते थे कि मानो काजल की नाईं हलके हों, और कदाचित् काजल की नाईं शीघ्र नाशवान् थे ।

† नाना वाहन नाना कारा—के पश्चात् का क्षे०—

चौ०—श्याम घटा देखत नभ केरी । तहँ वासवधनु मनहुँ उयेरी ॥

अर्थ—राक्षसों का आना उस समय ऐसा मालूम होता था कि मानो आकाश में काले बादल छागये हों और उन के अस्त्र शस्त्र [रंग विरंगे होने के कारण] ऐसे मालूम होते थे कि मानो इन्द्रधनुष ऊगा हो ॥

दो०—निज निज बल सब मिलि कहहिं, एकहिं एक सुनाइ ।
बाजन लाग जुझाऊ, हर्ष न हृदय समाइ ॥

चौ०—*कोउ कह जियत धरहु दोउभाई । धरि मारहु तिय लेहु छुड़ाई ॥

अर्थ—कोई कोई राक्षस कहते थे कि रामचन्द्र, लक्ष्मण दोनों भाइयों को जीते ही पकड़ लो, कोई कोई कहने लगे इन को पकड़ कर मार डालो और स्त्री छीन लो।

चौ०—धूरि पूरि नभमण्डल रहेऊ । राम बुलाइ अनुज सन कहेऊ ॥
लै जानकिहि जाहु गिरिकन्दर । आवा निशिचरकटक भयङ्कर ॥

अर्थ—जब ये लोग आ रहे थे, तब दूर ही से रामचन्द्र जी ने आकाश में बहुत सी धूल उड़ती हुई देख लक्ष्मण से बुलाकर कहा । सीता जी को पहाड़ की खोह में लिवा ले जाओ, क्योंकि राक्षसों की बड़ी भारी सेना आरही है ॥

चौ०—रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी । चले सहित सियशरधनुपानी ॥
देखि राम रिपुदल चलि आवा । विहँसि कठिन कोदण्ड चढ़ावा ॥

शब्दार्थ—कोदण्ड=धनुष ॥

अर्थ—और सावधान रहना ! रामचन्द्र जी के ऐसे वचन सुन लक्ष्मण जी हाथ में धनुष बाण लिये हुए सीता जी को साथ ले चले । जब रामचन्द्र जी ने देखा कि राक्षसों की सेना आ रही है तब उन्हों ने मुसुकराकर कठिन धनुष चढ़ाया ॥

छं०—कोदण्ड कठिन चढ़ाइ प्रभु शिर जटा बाँधत सोह क्यों ।
मरकत शैल पर लरत दामिनि कोटि सो युग भुजग ज्यों ॥
कटि कसिनिषङ्ग विशाल भुज गहि चाप विशिख सुधारि कै ।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराजघटा निहारि कै ॥

शब्दार्थ—मरकत=नीलमणि । दामिनि=बिजली । कोटि=करोड़ों । भुजग किंवा भुजंग (भुज=टेढ़ा+गम्=जाना)=जो लहराता चले, सर्प । कटि कसि=कमर बांध

---

* कोउ कह जियत धरहु दोउ भाई—के पश्चात् का क्षेपक—

कोउ कह सुनौ सत्य हम कहहीं । कानन फिरहिं बीर कोउ अहहीं ।

अर्थ—कोई कोई बोल उठे सुनो, हम ठीक २ कहते हैं जब ये बनमें फिरते हैं तो अवश्य कोई योद्धा हैं ॥

चौ०—एकइ कहा मष्ट है रहहू । खर के आगे अस जनि कहहू ॥
यहिविधि कहत बचन रणधीरा । आये सकल जहां रघुबीरा ॥

शब्दार्थ—मष्ट=चुप ।

अर्थ—एक बोला चुपरहो, खर के आगे ऐसा मत कहो । इस प्रकार सब राक्षसगण आपस में बात चीत करते हुए वहां आ पहुँचे, जहां पर रामचन्द्र जी थे ॥

कर । विशिख (वि=तीखी + शिखा=चोटी)=पैनी नोक वाले अर्थात् बाण । घटा=समूह ॥

अर्थ—धनुष पर रोदा चढ़ाकर रामचन्द्र जी अपनी जटा बाँधते समय इस प्रकार शोभायमान् हुए जैसे नीलमणि के पर्वत पर करोड़ों बिजलियां चमक रही हों और दो सर्प आपस में लड़ रहे हों ॥

सूचना—रामचन्द्र जी का श्यामला शिर मानो नीलमणि शैल है और उनके चमकदार बाल मानो करोड़ों बिजलियां हैं और जूड़ा बांधते समय दोनों हाथ जो आगे पीछे होते हैं सो ऐसे दिखाई देते हैं मानो दो सर्प लड़ते हों । हाथों की उपमा सर्प से इसलिये दी कि श्यामल भुजदण्ड मानो सर्पों के शरीर हुए और पंजे मानो फण हुए ॥

कमर में तरकस बाँध लिया और धनुष बाण सुधार कर हाथों में ले रामचन्द्र जी राक्षसों की सेना की ओर इस प्रकार देखने लगे जैसे सिंह हाथियों के समूह को देखता है ॥

सो०-‡आय गये बगमेल , धरहु धरहु धाये सुभट ।
यथा विलोकि अकेल , *बालरविहिं घेरत दनुज ॥ २० ॥

शब्दार्थ—बगमेल=घुड़सवार । बालरवि=सबेरे का सूरज । दनुज=राक्षस ॥

अर्थ—राक्षसों के घुड़सवार पहुँचे और कई योद्धा यह कहकर दौड़े कि पकड़ो पकड़ो; जिस प्रकार सबेरे के सूर्य को (निबल देख) राक्षसों के समूह घेर लेते हैं ॥

चौ०-प्रभु विलोकि शर सकहिं न डारी । थकित भये रजनीचर भारी ॥

अर्थ—रामरूप को देखकर राक्षसगण हथियार न चला सके, कारण वे सब के सब चकित हो गये थे ॥

चौ०-सचिव बोलि बोले खर दूषण । यह कोउ नृप बालक नरभूषण ॥

---

‡ आय गये बगमेल - के पश्चात् का क्षेपक—

चौ०-घेरि रहे निश्चर समुदाई । दण्डक खग मृग चले पराई ॥

अर्थ—जब राक्षसों के समूहों ने दण्डकारण्य को आ घेरा, तब वहां के पशु पक्षी भाग चले ।

* "बालरविहिं घेरत दनुज"— पुराणों में कथा है कि मंदेहा नाम के दस सहस्र राक्षस प्रातःकाल सूर्य को घेर लेते हैं, परन्तु थोड़े ही काल में उस के असह्य ताप को न सह कर दूर भाग जाते हैं और ऐसा भी कथन है कि प्रातःकाल संध्या वन्दन के समयजो अर्घ्य प्रदान किया जाता है, उसके प्रताप से ये राक्षस छिन्न भिन्न हो जाते हैं । इस कथा की पुष्टि में बहुधा यह देखने में आता है कि उदय के समय लाल पीले बादल सूर्य के चारों ओर दिखाई देते हैं और वे थोड़े ही काल में अदृष्टि होजाते हैं ।

चौ०—नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते ॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं अस सुन्दरताई ॥
यद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥

अर्थ—खर दूषण (ये सेनानायक) अपने मंत्रियों को बुला कर कहने लगे कि ये राजपुत्र तो कोई भद्रपुरुष से जान पड़ते हैं। हम लोगों ने; जितने नाग, राक्षस, देवता, मनुष्य और ऋषि हैं, उन में से बहुतेरों को देखा, जीता और मार भी डाला है। परन्तु हे भाइयो ! सुनो, हमने ऐसा सुन्दर स्वरूप आज तक नहीं देखा। यद्यपि हमारी बहिन इन्हों ने नकटी बूची कर डाली है तौभी इन उपमा-रहित पुरुषों को मार डालना उचित नहीं ॥

चौ०—देहु तुरत निज नारि दुराई। जीवत भवन जाहु दोउ भाई ॥

अन्वय—"दुराई निज नारि तुरत देहु और दोउ भाई जीवत भवन जाहु" ॥

अर्थ—"छिपाई हुई अपनी स्त्री को जल्दी से हमें सौंप दो और दोनों भाई सजीव अपने घर चले जाओ"

चौ०—*मोर कहा तुम ताहि सुनावहु। तासु वचन सुनि आतुर आवहु ॥

अर्थ—(ऊपर कहे हुए) मेरे वचनों को तुम उन से जाकर कहो और उन का उत्तर लेकर जल्दी आओ ॥

चौ०—†दूतन्ह कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई ॥

अर्थ—मंत्रियों ने (संदेशा) रामचन्द्र जी से जाकर कहा, सुनते ही श्रीरामचंद्र जी मुसुकराकर कहने लगे।

चौ०—हम क्षत्री मृगया बन करहीं। तुम से खल मृग खोजत फिरहीं ॥

---

* मोर कहा तुम ताहि सुनावहु—के पश्चात् का क्षेपक—

दो०—भये कालवश मूढ़ सब, जानहिं नहिं रघुवीर ।
मशक फूँक किमि मेरु उड़, सुनहु गरुड़ मतिधीर ॥

अर्थ—(कागभुशुण्डि कहते हैं) कि हे ज्ञानी गरुड़ जी सुनो ! सब मूर्ख राक्षस मृत्यु के आधीन हो रहे थे। इसहेतु उन्हों ने रामचन्द्र जी को नहीं चीन्हा। क्या भुनगे के फूँक मारने से सुमेरु पर्वत उड़ सक्ता है ? (कभी नहीं] ॥

† दूतन्ह कहा राम सन जाई—के पश्चात् का क्षेपक —

चौ०— आज भयउ बड़ भाग्य हमारा। तुम्हरे प्रभु अस कीन्ह विचारा ॥

अर्थ—जो तुम्हारे स्वामी ने ऐसा विचार किया सो आज हमारे धन्य भाग्य हैं ॥

*रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं । एक बार कालहु सन लरहीं ॥

अर्थ—सुनो हम क्षत्री हैं जो बन में शिकार खेलते हुए तुम सरीखे दुष्ट जीवधारियों की खोज में फिरा करते हैं। हम शत्रु को बलवान् जानकर भी नहीं डरते यहाँ तक कि यदि यमराज भी साम्हने आ जावे, तो एक बार उस से भी जुट जावें ॥

चौ०—यद्यपि मनुज दनुजकुल घालक। मुनिपालक खलशालक बालक॥
जो न होय बल घर फिरि जाहू। †समर विमुख मैं हतउँ न काहू॥

अर्थ—यद्यपि हम मनुष्य रूपधारी हैं (जो प्रायः राक्षसों के भक्ष्य हैं) तौ भी राक्षसों के वंशों के नाशकर्त्ता हैं; ऐसे ही यद्यपि हम बालक हैं तथापि मुनियों के पालने वाले और दुष्टों को त्रास देने वाले हैं। यदि तुम में (लड़ने की) हिम्मत न होवे तो अपने घर लौट जाओ, क्योंकि लड़ाई से भागे हुए जीवों को मैं नहीं मारता ॥

चौ०—रन चढ़ि करिय कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई॥

अन्वय—रन चढ़ि रिपु पर कृपा करिय कपट चतुराई (है पर) कदराई (है)

अर्थ—युद्ध के लिये तैयार होकर शत्रु पर दया दिखाना मानो छल से भरी हुई चतुराई है, परन्तु यह बड़ी कायरता की बात है। केशव कवि ने कहा है—छप्पय की दो पंक्तियाः—

४ धर्म सो धिक विनु दया, "दया धिक अरि कहँ आवे।
५ अरि धिक चित्त न सालई," चित धिक जहँ न उदारमति ॥

चौ०—दूतन्ह जाय तुरत सब कहेऊ। सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ॥

अर्थ—दूतों ने तुरन्त लौट कर श्रीरामचन्द्र जी के वचन कह सुनाये, सुनते ही खर और दूषण हृदय में बड़े क्रोधित हुए ॥

---

* रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं—मनुस्मृति के ७वें अध्याय में लिखा है—

श्लोक—समोत्तमाधमैराजा त्वाहूतः पालयन् प्रजाः ।
न निवर्त्तेत संग्रामात्क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥ ८७ ॥

अर्थात् प्रजापालक राजा समान बल, हीन बल और अधिक बलवाले शत्रु राजा से युद्ध के लिये आवाहन किये जाने पर 'युद्ध ही क्षत्रियों का धर्म है' ऐसा विचार करके युद्ध से कभी न हटे ॥

† समर विमुख मैं हतउँ न काहू—जैसा कि मनुस्मृति के सातवें अध्याय में लिखा है

श्लोक—नायुधव्यसन प्राप्तं नार्तं नातिपरीक्षतम् ।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ९३ ॥

अर्थात् शस्त्ररहित, पुत्रादिकों के शोक से दुखी, बहुत घायल, युद्ध से डरनेवाले और युद्ध से भागे हुए शत्रुओं को धर्मज्ञ राजा नहीं मारते ॥

छन्द—उर दहेउ कहेउ कि धरहु धावहु बिकट भट रजनीचरा ।
शर चाप तोमर शक्ति शूल कृपाण परिघ परशू धरा ॥
प्रभु कीन्ह धनु टंकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा* ।
भये बधिर ब्याकुल यातुधान न ज्ञान तेहि अवसर रहा ॥

शब्दार्थ—भयावहा (भय=डर + वहा=उपजाने वाला)=भयकारी ॥

अर्थ—क्रोधित हुए और कहने लगे कि हे धनुषवाणधारी, हे बरछी वाले, हे सांग वाले, हे शूल धारण करने वाले, हे तलवार बहादुर, हे लुहांगी बाज़ और हे फरसाधारी बड़े योद्धा राक्षसो ! दौड़ो दौड़ो पकड़ो । श्री रामचन्द्र जी ने पहिले धनुष की टंकार की (अर्थात् केवल रोदा को तान कर छोड़ दिया) तो उस से भयकारी सन्नाटेदार शब्द हुआ, जिस से राक्षसगण बेहाल हो ऐसे सन्न होगये कि उस समय कुछ सुध बुध न रही ॥

दो०—सावधान होइ धाये, जानि सबल आराति ।
लागे वर्षन राम पर, अस्त्र शस्त्र बहु भाँति ॥

अर्थ—(फिर जब राक्षसगण) चैतन्य हुए तो शत्रु को बलवान् समझ, धर दौड़े और रामचन्द्र जी पर नाना प्रकार के हथियार चलाने लगे ॥

दो०—तिन के आयुध † तिल-सरिस, करि काठे रघुवीर ।
तानि शरासन श्रवण लगि, पुनि छाँड़े निज तीर ॥२१॥

अर्थ—उन के चलाये हुए सब हथियारों को, रघुकुल में उत्पन्न वीर श्री रामचन्द्र जी ने काटकर तिल के समान कर डाला और फिर कान तक धनुष तान अपने वाण छोड़े ॥

सूचना—अधिक बल से वाण चलाने के हेतु धनुष का रोदा दहिने हाथ से कान पर्यन्त तान कर छोड़ देते हैं ॥

छंद[तोमर]—तब चले बान कराल । फुंकरत जनु बहु ब्याल ॥
कोपेउ समर श्री राम । चले विशिख निशित निकाम ॥

---

* "भयावहा"—इस के पाठान्तर "भयमहा" या "भयामहा," "अधिक हुआ" इस अर्थ के सूचक हैं ॥

† "तिल सरिस" का पाठान्तर बहुधा 'तिल सम' और कहीं २ "तृण सम" हैं

शब्दार्थ—विशिख=वाण । निशित=पैने, तीखे । निकाम=अधिक, बहुत से ॥
अर्थ—तब भयंकर वाण ऐसे चले मानो बहुत से सर्प फुसकारते जा रहे हों । श्री रामचन्द्र जी युद्ध में क्रोधित हुए, तब तो उन्हों ने बहुत से तीखे वाण छोड़े ॥

छं०—*अवलोकि खरतर तीर । मुरि चले निशिचर वीर ॥

शब्दार्थ—खरतर=अधिक पैने । मुरि चले=लौट पड़े ॥
अर्थ—राक्षसों के योद्धा अति पैने वाणों को देख लौट पड़े ।

छं०—भये क्रुद्ध तीनिउ भाइ । जो भागि रन ते जाइ ॥
†तेहि बधव हम निज पानि । फिरे मरन मन महँ ठानि ॥

अर्थ—तीनों भाई क्रोधित हो कहने लगे कि जो कोई संग्राम छोड़ कर भागेगा उसे हम अपने हाथों से मार डालेंगे, तब तो वे हाथ में जी लेकर लौट पड़े ।

छं०—आयुध अनेक प्रकार । सन्मुख ते करहिं प्रहार ॥
रिपु परम कोपे जानि । प्रभु धनुष शर संधानि ॥

अर्थ—वे राक्षस साम्हने होकर नाना भांति के हथियारों को चलाने लगे । शत्रुओं को बहुत ही क्रोधित समझ कर श्री रामचन्द्र जी ने धनुष में वाण लगाये ॥

---

* अवलोकि खरतर तीर—के पश्चात् का क्षेपक—

इक एक को न सँभार । कर तात मात पुकार ॥

अर्थ—कोई किसी को सहारा नहीं देता था और बप्पा रे, मैया री, ऐसी चिल्लाहट मच रही थी ॥

"तात मात" का पाठान्तर कहीं २ तात भ्रात है" ॥

छन्द—कोउ कहै खर का कीन्ह । जो युद्ध इन सन लीन्ह ॥
ये वाण अतिहि कराल । ग्रसै आइ मानहुँ काल ॥

अर्थ—कोई कोई यों कहते थे कि खर ने यह क्या किया, जो इन से लड़ाई ली, ये वाण बड़े भयङ्कर हैं जो यम के समान आकर पड़ते हैं ॥

† तेहि बधव हम निज पानि—के पश्चात् का क्षेपक

दो०—उमा एक निज प्रभुहि वश, पुनि इन के बड़ भाग ।
तरन चहहिं प्रभु शर लगे, बिना योग जप याग ॥

अर्थ—(महादेव जी कहते हैं) हे पार्वती ! एक तो अपने सेनापति के दवारे के कारण और दूसरे अपने ही भाग्योदय से, बिना योग भजन अथवा यज्ञ के श्री रामचन्द्र जी के वाणों के लगने से ही ये राक्षस मुक्त होना चाहते हैं ॥

छं०—छाँड़े विपुल नाराच। लगे कटन विकट पिशाच।
उर शीश भुज कर चर्न। जहँ तहँ लगे महि पर्न।

सूचना—छन्द के निमित्त चरण और परन को चर्न और पर्न लिखना ही पड़ा (देखो पुरानी)॥

अर्थ—और बहुत से बाण छोड़े तब क्रूर राक्षस कटने लगे और उनके धड़ मुण्ड, हाथ, पांव इधर उधर भूमि पर (कट कट कर) गिरने लगे॥

छं०—चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान॥
भट कटत तनु शतखंड। पुनि उठत करि पाखंड॥

शब्दार्थ—कुधर (कु = पृथ्वी + धर = धारण करने वाला) = भूधर, पर्वत॥

अर्थ—बाणों के लगने से चिल्ला चिल्ला उठते थे और राक्षसों के धड़ पर्वतों की नाईं भूमि पर गिरते थे। योद्धाओं के शरीर सौ सौ टुकड़े होकर गिरते थे, तौ भी वे माया करके फिर उठ दौड़ते थे॥

सूचना—सौ सौ टुकड़े किये जाने पर भी ये राक्षस जो फिर उठ बैठते थे उसका कारण यह है कि किसी समय इन्हों ने शिव जी से यह वरदान पा लिया था कि हम किसी के मारे न मरें; परन्तु इन चौदह सहस्र की मृत्यु एक दूसरे के ही हाथ थी। इसीहेतु से रामचन्द्र जी ने अन्त में ऐसा उपाय रचा था कि राक्षस एक दूसरे को रामरूप देख कट मरे॥

छं०—*नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड॥

---

* नभ उड़त बहु भुज मुंड— (वीर छन्द आल्हा रामायण से)

सुनिके बातैं खरवा जरिगा, नैना रक्त वर्ण ह्वै जाँय।
कोउ कोउ फरसा लियो हाथ मा, कोउ कोउ मुगदर लियो उठाय॥
शक्ति शूल परिघे कै लै के, कोइ कोइ खैंचि लई तलवार।
कोई कोई गदा लिये हाथन मा, कोइ कोइ मुंगरा लियो सँभार॥
झुके निशाचर सब रघुवर पै, रन मा कठिन करैं सब मार।
खटखट खटखट त्यागा बाजै, बोलै चपक चपक तरवार॥
नाग यक्ष गंधर्व देवता, मन मा बहुत लगे घबरान।
व्याकुल देख्यो जब देवन कै, छाँड़े राम सनासन बान॥
कहुं रुंड कहुँ मुंड परे हैं. धनुहा बान रहे भुइँ जाय।
कहुं ढाल तरवार कहुं है, कहुँ कहुँ ध्वजा परी भरराय॥
कहुं भुज दंड परे बीरन के, मानो सुण्डन केर कतार।
कटे भुसुण्डा रे हाथिन कै, हौदा परे रसातल जाय॥
मुण्डन कैयां मुंड चौरा भे, औ रुण्डन कर लगे पहार।
झरना झरन लगे अंगन से, नदिया बहै रक्त कै धार॥ (दारुन)

अर्थ—आकाश में बहुत सी भुजाएँ और शिर (बाण वेधित) उड़ते दिखाई देते थे और पृथ्वी पर कहीं कहीं बिना शिर के धड़ दौड़ते थे ॥

सूचना—स्मरण रहे कि रणभूमि में कभी कभी जब कोई बड़ा योद्धा शत्रु के मारने में दत्तचित्त हो जाता है और उस समय यदि उस का शिर शत्रुद्वारा कट-जाय तो वह युद्ध के आवेश में बिना ही शिर के कुछ देर तक मार करता चला जाता है। जब उस का बहुत सा रुधिर गिर जाता है तब वह अशक्त हो गिर पड़ता है इसे "रुंड उठान" या "कबंध धावन" कहते हैं। जैसा कि रघुवंश में लिखा है- "नृत्यत्कबंधं समरे ददर्श" अर्थात् बिना शिर के धड़ को संग्राम में दौड़ते देखा ॥

खग कंक काग शृगाल। कटकटहिं* कठिन कराल ॥

अर्थ—चील, कौए आदि पक्षी और लड़ैये मांस खाते समय अधिक कट=कटाते थे ॥

छं०—कटकटहिं जम्बुक भूत प्रेत पिशाच खप्पर साँचहीं†।
बेताल‡बीर कपाल ताल बजाय योगिनि नाचहीं ।
रघुवीर बान प्रचण्ड खण्डहिं भटन्ह के उर भुज सिरा ।
जहँतहँ परहिं उठि लरहिं धरुधरु करहिं × भयकारिणि गिरा ॥

दारुन युद्ध भयो दोनों मा, समर भयंकर परै दिखाय ।
गिरे धड़ाधड़ रे धरनी मा, घायल परे परे डिढ़ियांय ॥

* कठिन कराल:—

चित्र विचित्र भई है धरनी, रंग अनेकन लगे दिखान ।
समरभूमि मरघट सी ह्वै गइ, औ पुनि गिद्ध लगे मड़रान ॥
काँव काँव कर कौआ दौड़े, औ पुनि बोलन लगे सियार ।
खप्पर साँचन लगी योगिनी, नाचन लगे भूत बैतार ॥
समर सेज सोये सब निशिचर, नहिं काहूकर लगै ठिकान ।
मारे बानन के रघुबर के, सब यमपुर कहँ कीन्ह पयान ॥
बजी दुंदुभी आसमान मा, फूलन के झर दयो लगाय ।
मुनिवर विचरैंगे दंडक मा, रघुवर सुयश रहै जग छाय ॥

† "साँचहीं" के स्थान में कहीं "साज हीं" लिखा है, जिस का अर्थ तो एक ही सा है परन्तु तुकान्त उत्तम नहीं है ॥

‡ "बेताल" वीर कपाल "ताल" बजाय—इस पद्य खंड में "विरोधाभास" अलंकार है अर्थात् ऐसा भासित होता है कि जो बेताल है अर्थात् ताल न जानने वाला है सो ताल कैसे बजावे, यह विरोध है अर्थान्तर से इस का परिहार होता है ॥

× "भयकारिणि गिरा" का पाठान्तर कहीं कहीं "गिरा भयंकरा" भी है परन्तु इसमें भी तुकान्त उत्तम नहीं है

शब्दार्थ—भूत=देवयोनि विशेष, जो शिव जी के गणों में से हैं और बालकों को पीड़ा पहुंचाने वाले हैं, ये "बालग्रह" आदि के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रेत=(प्र=दूर+इत=गया)=संसार से दूर गया अर्थात् मरा, मरने के पश्चात् जीव का सूक्ष्म शरीर प्रेतयोनि को पाकर, यदि अन्त्य संस्कार विहीन हुआ तो उसी योनि में रहकर यमराज की प्रजा में समझा जाता है, इसी से यमराज को प्रेताधिप कहते हैं। पिशाच (पिशित=मांस+आचम्=खाना)=मांसभक्षक; ये भी देव-योनियों में से उपद्रवी जीव हैं। अमरकोश में कहा है:—

"पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः"

खप्पर=खोपरी, योगिनियों अथवा अघोरियों का पात्र विशेष, घड़े के नीचे का भाग। साँचहीं (सं=अच्छे प्रकार+चि=इकट्ठा करना)=इकट्ठे करते हैं, तैयार रखते हैं। बेताल=मुर्दा जो भूत के घुसने से जीता सा जान पड़े (बेताल पच्चीसी में बेताल के बोल प्रसिद्ध हैं)। वीरकपाल=योद्धाओं की खोपड़ियां। ताल=भँजीरा, झाँझ, खँजरी, संगीत में नियमित अवकाश सूचक हस्तादि ताड़न। योगिनि=दुर्गा की सहचरीं जिन की संख्या ६४ है। यथाः—शक्ति, भीमा, चामुण्डा, भद्रकाली आदि। भयकारिणि=डरावनी, डर उपजाने वाली॥

अर्थ—स्यार तो कटकटाते हैं और प्रेत पिशाच आदि (रक्त भरने को) खप्पर लिये हैं और बेतालगण योद्धाओं की खोपड़ियां ताल से बजाकर योगिनियों को नचाते हैं। श्री रामचन्द्र जी के अमोघ बाण योद्धाओं के धड़, बाहु और शिरों को काट काट कर गिरा रहे हैं। राक्षस गण जहाँ तहाँ गिरते हैं और फिर उठ उठ कर लड़ते हैं और डरावने शब्द करते हैं॥

छं०—अंत्रावली गहि उड़हिं गीध पिशाच कर गहि धावहीं।
संग्राम पुरबासी मनहुँ बहु बाल गुड़ि उड़ावहीं॥
मारे पछारे उर विदारे विपुल भट कहरत * परे॥
अवलोकि निज दल विकल भट † त्रिशिरादि खरदूषण फिरे॥

शब्दार्थ—अंत्रावली=आँतें। कहरत=कराहते हुए॥

अर्थ—गीध आँतों को लेकर उड़ते और मड़राते हैं, पिशाच उन्हीं आँतों को हाथ में पकड़कर दौड़ते फिरते हैं, सो ऐसा जान पड़ता है कि मानो संग्राम-नगर के रहने वाले बहुत से लड़के पतंगें उड़ा रहे हों॥ (उत्प्रेक्षा अलंकार)

---

* "कहरत" का पाठान्तर कहीं "घूर्मित" कहीं "घूर्णित" है और इन दोनों का अर्थ "चक्कर खाते हुए" या "तड़फते हुए" है॥

† त्रिशिरा (त्रि=तीन+शिरा=शिरवाला)=तीन शिरवाला, यथार्थ में लम्बे शिर वाला इस नाम के दो राक्षस थे, एक तो रावण का सौतेला भाई जिस का वर्णन

सूचना—यहाँ पर पंख फैलाकर मड़राते हुए गीध पतंगों के तुल्य हैं और उन के मुँह व पाँव से लटकती हुई राक्षसों की अँतड़ियाँ डोर के सदृश हैं और पिशाचों के हाथ मानो बालकों के कर हैं।

वाणों के मारे कई योद्धा पछाड़ खाकर गिरे, अनेकों की छाती फट गई और बहुतेरे पड़े पड़े कराह रहे थे। खर दूषण त्रिशिरादिक योद्धा अपनी सेना के वीरों को इस प्रकार व्याकुल देख (रामचन्द्र जी से) लड़ने को स्वतः बढ़े॥

छं०–शर शक्ति तोमर परशु शूल कृपाण एकहि बारहीं।
करि कोप श्री रघुवीर पर अगणित निशाचर डारहीं॥
प्रभु निमिष महँ रिपु शर निवारि प्रचारि डारे सायका।
दश दश बिशिख उर माँझ मारे सकल निशिचर नायका*॥

अर्थ—बहुत से राक्षस क्रोध करके श्री रामचन्द्र जी पर तीर, सांग, बर्छी, फरसा, त्रिशूल और तलवार एकदम से चलाने लगे। रामचन्द्र जी ने पल भर में शत्रुओं के हथियार काट डाले और फिर ललकार कर अपने वाण इस प्रकार से छोड़े कि प्रत्येक सेनापति के हृदय में दश दश वाण लगे॥

छं०–महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस निशिचर एक श्री रघुकुलमनी॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‌यो।
देखहिं परस्पर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मर्‌यो॥

अर्थ—योद्धा पृथ्वी पर गिरते हैं फिर उठकर जुट जाते हैं परन्तु मरते नहीं और अनेक प्रकार की माया करते हैं। देवगण इस विचार से डरते हैं कि राक्षस तो चौदह हज़ार परन्तु श्री रामचन्द्र जी अकेले ही हैं। माया के पति (श्री रामचन्द्र जी ने देवताओं और मुनियों को भयभीत जान ऐसी अद्भुत माया फैलाई कि राक्षसों के सम्पूर्ण योद्धा एक-दूसरे को रामरूप देख आपस में कट मरे (अर्थात् प्रत्येक राक्षस अपने समीप के राक्षस को रामरूप समझ काट डालता था, निदान ऐसा होते होते अन्तिम दो राक्षस भी एक दूसरे को रामरूप समझ घायल कर मर मिटे)॥

इस काण्ड में है और दूसरा रावण का बेटा, जो बड़ा पराक्रमी था और उस का पराक्रम लंका युद्ध के समय वाल्मीकीय रामायण में वर्णन किया गया है।

* रामचन्द्र जी ने जो अपने वाणों से खर दूषण त्रिशिरा आदि को घायल किया था उस का मनोरम वर्णन मनोरमा छन्द में केशवदास कवि यों करते हैं :—

वृष के खर पूषण ज्यों खर दूषण। तब दूरि किये रवि के कुलभूषण॥
गद शत्रु त्रिदोष ज्यों दूर करै वर। त्रिशिरा शिर त्यों रघुनन्दन के शर॥

दो०—राम राम *कहि तनु तजहिं, पावहिं पद निर्वान।
करि उपाय रिपु मारेउ, छण महँ कृपानिधान॥

अर्थ—(एक दूसरे को राम समझ और 'यह राम' 'यह राम' ऐसा चिल्ला चिल्ला कर जो मारते मरते हैं सो) 'राम, राम' कहकर शरीर छोड़ने के कारण मुक्ति को प्राप्त होते हैं; इस प्रकार दयासागर श्री रामचन्द्र जी ने उपाय करके पल भर में शत्रुओं का संहार कर डाला॥

सूचना—'राम, राम' कहकर और उन्हीं में मानो चित्त लगाकर जो राक्षस प्राण त्याग करते थे, वे रामरूप ही में समा जाते थे अर्थात् इन सबों को "सारूप्य मुक्ति" मिलती थी। जैसा कहा है—"अन्ते या मतिः सा गतिः" अर्थात् मरते समय जिस पदार्थ में मन लगता है वही रूप बहुधा प्राणी को मरने के पश्चात् प्राप्त होता है॥

दो०—हरषित बरषहिं सुमन सुर, बाजहिं गगन निशान।
अस्तुति करि करि सब चले, †शोभित विविध विमान॥२२॥

अर्थ—देवता प्रसन्न हो फूल बरसाने लगे और आकाश में जय के नगाड़े बजने लगे। सब देव श्री रामचन्द्र जी की प्रशंसा करते और नाना प्रकार के बिमानों में शोभा देते हुए अपने अपने स्थान को सिधारे॥

---

* राम राम कहि तनु तजहिं—

राम नाम कह कर मरने वाले जो मुक्ति पाते हैं उसका प्रमाण तुलसी जी ने इसी कांड में यों लिखा है—

जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुक्त होइ श्रुति गावा॥

† "शोभित विविध विमान"— (कृपाण छन्द)

राम एकलो दिखान, यातुधान हरषान, बहु छांड़े लागेबान, झरि बूंदनप्रमान।
सूलसैलन घमंक, असि बिज्जुल चमंक, तेगतोमरतमंक, घन घोर घमसान॥
कहुँ परशु प्रचार, कहुँ परिघ प्रहार, बांकबिछुआकीधार, मुगदर को लड़ान।
राम क्रुद्ध ह्वै महान, मान तिनकासमान, अस्त्र काटे इकबान, निजधनुसनधान॥
पुनिरामअसुरारी, अस माया बिसतारी, रामरूपसबझारी, देखैंदानवमहान॥
इन्हें बिसरो अपान, मारेरामरामजान, रामकहितजैंप्रान, पावैंपदनिरबान॥
चढ़ेविविधविमान, निशिचरन की हान, लखिदेवहरषान, लागेफूलबरषान।
हनहनके निशान, धनधन्य भगवान, जस रहेगो जहान, करैं रामगुन गान॥

चौ०—जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के *भय बीते।
तब लछिमन सीतहि लै आये। प्रभुपद परत हरषि उर लाये॥

अर्थ—पंचवटी की लड़ाई में श्री रामचन्द्र जी ने जब अपने शत्रु (राक्षसों) को परास्त किया तब देवता, मनुष्य और मुनिगणों के संकट दूर हुए। इतने में लक्ष्मण जी (गिरिकन्दरा से) सीता जी को ले आये और ज्यों हीं उन्हों ने प्रभु के चरणों को सीस नवाया त्यों ही श्री रामचन्द्र जी ने प्रसन्नता पूर्वक उन्हें अपने हृदय से लगा लिया॥

चौ०—सीता चितव श्याम मृदु गाता। ‡परम प्रेम लोचन न अघाता॥
पंचवटी बसि श्री रघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक॥

अर्थ—सीता जी सांवरे कोमल अंग को देख प्रेम में ऐसी मग्न हो गईं कि उन के नेत्र रामचन्द्र जी की छवि से नहीं अघाते थे। पंचवटी में रहते हुए श्री रामचन्द्र जी (इसी प्रकार) देवताओं और मुनियों को सुख देने वाली अनेक लीलाएँ करते थे॥

चौ०—धुआँ देखि खर दूषण केरा। सूपनखा तब रावन प्रेरा॥
बोली वचन क्रोध करि भारी। देश कोश की सुरत बिसारी॥
करसि पान सोवसि दिन राती। सुधि न तोहि शिर पर आराती॥

अर्थ—शूर्पनखा ने (ऊपर कहे अनुसार) खर दूषण आदि का नाश देख (लंका में जा) रावण को उकसाया। वह बड़े क्रोध से कहने लगी—(तुम ने लंका के बाहर) अपने राज्य और धन माल की सुध बिसरा दी है। तुम मदिरा पीकर दिन रात पड़े रहते हो और इस बात का कुछ भी विचार नहीं करते कि सिर पर शत्रु आ गया है॥

चौ०—राजनीति बिन धन बिन धर्मा। हरिहि समर्पे बिन सतकर्मा॥
विद्या बिन विवेक उपजाये। श्रम फल पढ़े किये अरु पाये॥

---

* "भय" का पाठान्तर "दुख" है परन्तु "भय" शब्द ठीक जँचता है, कारण, रावण के रहते सुर, नर, मुनि के दुःख कैसे दूर समझे जावें? इसके सिवाय तुलसीदास जी ने लिखा भी है कि:—

सुर "डरत" चौदह सहस निशिचर..............

सुर मुनि "सभय" प्रभु देखि मायानाथ..............

‡ कहा है किसी कवि ने—

बरवा छन्द—मोहन को मुख सोहन जोहन जोग।
रूप असन अँखियन को भसमक रोग॥

अन्वय—नीति बिन राज "किये" (श्रम फल है) बिन धर्मा धन "पाये" (श्रम फल है) हरिहि समर्पे बिन सतकर्मा "किये" (श्रम फल है) बिन विवेक उपजाये विद्या "पढ़े" श्रम फल है ॥

अर्थ—बिना न्याय के राज्य चलाना व्यर्थ है (अर्थात् राज्य पाने और चलाने में जो परिश्रम पड़ता है सोई फल मानो हाथ लगता है दूसरा और कोई फल नहीं मिलता) इसी प्रकार बिना धर्म किये हुए धन के उपार्जन करने का श्रम ही तो पड़ता है लाभ कुछ भी नहीं, परमेश्वर को अर्पण किये बिना, सत्कर्म और बिना यथार्थ ज्ञान के विद्या भी निष्फल है ॥

सारांश—राज्य, नीति सहित, धन, धर्म संयुक्त, उत्तम कर्म कृष्णहेतु और विद्या सद् असद् विवेक सहित ही उत्तम गिनी जाती है, अन्यथा नहीं ॥

चौ०—संग ते यती कुमंत्र ते राजा। मान ते ज्ञान पान ते लाजा ॥
प्रीति प्रणय बिन मद ते गुनी। नासहिं बेग नीति अस सुनी ॥

अर्थ—स्त्री आदि की संगति से सन्यासी सत्यानासी हो जाता है, बुरे मंत्री से राजा का. अभिमान से ज्ञान का और मदिरा आदि पीने से लाज का नाश होता है। बिना नम्रता के प्रेम और घमंड से गुणवान्, थोड़े ही काल में नष्ट हो जाते हैं. ऐसा नीतिशास्त्र में लिखा है ॥

सो०—*रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिय न छोट करि।
अस कहि बिविध बिलाप, करि लागी रोदन करन ॥

अर्थ—बैरी, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्प इन्हें छोटा करके न गिनना चाहिये; ऐसा कहकर और कई प्रकार से विलाप करके शूर्पनखा रोने लगी ॥

दो०—सभा माँझ परि ब्याकुल, बहु प्रकार कह रोइ।
तोर जियत दशकंधर, मोरि कि अस गति होइ ॥ २१ ॥

अर्थ—शूर्पनखा सभा के बीच व्याकुल होकर गिर पड़ी और रो रो कर कई प्रकार से कहने लगी—हे दशग्रीव ! तुम्हारे जीते जी क्या हमारी ऐसी दुर्दशा हो ?

---

* जात मात्रं न यः "शत्रुं" "व्याधिञ्च" प्रशमन्नयेत्।
अति पुष्टांग युक्तोऽपि स पश्चात्तेन हन्यते ॥

अर्थात् जो अपने शत्रु और रोग को उत्पन्न होते ही नष्ट नहीं कर डालता वह कितना ही दृढ़ क्यों न हो पीछे, उसी से मारा जाता है —

और भी—दो०—"अरि" छोटो गनिये नहीं, जातें होत बिगार।
तृण समूह को छिनक में, जारत तनक "अँगार" ॥
रारि रोग रिपु अग्नि ऋण, नृपति तपोधन ब्याल।
इन कहँ गनिय न छोट करि, सजग रहिय सब काल ॥

चौ०-सुनत सभासद उठ अकुलाई । समुझाई गहि बाँह उठाई ॥
कह लंकेश कहसि कि न बाता । केहि तव नासा कान निपाता ॥

अर्थ—रावण की सभा वाले यह सुन घबरा उठे और उन्हों ने उसे समझाया फिर हाथ पकड़ के बैठा दिया । तब लंकापति रावण बोल उठा कि कहती क्यों नहीं ! किस ने तेरे नाक कान काटे हैं ॥

चौ०-अवधनृपति दशरथ के जाये । पुरुषसिंह बन खेलन आये ॥
समुझिपरी मोहि उनकी करनी । रहित निशाचर करिहहिं धरनी ॥

अर्थ—(शूर्पनखा बोली) अयोध्याधीश दशरथ के पुत्र जो पुरुषों में सिंह के समान पराक्रमी हैं, वे वन में शिकार खेलने आये हैं । मुझे उनकी करतूति से ऐसा जान पड़ता है कि वे अवश्य ही पृथ्वी को राक्षसहीन करेंगे ॥

चौ०-जिन कर भुजबल पाय दशानन । अभयभये मुनि विचरत कानन ॥
देखत बालक काल समाना । परम धीर धन्वी गुण नाना ॥

अर्थ—हे रावण ! जिन के भरोसे मुनिगण निडर हो वन में फिर रहे हैं । वे देखने में तो छोटे हैं परन्तु पराक्रम में काल की नाईं हैं । वे बड़े धीरजवान हैं और धनुषविद्या के अनेक गुणों से परिपूर्ण हैं ॥

सूचना—"धन्वी गुण नाना" का अर्थ कोई कोई "धनुष विद्या में निपुण और अनेक प्रकार के गुणों सहित" करते हैं ॥

चौ०-अतुलित बल प्रताप दोउ भ्राता । खल बध रत सुर मुनि सुखदाता ॥
शोभाधाम राम अस नामा । तिनके संग नारि इक श्यामा* ॥

अर्थ—वे दोनों भाई बड़े बलवान और प्रतापी हैं, जो दुष्टों के नाश करने में तत्पर हैं और देवताओं व मुनियों को सुख देने वाले हैं । (उन में से एक) जो बड़े सुन्दर हैं उनका नाम राम है जिन के संग एक परम सुन्दर स्त्री है ॥

---

* श्यामा = सोलह वर्ष की सर्वाङ्ग सुन्दरी । इस को परिभाषा यों है :—

शीते सुखोष्ण सर्वाङ्गी, ग्रीष्मे या सुख शीतला ।
तप्त कांचन वर्णाभा, सा स्त्री श्यामेति कथ्यते ॥

अर्थात् जिस स्त्री के संपूर्ण अंग शीतकाल में उष्णता सहित सुखदाई हों तथा ग्रीष्म ऋतु में वे ही अंग सुख शीतलता देनेवाले हों और जिस के शरीर की आभा तप्त स्वर्ण सदृश हो, ऐसी स्त्री को श्यामा कहते हैं । "श्यामा" के पाठान्तर "ललामा" का अर्थ सुन्दरी है ॥

इस के पश्चात् का क्षेपक — (सो०)

चौ०—*रूप राशि विधि नारि सँवारी। रति शतकोटि तासु बलिहारी॥

अर्थ—ब्रह्मा ने वह स्त्री सर्वांग सुन्दरी बनाई है कि सौ करोड़ रति (कामदेव की स्त्री) भी उस की निछावर हैं (अर्थात् सीता का सौंदर्य करोड़ों रति के सौंदर्य से कहीं बढ़कर है)॥

दूसरा अर्थ—वह ऐसी रूपवती है कि ब्रह्मा की बनाई हुई अगणित रति के समान सुन्दरीं भी उस के साम्हने लज्जित होती हैं।

चौ०—तासु अनुज काटी श्रुति नासा। सुन तव भगिनी कर परिहासा॥

क्षे०— सो०-अति सुकुमारि पियारि, पटतर योग न आहि कोउ।
मैं मन दीख विचारि, जहँ रह तेहि सम आन नहिं॥

अर्थ—वह स्त्री बड़ी कोमलाँगी और मोहिनी है, उसकी समता करने के योग्य और दूसरी नहीं है; मैं ने भलीभांति सोच लिया है कि जहां वह रहेगी उसके समान दूसरी स्त्री नहीं है॥

अजहुँ जाइ देखब तुम जब हीं। होइहै विकल तासु वश तब हीं॥

अर्थ—अब भी जब तुम जाकर उसे देखोगे तब ही बेचैन हो उसके वश में हो जाओगे॥

* रूप राशि विधि नारि सँवारी। के पश्चात् का क्षे०
चौ० जीवन मुक्त लोक वश ताके। दशमुख सुन सुन्दरि अस जाके॥

अर्थ—हे दशानन! सुनो, जिसके स्वाधीन ऐसी सुन्दर स्त्री हो, वह शरीर रहते ही मुक्त समझा जाता है और सब लोग उसके वश में होजाते हैं; (यह भाव मानो रावण की समझ के अनुसार है, जिसने यह जाना कि यदि वह सुन्दरी मेरे पास आजायगी तो मैं जीवनमुक्त और लोकों का प्रभु हो जाऊंगा)॥

दूसरा अर्थ- हे दशवदन! सुनो, जो जीते जी मुक्त के तुल्य है और जिसके आधीन सब लोक हैं उसी को ऐसी सुन्दर स्त्री होगी; (यह अर्थ राम जी के पक्ष में रह कर यह सूचित करता है कि परमात्मा के समीप इस प्रकार सुन्दर प्रकृति रहती है)।

* "रूपराशि का" का वर्णन—

मय की सुता को है ये मोहनी हू मोहै ऐसी, आजलौं सुनी न सो तो नैनन निहारिये।
रूप दुति दामिनिसी नाहीं काम कामिनिसी, एक लोम ऊपर पुलोमजा विचारिये॥
भाग पर कमला सुहाग पर विमला हू, वाणी पर वाणी "केशोदास" सुखकारिये।
सात लोक सात द्वीप सात हू रसातलन, तियन के गीता सब सीता पर वारिये॥१
आनँद को कंद मिथिलेशजा को मुख चन्द, लीलाही सों रावरे के मानस को चोरे है।
दूजो वैसो रचिवे को चाहत विरंच अजौं, शशि को बनावै नेक मन को न मोरे है॥
फेरत है सान आसमान पै चढ़ाय फेरि, पानिप बढ़ाइबे को वारिध में बोरे है।
जानकी के आनन समान न बिलोकै विधि, टूक टूक टौरै फेरि टूक टूक जोरे है॥२

अर्थ—उन के भाई ने मेरे नाक कान काटे हैं, कारण, जब उन ने सुना कि मैं तुम्हारी बहिन हूं तब उन्हों ने ऐसा हँसी की। दूसरा अर्थ—उन के भाई ने मेरे नाक कान काटे हैं, तुम अपनी बहिन की यह दुर्दशा सुनो॥

चौ०—खर दूषण सुन लाग गुहारा। क्षण महँ सकल कटक उन मारा॥

अर्थ—खर दूषण मेरी पुकार सुन वहां गये, तब उन्हों ने उन्हें सेना सहित पल भर में मार डाला॥

चौ०—†खर दूषण त्रिशिरा कर घाता। सुन दशशीश जरा सब गाता॥

अर्थ—खर दूषण त्रिशिरा का बध सुन रावण का सब शरीर (क्रोध से) संतप्त हो गया।

दो०—सूपनखहि समुझाय करि, बल बोलसि बहु भाँति।
भवन गयउ अति सोचवश, *नींद परी नहिं राति॥२४॥

अर्थ—उस ने सूपनखा का समाधान किया और कई प्रकार से अपने बल की बड़ाई की। फिर अपने महलों में जा लेटा, परन्तु चिन्ता के मारे उसे रात भर नींद नहीं आई॥

चौ०—सुर नर नाग असुर जग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं॥
खर दूषण मो सम बलवंता। तिनहिं को मारे बिन भगवंता॥

अर्थ—(बिस्तर पर पड़े पड़े सोचने लगा) संसार में देवता, मनुष्य, राक्षस और नाग में से ऐसा कौन है जो मेरा सेवक नहीं है (अर्थात् प्रायः सब ही मेरे आधीन हैं)। खर दूषण तो मेरे ही समान बलवान् थे, उन्हें भगवान् सिवाय कौन मार सक्ता?

---

† खरदूषण त्रिशिरा कर घाता—के पश्चात् का क्षे०—
बिना चूक अस दशा हमारी। अपराधी किमि बचहिं सुरारी॥
अर्थ—बिना अपराध के तो हमारा यह हाल हुआ तो फिर अपराधी देवबैरी कैसे बचेंगे।

भयो शोचवश नहिं विश्रामा। बीतहिं पल मानहुँ शत यामा॥
अर्थ—वह ऐसी चिन्ता में डूब गया कि उसे चैन न थी, उसको एक एक पल सौ पहर के समान जान पड़ता था॥

* नींद परी नहिं राति—जैसा कि कहा है—
दो०—बातिल बिरही अतिश्रणी, बैर खटकै जाहि।
आंखि न लागै तारि की, कहैं 'अकब्बर' साहि॥

चौ०—सुररंजन भंजन महिभारा । जो जगदीश लीन्ह अवतारा ॥
तौ मैं जाइ बैर हठि करऊँ । प्रभुशर प्रान तजे भव तरऊँ ॥

अर्थ—देवताओं को सुख देने वाले और पृथ्वी का भार उतारने वाले परमेश्वर ने यदि अवतार लिया है तौ मैं अवश्य उन से बैर करूंगा और परमेश्वर के बाण से प्राण त्याग संसार-सागर से पार होऊंगा ॥

चौ०—होइहि भजन न तामस देहा । मन क्रम वचन मंत्र दृढ़ एहा ॥
जो नररूप भूपसुत कोऊ । हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ॥

अर्थ—इस राक्षसी देह से भक्ति तो बनती ही नहीं; इसहेतु मनसा, वाचा, कर्मणा, यह पक्का विचार ठान लिया है । यदि मनुष्यरूपी अर्थात् किसी राजा के पुत्र होंगे, तो दोनों को लड़ाई में जीत स्त्री हरण कर लाऊंगा ॥

चौ०—*चला अकेल यान चढ़ि तहँवा । बस मारीच*सिंधु तट जहँवा ॥

अर्थ—वह अकेला रथ पर बैठ, चला चला वहां जा पहुँचा, जहां समुद्र के किनारे मारीच राक्षस रहता था ॥

---

* चला अकेल यान चढ़ि तहँवा—के पश्चात् का क्षेपक

रथ अनूप जोरे खर चारी । बेगवंत इमि जिमि उरगारी ॥

अर्थ—उस का रथ उपमा रहित था और उस में ऐसे शीघ्रगामी चार खच्चर जुते थे । जो गरुड़ के समान तेजी से चलते थे ॥

छं०—उरगारि सम अति बेग बर्णत जाइ नहिं उपमा कही ।
शिर छत्र शोभित श्याम घन जनु चमर श्वेत बिराजही ॥
इहि भाँति लाँघत सरित शैल अनेक बापी सोहहीं ।
बन बाग उपवन बाटिका शुचि नगर मुनि मन मोहहीं ॥

अर्थ—(खच्चरों की) तीव्र गति गरुड़ के समान वर्णन की गई है कि जिस की उपमा नहीं कही जाती है, सिर पर काला छत्र, बादलों के समान शोभायमान था और सफेद चँवर भी दुर रहा था । इस प्रकार से बहुत सी सुहावनी नदियां, पहाड़, बावली, बन, बाग, उपवन, बगिया, सुन्दर नगर आदि, जो मुनियों के मन मोहने वाले थे, पार करता हुआ चला ॥

* "मारीच" सुन्द और ताड़का इस राक्षस दम्पति से मारीच और सुबाहु दो पुत्र हुए । इन का निवासस्थान विश्वामित्र जी की यज्ञशाला के समीप अयोध्या और

चौ०—इहां राम जस युक्ति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई॥

मिथिला के बीच मलद और करुषक प्रान्तों में था। कहते हैं कि मारीच में दश सहस्र हाथियों का बल था। यह सुमाली नाम राक्षस के चार मंत्रियों में से एक था। यह अपनी माता ताड़का और छोटे भाई सुबाहु के साथ विश्वामित्र जी के यज्ञ में विघ्न किया करता था। यज्ञ रक्षा के हेतु लाये हुए श्री रामचन्द्र जी के वाण से सुबाहु तो तत्काल मरा, परन्तु उसी वाणपिच्छ की फटकार से मारीच उड़कर चार सौ कोस की दूरी पर समुद्र के किनारे जा गिरा और तब ही से वह रावण का आश्रित होकर रहा। इस के कपट मृग बनने की कथा इसी काण्ड में है॥

नीचे के क्षेपक को ९१ पृष्ठ की टिप्पणी के छन्द के पश्चात् लगातार पढ़ना चाहिये॥

दो०—बहु तड़ाग शुचि विहँग मृग, बोलत विविध प्रकार।
इहि विधि आयो सिन्धु तट, शत योजन विस्तार॥

अर्थ—इस रीति से बहुत से सुन्दर तालाब जिन के किनारे पशु पक्षी नाना प्रकार की बोलियां बोल रहे थे, लाँघता हुआ रावण समुद्र के किनारे चार सौ कोस के अन्तर पर जा पहुँचा॥

सुन्दर जीव विविध विधि जाती। करहिं कुलाहल दिन अरु राती॥
कूदहिं ते गर्जहिं घन नाईं। महाबली बल बरनि न जाईं॥

अर्थ—नाना जाति के जीव जन्तु रात-दिन शब्द किया करते थे, वे उछलते फांदते और बादल के समान गरजते थे, और ऐसे बलवान् थे कि जिस का वर्णन नहीं हो सकता॥

कनक बालु सुन्दर सुखदाई। बैठहिं सकल जंतु तहँ जाई॥
तेहि पर दिव्यलता द्रुम लागे। जेहि देखत मुनि मन अनुरागे॥

अर्थ—सुनहरी रेता सुन्दर सुहावनी थी, तिस पर सब जीव जन्तु जाकर बैठते थे। उस के ऊपर सुन्दर बेलि वृक्ष लगे थे जिन को देखकर मुनियों के मन मोह जाते थे॥

गुहा विविध विधि रहहिं बनाई। वर्णत शारद मति सकुचाई॥
चाहिय जहाँ ऋषिन कर वासा। तहाँ निशाचर करहिं निवासा॥

अर्थ—वहां नाना प्रकार की गुफाएं बनी थीं, जिन का वर्णन करने में सरस्वती जी को भी संकोच होता था। जिन स्थानों पर मुनियों का रहना उचित था वहां राक्षस बसते थे॥

दृश मुख देखि सकल सकुचाने। जे जड़ जीव सजीव पराने॥

अर्थ—रावण को देख करके जितने वृक्षादि जड़ जीवधारी थे वे सकुच गये और जो चैतन्य थे, सो भागे॥

अर्थ—हे पार्वती ! पंचवटी में रामचन्द्र जी ने जो उपाय रचा सो सुहावनी कथा सुनो ॥

दो०—लछिमन गये बनहिं जब, लेन मूल-फल-कंद ।
जनकसुता सन बोले, बिहँसि कृपासुखवृंद ॥ २५ ॥

अर्थ—जब लक्ष्मण वन में कंद, मूल, फल लेने गये। तब दयासागर सुखसिंधु श्री रामचन्द्र सीता जी से हँस कर कहने लगे ॥

चौ०—सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करव ललित नर लीला ॥
तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा ॥

अर्थ—हे प्यारी ! सुनो, तुम तो शीलवती और पातिव्रत्य धर्म पालने वाली हो, मेरी इच्छा कुछ मनोहर मनुष्य लीला करने की है। (इसहेतु) तुम अग्नि में समा जाओ जब तक मैं राक्षसों का नाश करे डालता हूं ॥

चौ०—जबहिं राम अस कहेउ बखानी। प्रभुपद धरि हिय अनल समानी ॥
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ शील स्वरूप विनीता ॥

अर्थ—जब श्री रामचन्द्र जी ऊपर कहे हुए वचन बोले तब तो सीता जी अपने स्वामी के चरणों को हृदय में धारण कर अग्नि में पैठ गईं। सीता जी ने अपने ही अनुरूप शीलवती नम्र स्वभाव वाली परछाईं छोड़ दी ॥

चौ०—लछिमन*हू यह मर्म न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना ॥
दशमुख गयउ जहाँ मारीचा। नाय माथ स्वारथरत नीचा ॥

अर्थ—जो कुछ रहस्य रामचन्द्र जी ने रचा, उस का भेद लक्ष्मण जी को भी नहीं मालूम पड़ा। रावण मारीच के पास पहुँचा और उस नीच ने निज कार्य साधने के हेतु मारीच को प्रणाम किया ॥

---

* शंका—यह है कि जब लक्ष्मण को सीता जी के अग्नि में निवास करने का हाल विदित नहीं हुआ तो तुलसीदास जी को कैसे हुआ ? उस का समाधान एक तो यह है कि रामावतार के चरित्र त्रेतायुग में हुए थे और सब हाल प्रकट हो जाने के पश्चात् कलियुग में गोसाईं जी ने ये चरित्र लिखे हैं। दूसरा यह कि कवियों पर परमेश्वर की कृपा ही रहती है इस कारण उन्हें गुप्त और प्रकट कई चरित्रों का ज्ञान हो जाता है जैसे कहा है (रामायण में)—

जा पर कृपा करैं जन जानी। कवि उर अजिर नचावहिं बानी ॥

चौ०—नमनि*नीच की अति दुखदाई। जिमि अंकुश धनु उरग बिलाई॥
भयदायक खल की प्रिय बानी। जिमि अकाल†के कुसुम भवानी॥

अर्थ—नीच यदि नम्र होकर चले तो उस से दुःख अथवा अनर्थ की संभावना रहती है जैसे अंकुश, धनुष, सर्प और बिल्ली; (अर्थात् नव कर चलना भले मनुष्यों का स्वभाव है यदि दुष्ट नवैं तो समझना चाहिये कि इन से अवश्य अधिक हानि पहुंचेगी)। हे पार्वती ! दुष्ट के मीठे वचन भी भयकारी होते हैं जैसे कुसमय के फूल (कुछ भविष्य अनर्थसूचक होते हैं)॥

दो०—करि पूजा मारीच तब, सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन व्यग्र अति, इकसर आयहु तात॥ २६॥

शब्दार्थ—इकसर (एकसर, यकसर, अकसर)=अकेले॥ व्यग्र=व्याकुल

अर्थ—मारीच ने रावण का यथोचित सत्कार कर, आदरपूर्वक विनती की कि हे महाराज ! आप क्यों अकेले आये और किस कारण से आप बहुत व्याकुल हैं,

चौ०—दशमुख सकल कथा तेहि आगे। कही सहित अभिमान अभागे॥
होहु कपट मृग तुम छलकारी। जेहि विधि हरिआनौं नृपनारी॥

अर्थ—अभागे रावण ने बड़े घमण्ड से (सूर्पनखा, खर दूषणादि की) सब कथा मारीच से कह सुनाई। (और कहा) तुम छलिया माया के हरिण बन जाओ; इस उपाय से मैं राजा (रामचन्द्र) की स्त्री को हर लाऊँ॥

---

* जैसा कहा है—"नमन्ति फलिनो वृक्षाः नमन्ति च सुहृज्जनाः।
शुष्क काष्ठश्च मूर्खाश्च न नमन्ति कदाचन"॥

अर्थात्—फलदार वृक्ष झुक जाते हैं और इसी प्रकार सज्जन भी, परन्तु सूखे वृक्ष और मूर्ख कभी नहीं झुकते हैं (यदि झुकैं तो दुखदाई होते हैं)॥

† "अकाल के कुसुम" का पाठान्तर कहीं कहीं जो "अकाश के कुसुम" दिया हुआ है उस का अर्थ पण्डित लोग; कभी तो "आकाश से टूटते हुए तारे" कभी "पुच्छल तारे" और कहीं कहीं "राहु केतु" ऐसा करते हैं; परन्तु अकाश के कुसुम (संस्कृत में "खपुष्प") का उपयोग तो बहुधा असंभवित बात के दर्शाने में किया जाता है न कि कभी कभी होने वाली बातों के बताने में। संसारमें जो प्रसिद्ध चार असम्भवित बातें हैं वे ये हैं:—

मृगतृष्णांभसि स्नातः, शशशृङ्ग धनुर्धरः।
एष वन्ध्या सुतो याति, खपुष्प कृत शेखरः॥

अर्थात् मृगतृष्णा के जल से स्नान किये हुए, खरहा के सींगों का धनुष धारण किये, बांझ का पूत माथे पर आकाश के पुष्प धारण किये जाता है॥ सारांश—ये सब बातें असम्भव हैं न तो मृगतृष्णा में पानी, न खरहा के सींग, न बांझ के पुत्र और न आकाश के कुसुम होते हैं॥

चौ०—तेहि पुनि कहा सुनहु दशशीशा । *ते नर रूप चराचर ईशा ॥
तासों तात बैर नहिं कीजे । मारे मरिय जिआये जीजे ॥

अर्थ—तब मारीच ने कहा हे दशमाथ ! सुनो, वे मनुष्यरूप धारण किये हुए चलायमान और स्थिर जीवों के स्वामी हैं । हे प्रभो ! उन से वैर करना उचित नहीं, कारण उन्हीं के मारने से प्राणी मरते हैं और उन्हीं के आधार से जीते हैं ॥

चौ०—मुनि मख राखन गयेउ कुमारा । बिन फर शर रघुपति मोहिमारा ॥
शत योजन आयउँ क्षणमाहीं । तिन सन बैर किये भल नाहीं ॥

अर्थ—जब ये रघुवंशी राजकुमार विश्वामित्र मुनिके यज्ञ की रक्षा करने के हेतु गये थे, तब उन्होंने बिना गांसी के बाण से मुझे मारा था । उस की फटकार से मैं यहां ८०० मील के अन्तर पर पलमात्र में आ गिरा था । इस कारण उनसे बैर करना ठीक नहीं ॥

चौ०—भइ मति कीट भृङ्ग की नाईं । जहँ तहँ मैं देखौं दोउ भाई ॥
जो नर तात तदपि अति शूरा । तिनहिं विरोध न आइहि पूरा ॥

अर्थ—(उस समय से) मेरी दशा ऐसी हो रही है जैसे भौंरे की पकड़ से छूट कर भागे हुए कीड़े की होती है (अर्थात् उसे प्रत्येक स्थान में भौंरा ही भौंरा दिखाई पड़ता है) इसी प्रकार जहां देखूं तहां राम लक्ष्मण दोनों भाई मुझे दिखाई देते हैं । हे स्वामी ! यदि उन्हें मनुष्य मान लें तौ भी वे बड़े बलवान् हैं उन से बैर करने में पूरा न पड़ेगा ॥

दो०—जेहि ताड़का† सुबाहु हति, खण्डेउ हरकोदण्ड ।

---

* जैसा कहा— यतो भूतानि जायन्ते, ये न जीवन्ति सर्वथा ।
यस्मिंश्च विलयं यांति, नमस्तस्मै परात्मने ॥

अर्थात् जिस से सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिस के कारण सब प्रकार से जीते हैं और (मरने पर) जिस में लीन हो जाते हैं ऐसे परमात्मा को मेरा प्रणाम है ॥

† "ताड़का सुबाहु"—ताड़का सुकेतु नाम यक्ष की कन्या थी । इस का विवाह जम्भ नाम राक्षस के पुत्र सुन्द से हुआ था । इस सम्बन्ध से मारीच और सुबाहु दो पुत्र हुए थे । अगस्ति ऋषि ने किसी अपराध के कारण सुन्द को भस्म कर डाला था, इसहेतु ताड़का ने अपने निवासस्थान को जन शून्य कर निज पुत्रों के साथ विश्वामित्र जी के यज्ञ में बाधा डालना आरम्भ किया था । परन्तु ये ऋषि जब अयोध्या से राम लक्ष्मण को अपने यज्ञ रक्षार्थ मार्ग में संग लिये आते थे तो ज्योंहीं ताड़का उन की ओर झपटी त्योंहीं ऋषि जी के कहने से श्री रामचन्द्र जी ने एकही बाण से उस का प्राण हरण किया । फिर यज्ञ के समय उपद्रव करते हुए सुबाहु को भी मार डाला (मारीच की कथा पृष्ठ ८२ में देखो)॥

***खर दूषण त्रिशिरा† बधेउ, मनुज कि अस बलबण्ड ॥ २७ ॥**

अर्थ—जिन्हों ने ताड़का सुबाहु का बध किया और (सीता स्वयम्बर के समय) महादेव के धनुष को तोड़ डाला और खर दूषण त्रिशिरा को भी मार डाला, ऐसे बलवान् क्या मनुष्य हो सक्ते हैं ?

चौ०—जाहु भवन कुल कुशल विचारी । सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी ॥

अर्थ—अपने वंश का यदि हित चाहते हो तो घर लौट जाओ; (मारीच के) ऐसे वचन सुन रावण क्रोधित हुआ और बहुत सी गालियां देने लगा ॥

चौ०—गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा । कहु जग मोहिसमान को योधा ॥
तब मारीच हृदय अनुमाना । नवहिं विरोधे नहिं कल्याना ॥

अर्थ—रे मूर्ख ! तू मुझे गुरु की नाईं सिखापन देता है, कह तो संसार में मेरे समान कौन बलवान् है ? तब तो मारीच ने विचार किया कि (नीचे लिखे हुए) नौ प्राणियों से बैर करने में भलाई नहीं होती ॥

चौ०—शस्त्री मर्मी प्रभु शठ धनी । वैद्य वन्दि कवि मानस गुनी ॥

---

* "खर"—देखो पृष्ठ ६३ ।

† "त्रिशिरा" दूषण नाम राक्षस के चार मंत्रियों में से एक था । सूचना—खर दूषण त्रिशिरा का घनिष्ट सम्बन्ध जान कदाचित् तुलसीदास जी ने इन को भाई २ कहा है ॥

२७ वें दोहे के बाद का क्षेपक—

रा अस नाम सुनत दशकंधर । रहत प्राण नहिं मम उर अन्तर ॥

अर्थ—हे दशशीश ! राम नाम का केवल रा अक्षर सुनते ही मेरे हृदय में प्राण नहीं रहते (अर्थात् पूरे "राम" नाम की तो कहै कौन , कोई भी शब्द जिस का आरम्भ रकार से होता है, यदि सुन लेता हूं तो मुझे प्राणान्त कष्ट होता है ॥

वाल्मीकीय रामायण में भी लिखा है कि—

श्लोक—रामेव सततं विभावये भीत भीत इव भोग राशितः ।
राज रत्न रमणी रथादिकं श्रोत्रयोर्यदि गतं भयं भवेत् ॥

भावार्थ, दोहा—राजा रथ रमणी रतन, जहँ जहँ परत रकार ।
सुनत होत व्याकुल हृदय, राम रूप उर धार ॥

चौ०—उभय भाँति देखा निज मरना । तब ताकेसि रघुनायक सरना* ॥

अर्थ—(वे नौ ये हैं) (१) हथियारबंध (२) भेदी (३) मालिक (४) मूर्ख (५) धनवान् (६) वैद्य (७) बन्दीगण या भाट (८) कविता बनाने वाले और (९) गुणी मनुष्य ॥

सूचना—रावण हथियारबंध, भेदी, मालिक, मूर्ख, धनवान, कवि और उपायी भी था ॥

दोनों प्रकार से अपनी मृत्यु समझी, तब श्री रामचन्द्र जी के शरण में जाना निश्चित किया ॥

चौ०—उतर देत मोहि बधब अभागे । कस न मरौं रघुपतिशर† लागे ॥
अस जिय जानि दशानन संगा । ‡चला रामपद प्रेम अभंगा ॥

* "तब ताकेसि रघुनायक सरना"—मारीच विचारने लगाः—

दो०—वहां गये गत प्राण पुनि, इहां रहैं गत प्रान ।
मन भावै सो करहुँ अब उभय भांति तन हान ॥

ग़ज़ल—शरण रघुनाथ के आऊं, इसी में अब भलाई है ।
वगर्ना इस के पंजे से, बहुत मुशकिल रिहाई है ॥१॥
व रोज़े जंग देखा खुद, है मैं ने चश्म अपने से ।
मरे जो राम के शर से, उन्हों ने मुक्ति पाई है ॥२॥
हज़ारों वर्ष तप करते हैं, फिर दरशन नहीं पाते ।
सो हम ने आज घर बैठे ही, अपने निधि वो पाई है ॥३॥
मरूं गर हाथ से उनके, तो सीधा जाउँ सुरपुर को ।
श्री रघुवीर के चरणों पै, अब गरदन झुकाई है ॥४॥ (राम य० द० नाटक)

† "रघुपति शर लागे"—रामादपि च मर्तव्यं, मर्तव्यं रावणादपि ।
उभयोर्यदि मर्तव्यं, वरं रामो न रावणः ॥

अर्थात् जब राम के हाथ से मरना है, या रावण के हाथ से मरना है, जो दोनों के द्वारा मरना ही है, तो राम के द्वारा उत्तम है, रावण के द्वारा नहीं ॥

‡ "चला रामपद प्रेम अभंगा"—देखो खेतराम जी कृत पदप्रेम पर पद—

देखिहौं राम चरन सुखदाई ।
अरुण नवल पाथोज सरिस जेहिं उपमा कहि न सिराई ॥१॥
नखन ज्योति रविकिरण प्रकाशक जड़ता तिमिर नसाई ।
अंकुश कुलिस ध्वजा चिन्हित पद कामादिक न सताई ॥२॥
जे पद परस लही मुनितिय गति पाप पुञ्ज अधिकाई ।
जिन पद प्रगट भई सुरसरिता जग पावन श्रुति गाई ॥३॥
जे अज शेष शंभु शुक नारद करत मनन मन लाई ।
जे पद किय दंडक बन पावन निरखि मुनिन्ह गति पाई ॥४॥
मरण मोर ध्रुव ओर दुहूं यदि तो इहि मति मन भाई ।
ते पद "खेतराम" निशि दिन भज भवसागर तरैं जाई ॥५॥

चौ०–मन अति हर्ष जनाव न तेही। आजु देखिहौं परम सनेही ॥

अर्थ– (और सोचा) कि यदि मैं कुछ इस से कहता हूं तो यह अभागी मुझे मार डालेगा. फिर रामचन्द्र जी के बाण से क्यों न मरूं ! ऐसा हृदय में सोच कर रावण के साथ चल खड़ा हुआ, परन्तु उसकी अटल प्रीति श्री रामचन्द्र जी के चरणों में थी। मन में यह बड़ा आनन्द था कि मैं आज परमात्मा के दर्शन करूंगा, परन्तु यह भाव उस ने रावण को नहीं जानने दिया ॥

छं०–निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं ॥
निर्वाण-दायक क्रोध जाकर भक्ति अवशहि वश करी।
निज पाणि शर सन्धानि सो मोहि बधहिं सुखसागर हरी ॥

अर्थ—अपने परम प्यारे परमात्मा के दर्शनों से नेत्रों को सफल कर सुख पाऊँगा और फिर सीता और लक्ष्मण सहित दयासागर (रामचन्द्र जी) के चरणों में चित्त लगाऊंगा। जिन का क्रोध ही मुक्त देने वाला है और भक्ति से तो वे अवश होने पर भी वश में हो जाते हैं ऐसे आनन्दकन्द श्री रामचन्द्र जी अपने कर से शर सन्धान मेरे प्राण हरण करेंगे ॥

दो०–मम पाछे धर धावत, धरे शरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहिं विलोकिहौं, धन्य न मो सम आन ॥ २८ ॥

अर्थ—मैं अपने पीछे, धनुष बाण लिये दौड़ते हुए श्री रामचन्द्र जी को लौट लौट कर देखूंगा; मेरे समान दूसरा भाग्यवान नहीं है ॥

चौ०–तेहि बन निकट दशानन गयऊ। तब मारीच कपट मृग भयऊ ॥

अर्थ—उसी पंचवटी के पास रावण जा पहुंचा और तुरन्त ही मारीच माया मृग बन गया ॥

चौ०–अति विचित्र कछु बरनि न जाई। कनकदेह मणि रचित *बनाई ॥
सीता परमरुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेखा ॥

---

२८ वें दोहे के पश्चात् का क्षेपक-

सीता लखन सहित रघुराई। जेहि वन बसहिं मुनिन्ह सुखदाई ॥

अर्थ—जिस बन में मुनियों के सुख देने वाले श्री रामचन्द्र जी सीता और लक्ष्मण समेत रहते थे।

* नील मणि नैन औ प्रवाल के विशाल शृंग, जटित अनेक रत्न कंचन को अंग है।
दशन सुहीरन के रजत मई हैं खुर, "रसिक बिहारी" रूप सुभग सुढंग है।
ताहि अवलोकत ही सीय रघुनन्दन को, हेरे हुलसाय छाई अमित उमंग है।
धाओ वेगि लाओ खाल आओ इत बाओ श्याम, देखो याहि देखो कैसो रुचिर कुरंग है ॥

अर्थ--(मारीच ने) अपनी मायामृगरूपी देह सुनहरी रत्न-जटित बहुत ही चित्र विचित्र बनाई थी जिस का वर्णन नहीं किया जा सक्ता। सीता जी ने उस अधिक सुहावने मृग को देखा, जिस का प्रत्येक अङ्ग मन मोहनेवाला था।

चौ०-सुनहु देव रघुबीर कृपाला। इहि मृग कर अति सुन्दर छाला॥
*सत्यसंध प्रभु बध कर एही। आनहु चर्म कहति बैदेही॥

अर्थ--विदेहनन्दनी कहने लगीं, हे रघुश्रेष्ठ, दयालु पतिदेव! इस मृग का अतिउत्तम चर्म है। हे सत्यप्रतिज्ञ! इसे मार कर इस की मृगछाला लाइये॥

चौ०-तब रघुपति जाना सब कारन। उठे हरषि सुरकाज सँवारन॥
मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर शर साँधा॥

अर्थ--तब रामचंद्र जी सब छल समझ गये और वे प्रसन्नतापूर्वक देवताओं का कार्य सिद्ध करने के हेतु उठ खड़े हुए। उन्हों ने हरिण को देख अपनी कमर कसी और हाथ में उत्तम धनुष बाण धारण किया॥

चौ०-प्रभु लछिमनहिं कहा समुझाई। फिरत बिपिन निशिचर बहु भाई॥
*सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥

अर्थ--रामचंद्र जी ने लक्ष्मण से समझाकर कहा, "हे भाई! बन में बहुत से

---

*सत्यसंध (सत्य=सचाई+संधा=मेल, श्रद्धा)=सत्य में श्रद्धा है जिनकी, सत्य श्रद्धावान किंवा सत्यप्रतिज्ञ॥

"सत्यसंध" के पाठान्तर "सत्यसिन्धु" से आशय तो उचित होजाता है परन्तु उपर्युक्त शब्द "सत्यसंध" ही जँचता है कारण, यह शब्द "रामचन्द्र" "भरत" और "जन्मेजय" इन तीन व्यक्तियों के लिये विशेष कर कहने का प्रमाण मिलता है॥

* सीता केरि करेहु रखवारी। के बाद का दो०—

दो०—अस कहि चलेउ तहाँ प्रभु, जहां कपट मृग नीच।
देव हरष बिस्मय बिवश, चातक बर्षा बीच॥

अर्थ—ऐसा कह रामचन्द्र जी वहाँ गये जहाँ वह पापी छलिया मृग था; देवता यह देख कुछ तो प्रसन्न हुए और कुछ आश्चर्य में पड़े, जैसे पपीहा वर्षा में होता है॥

देवताओं का हर्ष मनाना कदाचित् इस अभिप्राय से है कि पंचवटी में प्रभु के समीप रावण उपस्थित हो गया सो शीघ्र ही मारा जायगा और बिस्मय का यह हेतु समझ पड़ता है कि रामचन्द्र जी कपट-मृग के पीछे दौड़े जारहे हैं उसका भेद क्या है यह न समझ कर विचार में पड़े कि किस उपाय से रावण मारा जावेगा और कब; जैसे पपीहा बादलों को देख प्रसन्न होता है कि इनके पानी से मेरी प्यास बुझेगी परन्तु उसे इस बात का सन्देह रहता है कि ये ही स्वाँति के बादल हैं या नहीं, जिनसे मेरी प्यास बुझती है॥

राक्षस फिरते हैं । तुम सीता को रखाये रहियो, अपनी बुद्धि और विवेक से बल करने का समय असमय देख" (शत्रु से लड़ना अथवा तरह दे देना) ॥

चौ०-प्रभुहिं विलोकि चला मृग भाजी। *धाये राम शरासन साजी ॥
†निगम नेति शिव ध्यान न पावा । मायामृग पाछे सो धावा ॥

---

* शंका—मृग को देख रामचन्द्र जी धनुष बाण धारण कर उसके पीछे कुछ काल पर्यंत दौड़े दौड़े फिरते रहे, क्या उसे एकदम मार नहीं सके थे अथवा यह न जान सके थे कि यह मायामृग है ? इस राम रहस्य का समाधान वाल्मीकीय रामायण के भाषान्तर "रामरत्नाकर" की नीचे लिखी हुई सङ्कलित कविता से भलीभाँति हो जाता है:—

चौ०—जनक-सुता रघुनाथ पियारी । देखो मृगमाया तनु धारी
विस्मय पाय मोद उर धारत । ऊँचे स्वर निज पतहि पुकारत
दो०—अहो नाथ मनहरन यह, हरिन जाय धर लेहु ।
निज आश्रम बिच राखिहौं, क्रीड़ा हित सुख देहु ॥

चौ०—रूप अनूप पाय प्रिय बोलत । मो मन हरत विपिन बिच डोलत ॥
जो यह आप जियत धर लेवैं । तो मुहि परम नैन सुख देवैं ॥
जब बनवास बीत पुर जैबी । तब सब कहँ यह कुरंग दिखैबी ॥
भरतादिक अरु सास हमारी । निरखि होहिंगी प्रमुदित भारी ॥
दो०—जो न मिले जीवत यही, तो या की मृदु चर्म ।
लै आवहु आसन लिये, हम तुम बैठें पर्म ॥

चौ०—सुनहु लषन सिय अधिक लुभानी ॥ल्यावहु तुरत कहत यह बानी ॥
मैं पुनि अधिक रूप यह देखो । मृग न होइ यह निश्चय लेखो ॥
तुम जो कही कि मृग नहिं होई । है मृग रूप निशाचर कोई ॥
तदपि यहै हम बांधि हैं ताता । है यह मुनि भूपति कर घाता ॥
बहुतक मुनि बहुतक नर भूपा । इहि खल बधे किये मृगरूपा ॥
कै तो हम कुरंग धर ल्यावें । अथवा शायक मार गिरावें ॥

† "निगम नेति शिव ध्यान न पावा" ।
बृहदारण्यक उपनिषत् के षष्ठाध्याय पंचम ब्राह्मण में लिखा है कि:—
'येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात् स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हिं गृह्यते'
इत्यादि-अर्थ-याज्ञवल्क्य जी मैत्रेयी से कहते हैं-जिस (आत्मा) से यह सब जाना जाता है उसको किसके द्वारा जाने; वह यही आत्मा है जिस के विषय में 'नेति नेति' इतना ही कह सके है । वह अज्ञेय है, उसका किसी भी इन्द्रिय से ग्रहण नहीं होता ॥
और भी—

शेष महेश गणेश दिनेश सुरेशहु जाहि निरन्तर गावैं ।
नारद औ शुक व्यास रटैं "रसखान" तऊ पुनि पार न पावैं ।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछैत अभेद सु वेद बतावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं ॥

अर्थ—रामचन्द्र जी को देखते ही वह कपटमृग भाग चला और वे धनुष चढ़ा कर (उस के पीछे) दौड़े। (जिस परमात्मा के विषय) वेद कहते हैं "न इति" अर्थात् इन का अन्त नहीं है और जो महादेव जी के ध्यान में भी नहीं आते, सो कपटमृग के पीछे दौड़े जा रहे हैं॥

चौ०—कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटै कबहुँ छिपाई॥
प्रगटत दुरत करत छल भूरी। इहि विधि प्रभुहिं गयउ लै दूरी॥

अर्थ—(वह मृग) कभी तो समीप आ जाता था और कभी दूर भाग जाता था, कभी छिप जाता था और कभी फिर दिखाई देने लगता था। इस प्रकार छिपते, प्रकट होते और अनेक भांति के छल करते हुए वह रामचन्द्र जी को दूर लिवा ले गया॥

चौ०—तब तकि राम कठिन शर मारा। धरनि परेउ करि घोर चिकारा॥
लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछे सुमरेसि मन महँ रामा॥

अर्थ—तब रामचन्द्र जी ने तक कर अमोघ बाण मारा, जिस के लगने से मारीच उच्चस्वर से चिल्लाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस ने ऊँचे स्वर से पहिले "हा लक्ष्मण"! ऐसा कहा और पीछे से मन में राम, राम कहा॥

चौ०—प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमरेसि राम समेत सनेहा॥
अन्तरप्रेम तासु पहिचाना। मुनि-दुर्लभ गति दीन्ह सुजाना॥

अर्थ—मरते समय मारीच ने अपना राक्षस रूप दिखाया, परन्तु उस ने प्रेम सहित राम का स्मरण किया। उस का सच्चा स्नेह समझ, सुजान रामचन्द्र जी ने उसे वह मुक्ति दी, जो मुनियों को मिलना कठिन है॥

दोहा—विपुल सुमन सुर बरषहिं, गावहिं प्रभुगुनगाथ।
निजपद दीन्हेउ असुर कहँ, दीनबन्धु रघुनाथ॥ २६॥

अर्थ—देवताओं ने बहुत से फूल बरसाये और वे श्री रामचन्द्र जी के गुणानुवाद गाने लगे कि हे रघुवीर! दीनों पर दया करने वाले आप ने ऐसे राक्षस को भी वैकुण्ठधाम दिया॥

चौ०—खल बधि तुरत फिरे रघुवीरा। सोह चाप कर कटि तूनीरा॥
आरतगिरा सुनी जब सीता। कहेउ लषन सन परम सभीता॥

अर्थ—रामचन्द्र जी उस दुष्ट को मार कर जल्दी से लौटे, (उस समय) उन के हाथ में धनुष और कमर में तरकस शोभा दे रहे थे। जिस समय सीता जी ने "हा लक्ष्मण" ऐसा दुःख भरा शब्द सुना, तब तो वे अति भयभीत हो लक्ष्मण से बोलीं॥

चौ०—जाहु बेगि संकट तव भ्राता । लछिमन बिहँसि कहा सुन माता ॥
*भृकुटिबिलास सृष्टिलय होई । सपनेहु संकट परै कि सोई ॥

अर्थ—जल्दी तो जाओ, तुम्हारे भाई पर भीर पड़ी है ! लक्ष्मण हँस कर कहने लगे हे माता ! सुनो तो सही, जिन के थोड़े ही भौंह चढ़ाने से संसार मिट जाता है क्या उन को स्वप्न में भी दुःख हो सकता है ?

चौ०—मर्म ‡ बचन जब सीता बोली । हरि प्रेरित लछिमन मति डोली ॥

---

* भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई के पश्चात् का क्षेपक—

सौंपिगये मोहि रघुपति थाती । जो तजि जाऊँ तोष नहिं छाती ॥
यह जिय जानि सुनहु मम माता । पूछत कहब कवन मैं बाता ॥

अर्थ—रामचन्द्र जी मेरे स्वाधीन धरोहर रूप (तुम को) रख गये हैं जो मैं तुम्हें छोड़ कर जाता हूँ तो हृदय में संतोष नहीं होगा । हे माता ! ऐसा मन में विचार, सुनो, यदि रामचन्द्र जी (मुझ से तुम्हें अकेली छोड़ने का कारण) पूछेंगे तो मैं क्या उत्तर दूंगा ?

" सौंपि गये मोहि रघुपति थाती " —ललित कवि की पद लालित्यता देखिये ॥

सौंपि गये यह थाति हमैं प्रभु बैन न मैं हिय ते बिसरैहौं ।
कैसे तुम्हैं तजि जाऊँ फिरैं बन राकस पुन्ज डरौं अति भैहौं ॥
रैहौं इहां "ललितै" हित कै हरितीर गये हिय मैं सकुचैहौं ।
कैहौं कहा पुछिहैं जब नाथ मैं छाँड़ि अकेली तुम्हैं नहिं जैहौं ॥

‡ मर्म वचन जब सीता बोली । के पश्चात् का क्षेपक—

चहुँ दिशि रेखा खीचि अहीशा । बार बार नायउ पद शीशा ॥

अर्थ—(इसहेतु कुटी के) चारों ओर उन ने नागरेखा खींच दी और बारम्बार उन के चरणों की वन्दना की ॥

" मर्म वचन " के विषय में अनेक मत हैं उन में से कई तो ऐसे हैं जो साधारण लौकिक स्त्रियों की बुद्धि योग्य हैं और इस की पुष्टि के हेतु पण्डित कभी कभी यह कह बैठते हैं कि यथार्थ सीता जी तो अग्नि में प्रवेश कर गई थीं और अयोग्य कटु वचन कदाचित् छायासीताद्वारा अनुचित नहीं हैं । नीचे लिखे हुए कुछ कटु वचन " राम रत्नाकर रामायण " से उद्धृत हैं —

राते नयन कही कटुबानी । अरे कुलाधम लछिमन मानी ॥
राम दुःख तो कहँ अति प्यारो । तिहि कारण अस वचन उचारो ॥
दोहा—समय पाय समझो परत, नरकृत हेत अहेत ।
तुम सम दुष्ट न दूसरो, इहि अवसर दुख देत ॥

" चहुँ दिशि रेखा खींच अहीशा " ।

सवैया—एक विचार कियो मन में सिय के हठ ते प्रभु पै अब धाऊँ ।
है बन माहि निशाचर को छल मात के बोलन क्यों उलझाऊँ ।
रेख करी चहुँओर कह्यो सुन या तजि पाउँ न देव अगाऊँ ।
जो विधि लौं इहि बीच परै जर छार उड़ै तन की तुरताऊँ ॥

अर्थ--सुनते ही सीता जी ने बड़े कठोर वचन कहे (तौभी लक्ष्मण जी का विचार न पलटा परन्तु) रामचन्द्र जी की अन्तर्गत प्रेरणा से लक्ष्मण जी की बुद्धि पलट गई ॥

चौ०--बन दिशिदेव सौंपि सब काहू । चले जहाँ रावणशशिराहू ॥

अर्थ--(फिर) बनदेवता और दिग्पाल आदि सब के भरोसे सीता जी को छोड़ वहां गये, जहां चंद्रमारूपी रावण के ग्रसनेवाले राहुरूपी राम थे ॥

चौ०--शून्य बीच दशकंधर देखा । आवा निकट * यती के बेखा ॥
जाके डर सुर असुर डराहीं । निशि न नींद दिन अन्न नखाहीं ॥

अर्थ--रावण, रामलक्ष्मण विहीन कुटी को देख, सन्यासी का रूप धारण कर उसके समीप आया । जिसके भय से सब देवता और राक्षस थर थर कांपते थे. यहां तक कि उन्हें न तो रात्रि में नींद आती थी और न वे दिन को पेट भर भोजन करते थे ॥

चौ०--सो दशशीश स्वान की नाईं । इत उत चितय चला भड़ियाईं ॥
इमि कुपंथ पग देत खगेशा । रह न तेज बल बुधि लवलेशा ॥

अर्थ--ऐसा (प्रतापी) रावण कुत्ते की नाईं इधर उधर देखता हुआ छिपता सा चला । हे गरुड़ जी ! इसी प्रकार बुरे काम में हाथ डालते समय प्राणी का प्रताप, बल और विचार कुछ भी नहीं रहता ॥

---

* बन दिशि देव सौंपि सब काहू । के पश्चात् का क्षे०

चौ०--चितवहिं लषन सियहिं फिर कैसे । तजत बच्छ निज मातहिं जैसे ॥

अर्थ--चलते समय लक्ष्मण जी सीता जी की ओर इस प्रकार देखते थे जैसे बच्चा अपनी माता की ओर देखता है ॥

दो०--एक डरत डर राम के, दूजे सीय अकेलि ।
लषन तेज तन हत भयो, जिमि डाढ़ी दवबेलि ॥

अर्थ--कुछ तो रामचन्द्र जी की अप्रसन्नता के भय से और कुछ सीता जी के अकेली हो जाने से लक्ष्मण जी का मुँह ऐसा उतर गया जैसे बेलि दँवार से झुलसकर हो जाती है ॥

* यती के वेष आदि का वर्णन, मेघनाद प्रति उस समय पर जब कि रावण मायावी अनेक रावण रूप धारण कर सभा में अङ्गद को भुलावा देना चाहता था; कवि शिरोमणि " कृतिबासजी " अङ्गदद्वारा यों कराते हैं :--

पर या क्षण वा दशभाल कुचाल तेरे पितु के सँग काज हमारा।
जुइ सूर्पनखा कर शिष्य भयो उपदेश ते वेष यती कर धारा॥
रद कुंडल कानन कानन माँहि फिर्‌यो मुख माहि रमाय कै छारा॥
परिचाव वही भिखियारि को मोहि जो राम की नारि चुरावन हारा॥
इमि कुपंथ पग देत खगेशा। के आगे का क्षे०—

चौ०—करि अनेक विधि छल चतुराई। माँगेउ भीख दशानन जाई।
अतिथि जानि सिय कंद मूलफल। देन लगीं तिहि कीन्ह बहुरि छल॥

अर्थ—रावण ने जाकर कई प्रकार से कपट और चतुराई की बातें करके भीख मांगी। सोता जी उसे यती जान कंद मूल फल देने को लाईं तो फिर भी उसने छल किया॥

चौ०—कह दशमुख सुनु सुन्दरि बानी। बाँधी भीख न लेउँ सयानी॥
विधि गति बाम काल कठिनाई। रेख लाँघि सिय बाहर आई॥

अर्थ—(यती वेषधारी) रावण कहने लगा, हे चतुर सुन्दरी मेरी बात सुन! मैं बाँधी भीख नहीं लेता (अर्थात् जो तुम अभिमंत्रित खिंची हुई रेखा के भीतर से भिक्षा देने वाली हो, सो ग्राह्य नहीं है)। विधाता की करनी टेढ़ी जान पड़ती है इस कारण तथा समय की विपरीतता से सीता जी रेखा को लांघ कर बाहर आगईं॥

"विधि गति बाम" "काल कठिनाई"—कहा है "दैवी विचित्रा गतिः" अर्थात् दैव की अद्भुत गति होती है॥

और भी कहा है सूरदास जी ने :—

दयानिधि तोरी गति लखि न परै।
धन से धरम धरम से अधरम अकरम करम करै॥ १॥
पिता बचन मेटै सो पापी सोइ प्रह्लाद करै।
ताकी बन्दि छुड़ावन कारन नरहरि रूप धरै॥ २॥
एक गऊ जो देत विप्र को सो सुर-लोक तरै।
कोटि गऊ राजा नृग दीन्ही सो भवकूप परै॥ ३॥
गुरु वशिष्ठ अति ही गुणआगर रचि रचि लगन धरै।
सीताहरन मरन दशरथ को विपति पै विपति परै॥ ४॥
वेद विदित तेरो यश गावैं सौ बल यज्ञ करै।
ताको बाँधि पताल पठायो कैसे "सूर" तरै॥ ५॥

"काल कठिनाई" :—
कालः सृजति भूतानि, कालः संहरते प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्ति, कालोहि दुरतिक्रमः॥
अतीताऽनागता भावाः ये च वर्तन्ति साम्प्रतम्।
तान् काल निर्मितान् बुध्वा, न त्वं शोचितुमर्हसि॥

अर्थात् काल जीवधारियों को उत्पन्न करता है, वही उन का संहार करता है, काल सोते हुओं को जगाता है, काल ही का उल्लङ्घन बहुत कठिन है। जो भाव हो चुके हैं, जो अभी हुए नहीं और जो साम्प्रति विद्यमान हैं, इन सब को काल ही के बनाये हुए जान, किसी को सोच करना उचित नहीं॥

चौ०—नाना विधि कहि कथा सुहाई । राजनीति भय प्रीति दिखाई ॥
कह सीता सुन यती गोसाईं । बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं ॥

अर्थ—(रावण ने) कई प्रकार से मनोरंजन राजनीति की कथाएँ कहीं फिर डर और प्रेम भी दिखाया । सीता जी कहने लगीं हे गोस्वामी यती जी ! तुम तो अधर्मी के सदृश बातें करते हो ॥

चौ०—तब रावन निज रूप दिखावा । भई सभय जब नाम सुनावा ॥
कह सीता धर धीरज गाढ़ा । आइ गये प्रभु रहु खल ठाढ़ा ॥

अर्थ—तब उस ने अपना राक्षसी रूप प्रकट किया और जब कहा कि मैं रावण हूँ तब तो सीता जी डर गईं । फिर बड़ा ही धीरज धर के कहने लगीं रे दुष्ट खड़ा रह ! मेरे स्वामी आते ही हैं ॥

चौ०—*जिमि हरि बधुहिं क्षुद्र शश चाहा । भयसि कालवश निशिचरनाहा ॥

अर्थ—जिस प्रकार सिंहिनी को तुच्छ खरहा लेना चाहे, ऐसे ही हे राक्षसाधीश तू मृत्यु के आधीन हुआ है (अर्थात् यदि खरहा सिंहिनी को पाने की इच्छा करे तो वह अवश्य अपने प्राणों से हाथ धो बैठेगा इसी प्रकार तुझ को भी मृत्यु ने आ घेरा है) !

चौ०—सुनत वचन दशशीश लजाना । मन महँ चरण*वंदि सुख माना ॥

क्षे० विश्व भरणि अघदल दलनि, करणि सकल सुरकाज ।
जाना नहिं तेहि समय महँ, दशशिर कपट के साज ॥

अर्थ—संसार को पालने वाली, पापों के समूहों को नाश करने हारी और सब देवताओं के कार्य सिद्ध करने वालीं सीता जी रावण की कपट चातुरी को उस समय न जान सकीं ॥

* जिमि हरि बधुहि क्षुद्र शश चाहा । के पश्चात् के क्षे०

बायस कर चह खगपति समता । सिंधुसमान होइ किमि सरिता ॥

अर्थ—कौआ क्या गरुड़ की बराबरी कर सक्ता है ? और नदी भी कहीं समुद्र के समान हो सक्ती है ?

क्षे० खरि कि होइ सुरधेनु समाना । जाहु भवन निज सुन अज्ञाना ॥

अर्थ—गधी क्या कामधेनु के तुल्य हो सक्ती है ? रे मूर्ख ! इन सब बातों को सोच अपने घर लौट जा ।

* "मन महँ चरण बंदि सुख माना" ।

रावण सीता जी को परम पूज्य मानता था; इस विषय पर उस के हृदयगत विचार एक कवि जी ने उस समय पर कहे हैं जब कि श्री रामचन्द्र जी सेना सहित लङ्का में पहुँच गये थे और मन्दोदरी ने एकान्त में अपने पति को सूचित किया था कि ये वही राम हैं जिन की स्त्री तुम हर लाये हो । यथाः—

अर्थ—यह सुन दशमाथ लज्जित हुआ और मन ही मन सीता जी के चरणों को प्रणाम कर प्रसन्न हुआ (कारण सीता जी रावण की इष्ट थीं वह उन्हें पूज्य मानता था)॥

दो०-क्रोधवंत दशकंध तब, लीन्हेसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर, भय रथ हाँकि न जाइ॥ ३०॥

अर्थ—तब रावण ने क्रोधित होकर सीता को रथ पर बिठला लिया और जल्दी जल्दी आकाश मार्ग से जाने लगा, परन्तु डर के मारे रथ हाँकते नहीं बनता था॥

चौ०-*हा जगदीश देव रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया॥
आरति हरण शरण सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिननायक॥

अर्थ—(सीता जी विलाप करने लगीं) हे जगत के स्वामी! रघुवीर, पतिदेव, कौन सा अपराध मुझ से बन पड़ा, जिस कारण आप ने मुझ पर कृपा करनी छोड़ दी। आप दुःख के दूर करनेवाले, शरणागत को सुख देने वाले हो, हे रघुकुलरूपी! कमल को प्रफुल्लित करने के हेतु सूर्य समान, हा!

चौ०-‡हा लछिमन तुम्हार नहिं दोषा। सो फल पायउँ कीन्हेउ रोषा॥

अर्थ—हे लक्ष्मण! इस में तुम्हारा कुछ अपराध नहीं, जो मैंने तुम पर क्रोध किया था उस का फल मुझे मिला॥

---

* मनहर *

लंकपति रानी समुझावै पिय बार बार, वेही राम आये जासु नारी हर आनी है।
सीख हू न मानी कंत बड़े अभिमानी तुम, नारी है बिरानी कहो कहा जान आनी है।
बोला अभिमानी सुन लिया री दिवानी यह, मेरी महारानी तासो मेरे मन आनी है।
वेदन बखानी तातें रारि हठ ठानी मेरी, मुक्ति की निसानी सो भवानी जान आनी है॥

* करुणारस पूर्ण सीता विलाप सूचक मनहर छन्द देखिये—
मेरी महि माय हाय सोऊ न छुटावै मोहिं, ठाढ़े कुञ्ज भ्रात भूरि तेऊ नगिचाय ना।
तात के समान भान देखें न बचावै आन, भगिनी लताएँ लखें तेऊ गहें धाय ना॥
संगिनी कुरंगिनी सुहेरैं पै न टेरैं काहु, ऐसे समै हितू और कितहूँ जनाय ना।
"रसिक बिहारी" दुखहारी धनुधारी बिन, बिपति परे पै कौऊ करत सहाय ना॥

‡ हा लछिमन तुम्हार नहिं दोषा। के पश्चात् का क्षे०
क्षे० कैकेयी मन जो कछु रहेऊ। सो विधि आजु मोहिं दुख दयेऊ॥
अर्थ—कैकेई ने जो कुछ बिचार मन में बांधे थे, उनके अनुसार दुःखरूपी फल विधाता ने मुझे आज दिया [अर्थात् कैकेई ने भरत को राज्य दिलाने के बिचार से, जो रामचन्द्र जी को बनवास कराया था और ऐसा करने से जो वह मेरा विछोह मेरे पति से कराना चाहती थी, सो जब मैं पति के संग बन में चली आई तो उस की मनोकामना, जो तब सिद्ध न हो पाई थी, सो अब हुई अर्थात् मेरा पति से विछोह हुआ]॥

चौ०—विविध विलाप करति वैदेही । भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही ॥

अर्थ—जानकी जी भाँति भाँति की करुणा करती थीं (और कहती थीं) मेरे प्यारे प्रीतम की दया मुझ पर अधिक तो है पर वे दूर हैं ॥

चौ०—विपति मोरि को प्रभुहिं सुनावा । पुरोडास चह रासभ खावा ॥
*सीता कर विलाप सुनि भारी । भये चराचर जीव दुखारी ॥

अर्थ—मेरे दुःख को प्रभु से कौन कहेगा ? यज्ञ की खीर को मानो गधा खाना चाहता है । सीता जी का ऐसा अरण्यरोदन सुन कर चलायमान और अचल जीव जन्तु दुःखित हुए ॥

क्षे. पञ्चवटी के खग मृग जाती । दुखी भये बनचर बहु भाँती ॥

अर्थ—पंचवटी के बनवासी सब पशु पक्षी नाना प्रकार से दुःखित हुए ॥

* सीता कर विलाप सुनि भारी । के पश्चात् का क्षे०

क्षे. बहु बिधि करति विलाप नभ लिये जात दससीश ।
डरत न खल वर पाय भल, जो दीन्हों अजईश ॥

शब्दार्थ—अजईश = ब्रह्मदेव अथवा ब्रह्मा और महादेव ॥

अर्थ—अनेक भाँति बिसूरती हुई सीता को, रावण आकाश मार्ग से लिये जाता था; वह दुष्ट, ब्रह्मा और शिव जी से अटल वरदान पाकर निडर हो गया था ॥

"वर पाय भल"—

एक बार रावण ने अपने पिता के संग कुवेर को देख, पूछा कि यह कौन है ? उत्तर पाया, यह तुम्हारा बड़ा भाई है जो तपस्या के बल से देवत्व को प्राप्त हो देवताओं का कोषाधीश बन गया है । तुम भी महत्व प्राप्त करने का प्रयत्न करो । सुनते ही रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण के साथ गोकर्ण-क्षेत्र में उग्र तपस्या करने लगा । वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि हजार वर्ष तक तपस्या कर रावण अपने एक मस्तक को हवन कर देता था, इसी तरह उसने नौ हजार वर्ष में नौ सिर हवन कर दिये । दशवें हजार वर्ष के अन्त में ब्रह्मा जी उसके समीप प्रकट होकर बोले, कि वर माँग ? रावण कहने लगा, आप किसी को अमर तो करते ही नहीं, इसलिये यह वर दीजिये कि हम किसी के मारे न मरें । (हां, मनुष्य और बंदर तो हमारे भक्ष्य ही हैं इन्हें चाहे छोड़ दो) ब्रह्मा जी बोले ऐसा ही हो और इसके सिवाय जो तुमने सिरों का हवन किया है उसके बदले यह वर देता हूं कि तुम्हारे सिर ज्यों के त्यों हो जाँय और तुम कामरूप हो अपनी इच्छानुसार रूप धारण कर सकोगे । कुम्भकर्ण को निद्रापद और विभीषण को भगवद्भक्ति का वर प्रदान कर ब्रह्मा जी अंतर्ध्यान हो गये । वरदान पा रावण मदान्ध हो निधड़क मनमाना उपद्रव करने लगा । शिव जी ने भी इसे कई वरदानों के साथ चन्द्रहास तलवार दी थी ॥

पूरा जीवन चरित्र बालकांड की श्रीविनायकी टीका में मिलेगा ॥

चौ०—गीधराज सुनि आरति बानी । रघुकुल-तिलक-नारि पहिचानी ॥
‡अधम निशाचर लीन्हें जाई । जिमि मलेच्छ वश कपिलागाई ॥

अर्थ—जटायु ने जब दुःख भरे शब्द सुने तब उस ने रघुकुल में श्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी की पत्नी को पहिचान लिया। (देखता क्या है कि) नीच राक्षस उन्हें लिये जाता है मानो सूधी गाय क़साई के हाथ पड़ी हो ॥

चौ०—सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहउँ यातुधान कर नासा ॥

अर्थ—(जटायु बोला कि) बेटी जानकी ! डरो मत, मैं अभी इस राक्षस का नाश करे डालता हूं ॥

चौ०—धावा क्रोधवंत खग कैसे। छूटइ पवि पर्वत पर जैसे ॥
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही। निर्भय चलेसि न जानेसि मोही ॥

अर्थ—जटायु क्रोधित होकर ऐसा झपटा मानो इन्द्र का बज्र पहाड़ पर लपका हो। (और कहने लगा) अरे अधर्मी तू खड़ा क्यों नहीं रहता, निधड़क चला जाता है, क्या तू मुझे नहीं जानता ?

चौ०—आवत देखि कृतांत समाना। फिरि दशकंध करत अनुमाना ॥
की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई ॥
‡जाना जरठ जटायू येहा। मम करतीरथ छाँड़िहि देहा ॥

अर्थ—उस को यमराज के सदृश आते देख, रावण विचार बांधने लगा। या तो यह मैनाक पर्वत है या गरुड़, जो मेरे बल को जान कर विष्णु समेत आ रहा है। जब पहिचाना कि यह वृद्ध जटायु है (तब तो कहने लगा) यह मेरे हाथरूपी तीर्थों में अपना शरीर छोड़ना चाहता है (अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य बुढ़ापे में काशी आदि तीर्थस्थानों में मरने के हेतु जा बसते हैं और फिर वहीं प्राण त्याग करते हैं इसी प्रकार यह वृद्ध गीध मेरे हाथ से मरने को आया है) ॥

---

* अधम निशाचर लीन्हें जाई के पश्चात् का क्षेपक—
अहह प्रथम बल मम तनु नाहीं। तदपि जाय देखौं बल ताहीं ॥
अर्थ—जटायु विचारने लगा अरे! जो बल मुझमें पहिले था, वह अब (वृद्ध होने के कारण) नहीं रहा, तौ भी मैं उसके बल को जाकर देखता हूं ॥

‡ जाना जरठ जटायू येहा के पश्चात् का क्षे०—
मम भुजबल जानत नहीं, आवत तपिन्ह सहाय।
समर चढ़ै तो इहि हतौं, जियत न निज थल जाय ॥
अर्थ—(यह) मेरे भुजदण्ड का प्रताप नहीं जानता, इसहेतु तपस्वियों (राम, लक्ष्मण) की सहायता करने को आरहा है। यदि युद्ध करेगा तो इसे मार डालूंगा, यह जीते जी अपने घर न लौटने पावेगा ॥

चौ०—सुनत गीध क्रोधातुर धावा । कह सुनु रावन मोर सिखावा ॥
तजि जानकिहि कुशल गृह जाहू । नाहिं त अस होइहि बहुबाहू ॥

अर्थ—(ऐसे अहंकारी वचन) सुनते ही जटायु क्रोधित होकर रावण के पास उड़ आया और कहने लगा । हे रावण ! मेरी सीख मान कि सीता जी को छोड़ दे और क्षेमपूर्वक अपने घर जा पहुँच, नहीं तो हे बहु भुजधारी तेरी ऐसी दशा होगी कि ॥

चौ०—राम-रोष-पावक अतिघोरा । होइहि शलभ सकल कुल तोरा ॥
उतर न देत दशानन योधा । तबहिं गीध धावा करि क्रोधा ॥

शब्दार्थ—शलभ=पतंगा ॥

अर्थ—राम जी के प्रचंड क्रोधानल से तेरा सब वंश पतंगे की नाईं भस्म हो जायगा । बलाढ्यरावण ने जब इस का कुछ उत्तर न दिया, तब तो गीध क्रोध करके झपटा ॥

चौ०—*धरि कच विरथ कीन्ह महि गिरा । सीतहि राखि गीध पुनि फिरा ॥
*चोंचन्ह मारि विदारेसि देही । दंड एक भइ मूर्च्छा तेही ॥

अर्थ—रावण का झोंटा पकड़ के रथ पर से फेंक दिया, सो वह पृथ्वी पर गिरा और फिर सीताजी को एक ओर बिठलाकर गीध रावण की ओर फिरा । फिर मारे चोंचों के उस का शरीर चींथ डाला, जिस से वह क्षण भर के लिये मूर्च्छित होगया ॥

चौ०—तब सक्रोध निशिचर खिसियाना । काढ़ेसि परम कराल कृपाना ॥
काटेसि पंख परा खग धरनी । सुमिरि राम कर अद्भुत करनी ॥

---

* धरि कच विरथ कीन्ह महि गिरा के पश्चात् का क्षे०—

क्षे० दशमुख उठि कृत शर संधाना । गीध आइ काटेउ धनु बाना ॥

अर्थ—रावण ने धनुष पर बाण लगाया ही था कि गिद्ध ने आकर उस के धनुषबाण काट डाले ॥

* चोंचन्ह मारि विदारेसि देही के पश्चात् का क्षे०—

दो० जेइ रावण निज वश किये, मुनिगन सिद्ध सुरेश ।
तेइ रावण सन समर अति, धीर वीर गृध्रेश ॥

अर्थ—जिस रावण ने मुनियों, सिद्धों और इन्द्र को भी आधीन कर रक्खा था । ऐसे रावण के साथ धीरज वाले, साहसी गृद्धराज युद्ध कर रहे हैं ॥

क्षे० स्वस्थ भये सो पुनि उठि धावा । मारे गृध्र न सन्मुख आवा ॥
कीन्हेसि बहु विधि युद्ध खगेशा । थकित भयो तब जरठ गृध्रेशा ॥

अर्थ—सावधान होते ही रावण फिर उठ दौड़ा, परन्तु गिद्ध की चपलता के कारण वह उस के सन्मुख न ठहर सका । हे गरुड़ जी ! इस भाँति अनेक प्रकार युद्ध-कौशल करते करते वृद्ध गृध्रराज थक गये ॥

अर्थ—तब क्रोधी रावण ने कोप कर के अति तीक्ष्ण तलवार निकाली। अंतिम अर्द्धाली का अन्वय--पंख काटेसि, खग अद्भुत करनी कर, राम सुमिरि धरनी (पर) परा ॥

अर्थ—फिर गीध के पंख काट डाले, वह (बलवान् रावण से भिड़ जाने की) अनोखी करनी कर, राम नाम भजता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥

चौ०-सीतहि यान चढ़ाय बहोरी । चला उतावल त्रास न थोरी ॥

अर्थ--(रावण) सीता जी को फिर से रथ पर बिठला कर जल्दी २ जाने लगा, परन्तु भारी भय से भरा हुआ था कि कहीं (राम न आ जाँय)

चौ०-करति विलाप जाति नभ सीता ।*ब्याध विबश जनु मृगीसभीता ॥
गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी । कहि हरिनाम दीन्ह पट डारी ॥

अर्थ—सभीत सीता जी आकाश मार्ग में विलाप करतीं जा रहीं थीं, मानो बहेलिया के वश में पड़ कर हरिणी भयभीत हो रही हो।

अन्वय दूसरी अर्द्धाली का—गिरि पर बैठे कपिन्ह, हरिनाम कहि निहारी पट डारी दीन्ह।

अर्थ—सीता जी ने ऋष्यमूक पर्वत पर (सुग्रीव सहित) वानरों को (कदाचित् अपना ही विलाप सुन खेद प्रकाश करने के हेतु) राम ! राम ! कहते हुए देख कर, अपना एक कपड़ा उन के पास डाल दिया (इस अभिप्राय से कि मेरा खोज लगाते हुए रामचन्द्र जी को कदाचित् ये हरिभक्त यह वस्त्र दे देवें) ॥

दूसरा अर्थ—सीता जी ने ऋष्यमूक पर्वत पर वानरों को बैठा देख राम नाम का उच्चारण कर अपना एक वस्त्र डाल दिया (इस प्रयोजन से कि रामचन्द्र जी जब मुझे ढूंढ़ते हुए यहां आवेंगे तब कदाचित् ये वानर यह वस्त्र किसी रामभक्त का जान कर उन्हें दे देवेंगे और इस से मेरा कुछ पता उन्हें लग जायगा) ॥

काटेसि पंख परा खग धरनी के पश्चात् का क्षे०—

मन महँ गीध परम सुख माना । राम काज मम लागेउ प्राना ॥

अर्थ—गीध अपने मन में इसहेतु बहुतही प्रसन्न हुआ कि मेरा शरीर रामचन्द्र जी के निमित्त लगा।

* जनकसुता को हरि लीनी दशशीश जबै, रथ पै चढ़ाय लै चलो है निज भौन को।
विकल अधीर विललाति कुररी की भाँति दीन ह्वै पुकारत है भूमि नभ पौन को।
"रसिक बिहारी" हाय प्रीतम धनुषधारी, आपनी दशा मैं या सुनाऊं सबै कौन को।
अबतो परी है बालमृगी या बधिक हाथ, वेग ही छुड़ावो धावो दुष्टदल दौन को ॥

चौ०—एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ । वन अशोक महँ राखत भयऊ ॥

अर्थ—इस प्रकार रावण सीता जी को हर ले गया और उन्हें अशोक बाटिका में जा रक्खा ॥

दो०—*हारि परा खल बहुत बिधि, भय अरु प्रीति दिखाय ।
तब अशोक पादप तरे, राखेसि जतन कराय ॥

अर्थ—वह दुष्ट (सीता जी को) डर और प्रेम बताने पर भी जब अपने महलों में रहने को राजी न कर सका । तब उस ने अशोक वृक्ष के नीचे बड़े प्रबन्ध के साथ उन्हें रहने दिया ॥

---

* हारि परा खल बहुत बिधि के पश्चात् के क्षे०

चौ०—वहाँ बिधाता मन अनुमाना । सुरपति बोल मंत्र अस ठाना ॥
तात जनकतनया पहँ जाहू । सुधि न पाव जेहि निशिचरनाहू ॥

अर्थ—स्वर्ग में, ब्रह्मा ने कुछ सोच इन्द्र को बुलाया और यह बात निश्चित की; कि हे भाई ! तुम विदेहतनया के पास इस प्रकार से जाओ कि रावण न जानने पावे ॥

चौ०—अस कहि बिधि सुन्दर हवि आनी । सौंपि बहुरि बोले मृदुबानी ॥
इहि भक्षण कृत क्षुधा न प्यासा ! वर्ष सहस दश संशय नासा ॥

अर्थ—ऐसा कहकर ब्रह्मा जी उत्तम यज्ञ की खीर ले आये और उसे इन्द्र को सौंप मधुर वचन बोले ! इस के खाने से न भूख लगती है, न प्यास और दश हज़ार वर्ष तक सन्देहों का नाश रहता है ॥

चौ०—सो प्रसाद लै आयसु पाई । चलेउ हृदय सुमिरत रघुराई ॥
कछु बासव माया निज मोई । रक्षक रहे गये तहँ सोई ॥

अर्थ—(ब्रह्मा की) आज्ञानुसार इन्द्र वह हव्य लेकर हृदय में रामचन्द्र जी का स्मरण करते हुए चले । इन्द्र ने अपनी माया कुछ ऐसी फैलाई कि जितने रखवारे थे, सब जहाँ के तहाँ सो गये ॥

चौ०—तदपि डरत सीता पहँ आयउ । करि प्रनाम निज नाम सुनायउ ॥
निश्चय जान सुरेश सुजाना । पिता जनक दशरथ सम माना ॥
करि परितोष दूर करि शोका । हव्य खवाय गये निज लोका ॥

अर्थ—तौभी डरते २ सीता जी के पास आये और उन के चरणों पर शीश नवाकर कहा कि मैं इन्द्र हूँ । सीता जी को विश्वास हो गया कि ये सचमुच देवराज हैं, तब तो उन ने उन्हें अपने पिता जनक और श्वशुर दशरथ के तुल्य समझा । (इन्द्र) सीताजी को समझाय बुझाय और दुःख के समय धीरज धराय हव्य खिलाय अपने लोक को चले गये ॥

दो०—जेहि बिधि कपटकुरंग सँग, धाइ चले श्री राम।
सो छबि सीता राखि उर, रटति रहति हरिनाम ॥ ३१ ॥

अर्थ—जिस प्रकार मायामृग के पीछे श्री रामचन्द्र जी दौड़े जा रहे थे, उसी छबि का ध्यान हृदय में धर, सीता जी "राम" नाम रटतीं रहतीं थीं ॥

चौ०—रघुपति अनुजहिं आवत देखी। मन महँ चिन्ता कीन्हि बिसेखी ॥
जनकसुता परिहरहु अकेली। आयहु तात वचन मम पेली ॥

शब्दार्थ—पेली=न मान कर।

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने जब लक्ष्मण को आते देखा, तब वे मन में बड़ी चिन्ता करने लगे (और कहने लगे) जानकी जी को अकेली छोड़कर हे भाई! तुम मेरी आज्ञा उल्लंघन कर आये हो।

चौ०*निशिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आश्रम नाहीं ॥

अर्थ—राक्षसों के समूह बन में फिर रहे हैं, मैं समझता हूं कि सीता आश्रम में नहीं हैं।

चौ०—गहिपदकमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी ॥

अर्थ—लक्ष्मण ने रामचन्द्र जी के कमलस्वरूपी चरणों पर हाथ धरा और फिर हाथ जोड़ कर कहने लगे, हे स्वामी! इस में मेरा कुछ दोष नहीं है ॥

चौ०—अनुजसमेत गये प्रभु तहँवा। गोदावरितट आश्रम जहँवा ॥
†आश्रम देखि जानकीहीना। भये विकल जस प्राकृत दीना ॥

---

* निशिचर निकर फिरहिं बन माहीं के पश्चात् का क्षेपक—

अहह तात भल कीन्हेउ नाहीं। सिय विहीन मम जीवन काहीं ॥

अर्थ—अरे भाई! तुमने अच्छा नहीं किया; सीता के बिना मेरा जीवन किस काम का

चौ०—यहि तें कवन विपति बड़ भाई। खोयहु सीय काननहिं आई ॥

अर्थ—हे भाई! इस से भी भारी दुःख कौन सा हो सकता है कि वन में आकर सीता को खो बैठे?

† आश्रम देखि जानकी हीना। भये विकल जस प्राकृत दीना ॥

क०—लाज मर्याद पितु मात के सकोच वश जौलो रहो सदन न तौलो चित्त दीनों मैं।
बहुरि सिधारो बन तब सी दुखारी अति सहित सुबंधु वेष तापस को लीनों मैं ॥
"रसिक बिहारी" सुख समय निरायो जब तब प्रथमैं ते भयो लाड़िली बिहीनों मैं।
शूलेगी सदा ही यह शूल उर मेरे हाय प्यारी को न प्यार कबों जिय भर कीनों मैं ॥

(चौ०)

अर्थ—रामचन्द्र जी लक्ष्मण को साथ ले उस स्थान पर आये जहां गोदावरी के किनारे पर्णकुटी बनी थी। कुटी में जानकी को न पाकर इस प्रकार व्याकुल हुए जैसे दुखिया साधारण मनुष्य व्याकुल होता है ॥

चौ०—हा गुनखानि जानकी सीता । रूप-शील-व्रत-नेम-पुनीता ॥

अर्थ—हे गुणपूर्णा, हे जानकी, हे शीतलता देनेवाली, हे पतिव्रता, हे नियमवती, हे पावनी ! तुम कहां हो ?

चौ०—लछिमन समुझाये बहु भाँती । *पूछत चले लता तरुपाँती ॥
हे खग मृग हे मधुकरश्रेनी । तुम देखी सीता मृगनैनी ॥

अर्थ—लक्ष्मण जी ने कई प्रकार से रामचन्द्र जी को समझाया (परन्तु वे

आश्रम देखि जानकी हीना के पश्चात् का क्षे०—

दो०—कानन रहेउ तड़ाग इव, चक चकई सिय राम ।
रावण निशि बिछुरन किये, दुख बीते चहुँ याम ॥

अर्थ—इस अवसर पर दण्डकवन तो मानो सरोवर के सदृश हो रहा था, सीता व राम चकई चकवा की नाईं थे और रावण ने रात्रि तुल्य होकर दोनों का विछोह किया है; सो दुःख चार पहर बीतने पर दूर होगा (अर्थात् जब रावण मारा जायगा तब सीता और राम का मिलाप होगा)

चौ०—पर दुख हरण शोक दुख नाहीं । भा विषाद तिन के मन माहीं ॥

अर्थ—दूसरों के दुःख दूर करने वाले जिन्हें शोकरूपी दुःख हो ही नहीं सका, उन ने मानो अपने मन का दुःख दरशाया ।

* पूछत चले लता तरु पांती—

सवैया—हे तरु ताल तमाल रसाल अशोकहु थोकहु चेत रितै गइ ।
हे "ललितै" बकुलौ बट बेल कदंब लवंग कहो तू जितै गइ ॥
चंपक चाँद नि भो कचनार अनार पलास तुम्हैं का चितै गइ ।
देहु बताय कृपा करि कै तुम देखी हमारी पियारी कितै गइ ॥

चौ०—हे कदंब वह कदँब पियारी । तुम देखी जानकी हमारी ।
हे अर्जुन तुम धवल दिखावो । धवल प्रिया कित मोहि लखावो ।
हे तरु तिलक भ्रमर बहु धारी । तिलकप्रिया तुम सिया निहारी ।
हे अशोक हर शोक हमारो । नाम सारथक होय तुम्हारो ॥
हे तरु करनिकार शुभरूपा । कर निकार प्रिय सिया अनूपा ॥
हे अमली न मिली सिय जब ते । अमली सरिस भ्रमत हम तब ते ॥
हे अनार कित नारि हमारी । तुव फल के समान रद बारी ।
हे मृग मृगनयनी सिय कां हैं । कहु गज गजगमनी प्रिय चाहैं ॥
पादप मृगन पूछ इहि भांती । सियसन कह जनु प्रगट दिखाती ॥
हे पंकज-नयनी कित जाओ । देख लई हम अब ढिग आओ ॥
हा सीते ! परिहास न कीजै । विटप ओट ते दर्शन दीजै ॥

काहे को समझते थे) वे तो वेलि, वृत्त आदिक से यों पूछते हुए जा रहे थे; हे पक्षिओ, हे पशुओ, हे भ्रमरावली ! क्या तुमने मृगाक्षी सीता जी को देखा है ?

नीचे की चार पंक्तियों पर सूचना :--

श्री रामायण में "नायक" तो श्री रघुनाथ जी हैं और " नायिका " श्री सीता जी हैं; अतएव ग्रन्थरचना की परिपाटी के अनुसार दोनों का शृङ्गार वर्णन करना आवश्यक है; सो श्री गोस्वामी जी बालकांड में श्री रामचन्द्र जी का शृङ्गार तो वर्णन कर चुके हैं परन्तु उन्होंने सीता जी को जगतमाता जान उनका शृङ्गार यथोचित रीति से अभी तक वर्णन नहीं किया था; कारण, पुत्र को क्या अधिकार है कि वह अपनी माता का शृङ्गार वर्णन करे; जैसा लिखा है बालकाण्ड में—

" सिय शोभा नहिं जाय बखानी । जगदम्बिका रूप गुणखानी " ।।

परन्तु ग्रन्थ में नायिका का शृङ्गार वर्णन न करना भी दूषित समझा जाता है । इसहेतु ग्रन्थकर्त्ता ने बड़ी चतुराई से प्राकृत मनुष्यों की नाईं विरह की व्याकुलता दरशाते हुए श्रीरामचन्द्र जी द्वारा सीताजी का शृङ्गार वर्णन तो कराया है (क्योंकि पति को इसका अधिकार है) परन्तु फिरभी विशेष बुद्धिमानी से "रूपकातिशयोक्ति" अलंकार को उपयोग में लाते हुए कराया है । इस अलंकार के ये लक्षण हैं कि "उपमान" अर्थात् जिस वस्तु से मिलान किया जाता है वह तो लिख दी जाती है परन्तु "उपमेय" जिसका मिलान किया जाता है वह लुप्त रहती है । कहा है " भाषा भूषण " में—

दो०—"अतिशयोक्ति रूपक जहां. केवल ही उपमान ।
कनकलता पर चन्द्रमा. धरे धनुष द्वै बान" ।।

भाव यह है कि कनक अर्थात् स्वर्ण से शरीर की आभा, लता से पंछीलापन, चन्द्रमा से मुख, धनुष से भौंहैं, वाण से नेत्रकटाक्ष किसी नायिका के सूचित किये गये हैं । इसी प्रकार—

चौ०—*खंजन शुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिलाप्रवीना ।।
कुन्द कली दाड़िम दामिनी । कमल शरद शशि अहि भामिनी ।।
वरुणपाश मनोजधनु हंसा । गज केहरि नित सुनत प्रशंसा ।।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं । नेकु न शंक सकुच मन माहीं ।।

---

* खंजन शुक कपोत मृग मीना । आदि—

रूप गुणखानी सीता महारानी के शरीर अवयवों के परम सौन्दर्य ने संसार के जीव जन्तुओं के अंगप्रत्यङ्गों की प्रशंसनीय शोभा को इस प्रकार तुच्छ ठहरा दिया था । जैसा कि नीचे लिखे हुए पद्य से प्रकट होगा । परन्तु सीता हरण के पश्चात् वे सब

अर्थ—खंजन, मृग और मीन सरीखे नेत्र, शुक (सुआ) सरीखी नाक, कपोत (कबूतर) कैसा कण्ठ, मधुप-निकर (भौंरों के झुंड) समान काले केश, कुशल कोकिल के समान वाणी। कुंदकली के सदृश छोटे छोटे दांत जो अनार के दानों के सदृश सटे हुए व चमक में बिजली के समान हैं। कमल समान मुख, शरद शशि के सदृश मुखमंडल, अहि-भामिनी (नागिनी) सी लट। वरुणपाश (वरुणदेव की काली फसड़ी) के समान कंठ-रेखा, मनोज-धनु (कामदेव के धनुष) कैसी टेढ़ी भौंहैं, हंस सरीखी धीमी गति, गज की नाईं मस्त चाल. केहरि (सिंह) समान कमर। श्री फल (बेलफल) के समान स्तन, कनक (स्वर्ण) सदृश गोरा रंग, और कदली (केला के स्तम्भ) समान जंघाएं सीता जी की हैं (उन के जाने से) खंजन मृग आदि सब प्रसन्न होते हैं कारण, इन के मन में न तो शंका है और न संकोच। सारांश-रामचंद्र जी विरह दर्शाते हुए सीता जी को मानो यों पुकारते हैं। हे खंजन नेत्रे, हे मृगनयनी, हे सुदति, हे पंकज-मुखी, हे चंद्रवदनी, हे सुकेशी, हे सुकंठी, हे सुभ्रू, हे हंस-गमने, हे गज-गामिनी, हे कृशोदरी, हे पीनस्तनी, हे गौरांगी, हे सघन जंघे तुम कहाँ हो ?

प्राणी खोई हुई निज प्रशंसा को पुनः प्राप्त कर अपनी पुरानी कसक के निकस जाने की ठसक में फूल कर मानो मसक हो रहे थे—

क०—अधर ललामो पेखि पाके बन बिंबा फल, नैनब कुरङ्गन को कानन भगायो है।
चाल मतवारी ने मतंगन घुमायो भूरि, लङ्क केहरीन कंदरान में दुरायो है।
दंतन की दुति ने डुबोयो सिंधु मोतिन को, छीनहुँ कलंकी सो मयंक नभछायो है।
कामिनि ललाम रसधाम लखि रूप तेरो, तेज निज दामिनि ने घन में छिपायो है॥

प्रेमसागर में श्री शुकदेव मुनि बाणासुर की पुत्री ऊषा का सौन्दर्य राजा परीक्षित प्रति यों वर्णन करते हैं:— "महाराज जिस काल वह बाल बारह बरस की हुई तो उस के मुखचन्द्र की ज्योति देख पूर्णमासी का चन्द्रमा छवि छीन हुआ, बालों की श्यामता के आगे अमावस की अँधेरी फीकी लगने लगी, उस की चोटी की लटकाई लख नागिनी अपनी केंचली छोड़ सटक गई, भौंह की बंकाई निरख धनुष धकधकाने लगा, आंखों की बड़ाई चंचलताई पेख मृग मीन खंजन खिसाय रहे, नाक की निकाई निहार तिल फूल मुरझाय गया, अधर की लाली लख बिंबाफल बिलबिलाने लगा, दाँत की पाँत निरख दाड़िम का हिया दड़क गया, कपोलों की कोमलता पेख गुलाब फूलने से रह गया, गले की गुलाई देख कपोत कलमलाने लगा, कुचों की कोर निरख कमल कली सरोवर में जाय गिरी, उस की कटि की कृशता देख केशरी ने बनवास लिया, जाँघों की चिकनाई पेख केले ने कपूर खाया, देह की गुराई निरखि सोने को सकुच भई और चम्पा चप गया, कर-पद के आगे पद्म की पदवी कुछ न रही, ऐसी वह गजगामिनी पिकबयनी नव-बाला यौवन की सरसाई से शोभायमान भई, जिसने इन सब की शोभा छीन ली। इत्यादि॥

चौ०—सुनु जानकी तोहि बिन आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥
*किमि सहिजात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रकटसि कस नाहीं॥

अर्थ—हे जानकी सुनो! तुम्हारे बिना पूर्वोक्त पशु, पक्षी आदि आज ऐसे प्रसन्न हो रहे हैं मानो इन को अपना खोया हुआ राज्य मिल-गया हो। तुम से कैसे यह तीख की बात सही जाती है। हे प्यारी! तुम जल्दी से प्रकट क्यों नहीं होतीं॥

चौ०—इहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महाबिरही अतिकामी॥

अर्थ—इस प्रकार भगवान् विलाप दर्शाते हुए सीता जी की खोज में ऐसे फिर रहे थे, जैसे कोई विरह से व्याकुल काम का चेरा फिरता हो॥

चौ०—†पूरन काम राम सुखराशी। मनुजचरित कर अज अविनाशी॥

अर्थ—सुख के सागर, अजन्मा, नाशरहित, श्री रामचन्द्र जी तो पूरण काम हैं (अर्थात् उन्हें किसी बात की इच्छा नहीं है) वे केवल नरलीला कर रहे हैं॥

चौ०—आगे परा गृद्धपति देखा। सुमिरत रामचरन की रेखा॥

---

* किमि सहिजात अनख तोहि पाहीं के बाद का क्षे०—

दो०—मणि विहीन फणि दीन जिमि, मीन हीन जिमि वारि।
तिमि व्याकुल भये लषन तहँ, रघुवर दशा निहारि॥

अर्थ—जिस प्रकार सर्प मणि के खो जाने से दुःखित होता है और जैसे मछली बिना पानी के तड़पती है। वैसे ही लक्ष्मण रामचन्द्र जी की दशा को देखकर घबराये॥

चौ०—धरि उर धीर बुझावहिं रामहि। तजहिं न शोक अधिक सुखधामहि॥

अर्थ—फिर हृदय में धीरज धर के लक्ष्मण जी सुखसिन्धु श्री रामचन्द्र जी को समझाते थे; परन्तु वे अपने असीम दुःख को नहीं भूलते थे; अथवा "शोक" जो साक्षात् दुःख रूप हैं वे भी सुख के स्थान श्री रामचन्द्र जी को पाकर उन्हें छोड़ना नहीं चाहते, कारण, उन्हें फिर ऐसा सुअवसर सुख प्राप्त करने का कहाँ मिलेगा॥

† पूरन काम राम सुखराशी के नीचे का क्षे०—

चौ०—सरवर अमित नदी गिरि खोहा। बहु विधि राम लषन तहँ जोहा॥

अर्थ—श्री राम व लक्ष्मण जी ने अनेक प्रकार से वहाँ के कई तालाबों और नदियों के समीप तथा पहाड़ों की गुफ़ाओं में ढूँढ़ा॥

चौ०—शोच हृदय कछु कहि नहिं आवा। टूट धनुष शर आगे पावा॥
कहुँ कहुँ शोणित देखिय कैसे। श्रावण जल भा डाबर जैसे॥

अर्थ—वे ऐसे चिंता-ग्रस्त थे कि कुछ कहते ही नहीं बनता था, इतने ही में उन्हें टूटा हुआ धनुष बान दिखाई दिया। (और) कहीं कहीं रक्त इस प्रकार से दिखाई देता था जिस प्रकार सावन महीने में गिरा हुआ पानी गड्ढों में भरा रहता है॥

चौ०—कहत राम लछिमनहिं बुझाई। काहु कीन्ह युद्ध इहि ठाई॥ (अर्थ)

अर्थ—आगे चलकर क्या देखते हैं कि जटायु पड़ा है और वह राम, राम रट रहा है ॥

दो०—करसरोज शिर परसेउ*, कृपासिंधु रघुबीर ।
निरखि राम—छबि—धाम—मुख, बिगत भई सब पीर ॥ ३२ ॥

अर्थ—दयासागर श्री रामचन्द्र जी ने अपना कमलस्वरूपी हाथ उस के सिर पर फेर दिया, तो ज्यों ही उस ने इन के छबीले मुख के दर्शन किये त्यों ही उस के सब दुःख दूर हो गये ॥

चौ०—तब कह गीध वचन धरि धीरा । सुनहु राम भंजन भवभीरा ॥
नाथ दशानन यह गति कीन्ही । तेहि खल जनकसुता हरिलीन्ही ॥

अर्थ—तब जटायु धीरज धर के कहने लगा, हे संसार के दुःखों से छुड़ाने वाले श्री रामचन्द्र जी सुनो । हे स्वामी ! रावण ने मेरी यह दशा की और उसी दुष्ट ने श्री सीता जी का हरण किया है ॥

चौ०—लेइ दक्षिण दिशि गयउ गोसाईं । बिलपति अति कुररी की नाईं ॥
दरश लागि प्रभु राखेउँ प्राना । चलन चहत अब कृपानिधाना ॥

अर्थ—हे प्रभु ! वह उन्हें लेकर दक्षिण दिशा में चला गया है; वे विचारीं कुररी पक्षी की नाईं दुःख में विलाप करतीं जातीं थीं । हे भगवान् ! मैं आप के दर्शन कर लेने के विचार से अब तक प्राण अटकाये रहा, परन्तु हे करुणाकर ! अब मेरे प्राण पयान करना चाहते हैं ॥

चौ०—राम कहा तनु राखहु ताता । मुख मुसकाइ कही तेइ बाता ॥
जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमउँ मुक्त होइ श्रुति गावा ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने कहा हे प्यारे ! कुछ दिन और शरीर धारण किये रहो, यह सुन गीध मुसुकराकर कहने लगा । जिस का नाम मरते समय यदि प्राणी के मुख से निकल जाय तो वह पापी होने पर भी मुक्ति पा जाता है, ऐसा वेद में लिखा है ॥

चौ०—सो मम लोचन गोचर आगे । राखउँ देह नाथ केहि लागे ॥
जल भरि नैन कहा रघुराई । तात कर्म निज तें गति पाई ॥

अर्थ—तब तो रामचन्द्र जी लक्ष्मण से समझा कर कहने लगे, हे भाई ! किसी ने इस स्थान पर संग्राम किया है ॥

* सवैया—दीन मलीन दयालु विहङ्ग परयो महि सोचत खिन्न दुखारी ।
राघव दीन दयालु कृपालु को देख दुखी करुणा भइ भारी ॥
गीध को गोद में राखि कृपानिधि नैन सरोजन में भरि बारी ।
बारहिंबार सुधारहिं पंख जटायु की धूर जटान सों झारी ॥

अर्थ—सो ऐसे आप साक्षात् मेरे नेत्रों के सन्मुख खड़े हैं; हे नाथ! कहिये अब काहे के लिये शरीर रक्खूं? रामचन्द्र जी ने नेत्रों में करुणा अश्रु भर कर कहा, हे भाई! आप ने अपनी करनी से मुक्ति प्राप्त की॥

चौ०—परहित*बस जिन्ह के मनमाहीं। तिन कहँजग दुर्लभ कछु नाहीं॥
तन तजि तात जाहु मम धामा। देउँ कहा तुम पूरनकामा॥

अर्थ—जिन के हृदय में परोपकार करने के विचार रहते हैं उन्हें संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है (अर्थात् वे सब कुछ पाने के अधिकारी हो जाते हैं)। हे भाई! शरीर छोड़ कर तुम मेरे स्थान को चले जाओ (अर्थात् वैकुण्ठवासी होओ) तुम्हें और क्या दूं अब तो तुम पूरण काम हो चुके॥

दो०—सीताहरन तात जनि, कहेहु पिता सन जाइ।
जो मैं राम त कुल सहित, कहिहि दशानन आइ॥ २३॥

अर्थ—हे प्यारे! तुम (स्वर्ग लोक में जाकर दशरथ जी) मेरे पिता से सीता के हरण हो जाने का हाल अभी न कहना; जब रावण अपने कुल सहित मेरे हाथ से मर कर स्वतः सब हाल जाकर उन से कहै, तब तो मैं राम हूं, नहीं तो नहीं (अर्थात् केवल सीता हरण का हाल सुनने से पिता जी को कष्ट होगा, परन्तु वे सपरिवार रावण का नाश, सीता के छुड़ाने आदि का वृत्तान्त सहित सुन, परम प्रसन्न होंगे)॥

चौ०—गीध देह तजि धरि हरिरूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा॥
श्याम गात विशाल भुजचारी। अस्तुति करत नयन भरिबारी

अर्थ—गीध शरीर छोड़ उपमा रहित विष्णुरूप बन गया जो बहुत से आभूषणों सहित पीतांबर धारण किये था। उसका श्यामला शरीर और लम्बी चार भुजाएँ थीं, ऐसे अश्रु पूर्ण नेत्रों सहित मुख से वह यों स्तुति करने लगा—

---

* "परहित" परोपकार किंवा पर अर्थ के विषय व्यास जी के विचार नीचे लिखे हुए संस्कृत श्लोक में और भर्तृहरि जी के नीतिशतक के संस्कृत श्लोक का सार प्रतापसिंह कृत छप्पय के रूप में छापा है—

श्लोक—अष्टादश पुराणेषु, व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय, पापाय पर पीड़नम्॥

छप्पय—उत्तम नर पर अरथ करत स्वारथ को त्यागत।
मध्यम पर को अर्थ करत स्वारथ अनुरागत॥
दुष्ट जीव निज काज करत पर काज बिगारत।
वे नहिं जाने जात रूप चौथो जे धारत॥
जिन को न होत निज काज कछु औरन के स्वारथ हरत॥
तिन को न दरश छिन देहु प्रभु बात सुनत ही चित डरत।

छं०—जय राम रूप अनूप निर्गुण* सगुणगुण प्रेरक सही।
दशशीश† बाहु-प्रचंड-खंडन चाप शर मंडन मही॥
पाथोदगात सरोजमुख राजीव-आयत-लोचनं।
नित नौमि राम कृपालु बाहुविशाल भव-भय-मोचनं॥

शब्दार्थ—पाथोद (पाथः=पानी+द=देने वाले)=मेघ॥

अर्थ—हे रामचन्द्र जी! आप के स्वरूप की उपमा नहीं है, आप गुणों से रहित और गुणों सहित भी हैं; सम्पूर्ण गुणों के प्रेरक, आप की जय होय। आप दशकन्ध की प्रबल बीस भुजाओं के काटने वाले है और धनुषबाण धारण किये हुए पृथ्वी की शोभा है। आप का शरीर घने मेघ के समान, मुख पद्म के सदृश, नेत्र फूले हुए कमल की नाईं हैं; ऐसे दयालु, आजानबाहु, संसार के भय से छुड़ाने वाले श्री रामचन्द्र जी को मेरा निरन्तर प्रणाम है॥

छं०—बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरं।
गोविंद गोपर द्वंद्वहर विज्ञानघन धरनीधरं॥
जे राममंत्र जपंत संत अनंत जन-मन-रंजनं।
नित नौमि राम अकामप्रिय कामादि-खल-दल गंजनं॥

अन्वय—अप्रमेयम् बलम्, अनादिम् अजम् अव्यक्तम्, एकम्, अगोचरम्। गोविन्द गोपर, द्वन्द्व हर, विज्ञान घन धरणी धरम्। जे राममंत्र जपंत अनन्त संत जन मन रंजनम्, । अकाम प्रिय, कामादि खल दल गंजनं राम नित नौमि॥

अर्थ—आप असीम बल वाले, आदि रहित, अजन्मा, अदृश्य, अद्वितीय, इन्द्रियों के विषय नहीं, इन्द्रियों के ज्ञाता, इन्द्रियों से परे (अर्थात् इन्द्रियों की पहुंच के बाहिर) माया मोह के मिटाने वाले, ब्रह्मानन्द के बरसाने वाले और पृथ्वी के आधार है। जिस राममंत्र का जाप असंख्य संतों और भक्तों के मन को आनन्द देनेवाला है ऐसे राम जो कामना रहित पुरुषों के प्रेमी और काम क्रोधादि षट रिपुओं के समूह को नाश करने वाले हैं उन को मेरा बारंबार प्रणाम है॥

छं०—जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म व्यापक विरज अज कहि गावहीं।

---

* "निर्गुण सगुण" रूप का विशेष वर्णन पृष्ठ ४० पंक्ति २० में देखो।

† "दशशीश बाहु खंडन" पर 'खरारी' के विषय का लेख लागू होता है (देखो पृष्ठ ४१ पंक्ति २६) लेख पढ़ते समय "खर" के स्थान में "रावण" और "मुनि" के स्थान में "भक्त" पढ़ने से स्पष्ट हो जायगा कि अभी रावण तो मारा ही नहीं गया "दशशीश बाहु खंडन" क्यों कहा॥

करि ज्ञान ध्यान विराग योग अनेक मुनि जेहि पावहीं ॥
सो प्रकट करुणाकंद शोभावृन्द अग जग मोहई ।
मम हृदय पंकज-भृङ्ग अंग अनंग बहु छवि सोहई ॥

अर्थ—जिस को वेद निर्दोष, 'ब्रह्म' 'रमता' 'नाशरहित' 'जन्मरहित' आदि कहकर वर्णन करते हैं और जिस को बहुतेरे मुनि, ज्ञान, ध्यान, वैराग्य और योग के द्वारा पालेते हैं; ऐसे दयासागर, रूपउजागर, चराचर जगत के मोहने वाले, मेरे कमलस्वरूपी हृदय में बहुत से कामदेव की शोभा सहित भ्रमर की नाई सुशोभित हूजिये।

छं०—जो अगम सुगम स्वभावनिर्मल असम सम शीतल सदा।
पश्यंति यं योगी यतन करि करत मन गो वश यदा ॥
सो राम रमानिवास सन्तत दासवश त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो शमन संसृति जासु कीरति पावनी ॥

अर्थ—जो परमात्मा अभक्तों की पहुंच के बाहर हैं और भक्तों को सुलभता से प्राप्त हो सके हैं, जिनका शुद्ध स्वभाव है, जो भक्त अभक्तों के संबंध से एक से नहीं हैं, और शरणागत के सम्बन्ध से एक से हैं और सदा शान्तिस्वरूप हैं, जिसका योगीजन यत्नपूर्वक अभ्यास करके जब मन और इन्द्रियों को वश में कर लेते हैं तब साक्षात्कार कर पाते हैं, ऐसे श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मी के आधार, सदा भक्त के वश में रहने वाले, त्रिलोकीनाथ, जिन की पवित्र कीर्त्ति आवागमन को मिटाने वाली है, ऐसे आप मेरे हृदय में वास कीजिये ॥

दो०—अविरल भक्ति माँगि वर, गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया यथोचित, निज कर कीन्ही राम ॥ ३४ ॥

अर्थ—जटायु अटल भक्ति का वरदान मांग बैकुण्ठ को सिधारा; उसकी अन्त्य क्रिया श्री रामचन्द्र जी ने अपने हाथ से की ॥

चौ०—कोमलचित अति दीनदयाला। कारण बिनु रघुनाथ कृपाला ॥
गृद्ध अधम खग आमिषभोगी। गति तेहि दीन्ह जोयाचत*योगी ॥

अर्थ—रामचन्द्र जी बड़े नम्र स्वभाव वाले, दीनों पर दया करने हारे और विना स्वारथ के (भक्तों पर) कृपा करने वाले हैं। गीध मांसाहारी नीच पक्षियों की कोटि में है, उस को ईश्वर ने ऐसी मुक्ति दी जिसे योगीजन चाहा करते हैं ॥

---

* सवैया—गीध गयन्द गुनाह भरे गणिका मुनितीय जो कीन्ह खुटाई।
सौरी निषाद किरातहु केवट व्याध अनेकनि नीच महाई ॥
दीन्ह इन्हैं प्रभु दुर्लभ मुक्ति सयुक्ति जपी तपसी कोउ पाई।
प्रेम तें रीझत हैं "जयराम" यही मति वेद पुराणन गाई ॥

चौ०–सुनहु उमा ते लोग अभागी । हरि तजि होहिं विषय अनुरागी ॥
पुनि सीतहिं खोजत दोउ भाई । चले विलोकत बन बहुताई ॥

अर्थ––(महादेव जी कहते हैं) हे पार्वती ! सुनो, जो मनुष्य ईश्वर को छोड़ कर सांसारिक विषयों में मन लगाते हैं वे भाग्यहीन हैं। फिर दोनों भाई सीता जी को बहुत से बनों में ढूंढ़ते फिरे ॥

चौ०–संकुल लता विटप घन कानन । बहु खग मृग तहँ गज पंचानन ॥
आवत पंथ कबंध‡ निपाता । तेइ सब कही शाप की बाता ॥

अर्थ—सघन बनों में वृक्ष और बेलों की बाहुल्यता थी, जिन में अनगिन्ती पशु पक्षी, हाथी और सिंह भी थे। मार्ग में रामचन्द्र जी ने आते हुए कवंध को मार डाला। जिस ने (मरते समय) अपने शाप का हाल उन्हें कह सुनाया ॥

चौ०–दुर्वासा मोहि दीन्हों शापा । प्रभुपद देखि मिटा सो पापा ॥
सुन गंधर्व कहौं मैं तोही । मोहि† न सुहाइ ब्रह्मकुलद्रोही ॥

अर्थ—दुर्वासा ऋषि ने मुझे शाप दिया था उस दोष से मैं आज आपके कमल-स्वरूपी चरणों को देख मुक्त हुआ। (राम जी बोले) हे गंधर्व ! तू मेरे कथन पर ध्यान दे, मुझे ब्राह्मण कुल का विरोधी अच्छा नहीं लगता ॥

---

‡ कबंध—यह नाम दण्डकारण्य निवासी एक असुर का था, जो पहिले "विश्वावसु" नाम का गंधर्व था। भारत वनपर्व में लिखा है कि एक समय वह "स्थूल शिरा" नाम ऋषि के भारी शिर को देख कर हँसा, इस पर से ऋषि ने क्रोध कर शाप दिया था कि "तू बिना शिर वाला राक्षस हो"। तदनुसार प्रथम तो यह शिर सहित उद्दंड राक्षस हुआ, फिर देवताओं को सताने के कारण इन्द्र ने इसे ऐसा बज्र मारा कि इसका शिर धड़ में जा घुसा, तबसे यह बिना शिर वाला अर्थात् कवंध हो गया। और शाप से उद्धार की प्रार्थना करने पर इन्द्र ने उस की भुजाएं एक योजन लम्बी कर दीं जिन की सहायता से वह जीवधारियों को पकड़ कर खाया करता था। वन में विचरते हुए राम लक्ष्मण को भी पकड़ कर खाने की आशा से मुंह में डालने का प्रयत्न करने वाले इस राक्षस को श्री रामचन्द्र जी ने उस के हाथ काट कर मुक्ति दी। मरते समय उस ने सीता हरण का हाल, पंपासुर का माहात्म्य, शवरी की राम दर्शनाभिलाषा, सुग्रीव से भविष्य मित्रता आदि की सूचना श्री रामचन्द्र जी को दी थी ॥

† मोहि न सुहाइ ब्रह्मकुलद्रोही :—

ब्राह्मण बांधि पताल पठयो बलि, ब्राह्मण साठ हजार को जारे।
ब्राह्मण शोष समुद्र लियो अरु, ब्राह्मण ही यदुवंशि उजारे ॥
ब्राह्मण लात हनी हरि को पुनि, ब्राह्मण क्षत्रि समूह सँहारे।
ब्राह्मण से जनि बैर करो कोउ, ब्राह्मण सों परमेश्वर हारे ॥

दो०—मन क्रम वचन कपट तजि, जो कर भूसुर-सेव ।
मोहि समेत विरंचि शिव, वश ता के सब देव ॥ ३५ ॥

अर्थ—मनसा, वाचा, कर्मणा कपट को छोड़ जो ब्राह्मण की सेवा करता है उस के आधीन, मैं, ब्रह्मा, महादेव जी और सम्पूर्ण देवता हो जाते हैं ॥

चौ०—शापत ताड़त परुष कहंता । विप्रपूज्य अस गावहिं संता ॥
पूजिय विप्र शील गुण हीना । नहिंन‡ शूद्र गुण ज्ञान प्रवीना ॥

अर्थ—शाप देने वाला, ताड़ना करने वाला और कुवचन कहने वाला भी ब्राह्मण पूजने योग्य है ऐसा सज्जनों का कहना है (कारण जो विप्र है अर्थात् वेद पाठी है "वेदपाठीभवेत्विप्रः" वह यदि क्रोधी होकर शाप दे, ताड़ना करे, या कठोर बचन कहै तौ भी पूजनीय है जैसा परमेश्वर ने स्वतः शाप देने वाले नारद, ताड़ना करने वाले भृगु और कठोर वचन कहने वाले परशुराम का सन्मान ही किया है । इन सब का हाल विस्तार पूर्वक बालकाण्ड की श्री विनायकीटीका में देखो) ॥ यदि ब्राह्मण गुण शील आदि से हीन हो तौ भी आदरनीय है परन्तु गुण और "ज्ञान" से परिपूर्ण भी शूद्र पूजनीय नहीं है; किसी किसी का कथन है कि ऐसा अर्थ करने में यह कठिनाई आन पड़ेगी कि ज्ञानी शूद्र अपूजनीय ठहरेगा; अनुमान होता है कि तुलसीदास जी का ऐसा अभिप्राय न हो, नहीं तो वे रामचन्द्र जी के बचन शबरी प्रति ऐसे क्यों लिखते । यथा—

"कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानौं एक भक्ति कर नाता ॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुण चतुराई ॥
भक्तिहीन नर सोहहि कैसे । बिनु जल वारिद देखिय जैसे ॥ "

अतएव ऊपर की चौपाई का यों अर्थ करना ठीक जँचता है—

अन्वय—शील गुण हीना विप्र नहिंन पूजिय, गुण ज्ञान प्रवीना शूद्र (पूजिय) ॥

अर्थ—यदि ब्राह्मण अपने उचित लक्षण शील आदि से रहित हो तो पूजनीय न समझना चाहिये; परन्तु शूद्र भी यदि वह अपने गुणों से युक्त और "ज्ञान" से परिपूर्ण हो तो आदरनीय हो । जैसा कहा है—

ये शूद्रा भगवद्भक्ता, स्ते वै भागवताः स्मृताः ।
सर्व वर्णेषु ते शूद्रा, ये न भक्ता जनार्दने ॥

अर्थात् जो शूद्र परमेश्वर के भक्त हैं वे भागवत कहलाते हैं (अर्थात् पूज्य हैं) परंतु जो परमेश्वर के भक्त नहीं हैं वे किसी भी वर्ण के क्यों न हों शूद्रवत् समझे जाते हैं ॥

चौ०—कहि निजधर्म ताहि समुझावा । निज पद प्रीति देखि मन भावा ॥
रघुपति-चरन-कमल शिर नाई । गयउ गगन आपनि गतिपाई ॥

‡ "नहिन शूद्र गुण ज्ञान" का पाठान्तर "शूद्र न गुण गण ज्ञान" भी है ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने उसे बहुधा वह धर्म कह के समझाया जिस का बर्त्तावा वे स्वयं करते आये हैं (अर्थात् ब्राह्मण को पूज्य मानते आये हैं), फिर वे कबंध की प्रीति अपने चरणों में देख प्रसन्न हुए। गंधर्व रामचन्द्र जी के चरणों में शीस नवाय, गंधर्व का गंधर्व हो गंधर्वलोक को चला गया ॥

चौ०—ताहि देइ गति राम उदारा । शबरी* के आश्रम पग धारा ॥
शबरी दीख राम गृह आये । मुनि के वचन समुझि जिय भाये ॥

अर्थ—गंधर्व का उद्धार कर, दयावीर रघुवीर शबरी के स्थान को पधारे। जब शबरी ने देखा कि श्री रामचन्द्र जी मेरे यहां आ पहुंचे, तब तो उसे अपने गुरु मतंग मुनि का उपदेश स्मरण हुआ ॥

चौ०—सरसिज लोचन बाहु विशाला । जटा मुकुट शिर उर*वनमाला ॥
श्याम गौर सुन्दर दोउ भाई । शबरी परी चरन लपटाई ॥

अर्थ—(गुरु जी ने पहिचान के चिन्ह बताये थे वे ये हैं) (१) कमल-नयन, (२) विशाल-बाहु, (३) जटाजूट-धारी, (४) बनमाली और (५) श्याम गौरांग; ऐसे चिन्ह-युक्त दोनों भाइयों को देख शबरी उनके चरणों पर गिर पड़ी ॥

चौ०—प्रेममगन मुख वचन न आवा । पुनि पुनि पदसरोज शिरनावा ॥
सादर जल लै चरण पखारे । पुनि सुन्दर आसन बैठारे ॥

---

* "शबरी"—पंपा सरोवर के पश्चिमी किनारे पर महात्मा मतंग ऋषि निवास करते थे। उनकी दासी शबरी जाति की भीलिनी थी। मतंग मुनि जब दिव्यलोक को जाने लगे तब शबरी ने उनके साथ जाने की इच्छा प्रकट की। मुनि जी ने कहा कि राम लक्ष्मण जो अभी चित्रकूट में हैं, कुछ काल में यहां आनेवाले हैं तू उनका आतिथ्य कर आश्रम के अनोखे स्थान उन्हें बताय, सुग्रीव की होने वाली मित्रता का हाल उन से कह, परमधाम को प्रस्थान करना। इस प्रकार बोध कर प्रभु को पहिचानने के कुछ चिन्ह उसे बताय गुरु जी गोलोक को गमन कर गये। तब से शबरी की यह दशा थी :—

कबहूँ विचारत राम मोरे भवन केहि विधि आय हैं।
जो आय हैं तो भीलिनी गुनि मुहिं न पद परसाय हैं।
कबहूँ कहत मन माहिं यों रघुवीर परम दयाल हैं।
लखि दीन दैहैं दरश मो कहँ सत्य जन प्रणपाल हैं ॥ १ ॥
कबहूँ बिपिन बिच जाय बीनत बेर हिय हुलसाय कै।
तिन चीखि मीठे जानि रघुवर हेतु धरत सुहाय कै।
कबहूँ निहोरि मुनीन भाषत नाथ नहिं बिसराइयो।
तव धाम आवैं राम तो मुहिं दूरते दरशाइयो ॥ २ ॥

परमेश्वर पूर्ण प्रीति परख प्रसन्नता पूर्वक शबरी के आश्रम में पधारे और उन्हों ने उसे मुक्ति दी।

* वनमालाः—घुटनों तक लटकती हुई लंबी माला को वनमाल कहते हैं। यथाः—

अर्थ—शबरी ऐसे प्रेम में डूब गई कि मुख से कुछ न कह सक्ती थी, परंतु बारम्बार कमलस्वरूपी चरणों पर शीस नवाती थी। उस ने जल से पांव पखार कर उन्हें उत्तम आसन पर बिठलाया॥

दो०—कन्द मूल फल सरस अति, दिये राम कहँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खायेउ, *बारहिं बार बखानि॥३६॥

अर्थ—शबरी ने बहुत रसीले कन्दमूल फल आदि श्री रामचंद्र जी को लाकर दिये तब भगवान् बारम्बार उनके स्वाद की बड़ाई करते हुए उन्हें प्रीति पूर्वक पागये॥

चौ०—पाणि जोरि आगे भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति उर बाढ़ी॥
केहि विधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधमजाति मैं जड़मति भारी॥

अर्थ—हाथ जोड़ कर साम्हने खड़ी हुई और भगवान् को देख कर उस के हृदय का प्रेम उमड़ उठा। तो कहने लगी मैं आप की बड़ाई कैसे करूं, काहे से कि एक तो मैं नीच जाति की हूं और दूसरे बज्र मूर्ख हूं॥

चौ०—अधम ते अधम अधमअति नारी। तिनमहँ मैं मतिमंद गँवारी॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। †मानउँ एक भक्ति कर नाता॥

अर्थ—स्त्री जाति बहुत ही नीच समझी जाती है उन में से मैं अति ही मूर्ख और ज्ञानहीन हूं। श्री रामचंद्र जी बोले हे भामिनी! मेरा कहना सुनो, मैं केवल भक्ति का नाता मानता हूं॥

आजानु लंबिनीमाला सर्वतु कुसुमोज्वला। मध्ये स्थूल कदंबाढ्या बनमालेति कीर्त्तिता॥
भावार्थ, दोहा—पारिजात तुलसी कमल, कुन्दादिक युत होय।
कदम मेरु आजानु जो, है बनमाला सोय॥

* बारहिं बार बखानि—

दो०—शबरी सुन रघुबर बचन, हिय फूली न समाय।
धाय धाय के छिनहि छिन, देत मधुर फल लाय॥

बेर बेर बेर ले सराहैं बेर बेर बहु, "रसिकबिहारी" देत बंधु कहँ फेर फेर।
चाखि चाखि भाखैं यह वाही ते महान मीठो, लेहु तौ लखन यों बखानत हैं हेर हेर।
बेर बेर देवै बेर शबरी सुबेर बेर, तोऊ रघुबीर बेर बेर तेहि टेर टेर।
बेर जनि लावो बेर बेर जनि लावो बेर, बेर जनि लावो बेर लावो कहैं बेर बेर॥१॥
ब्रह्म के उपासी तपरासी बनवासी वर, विपुल मुनीशन के आश्रम सिधायो मैं।
कीन्हें सनमान तिन्ह सहित विधान तऊ, काहू ठौर पेटभर कबहूं न खायो मैं।
अमृत समान शबरी के इन बेरन में, "रसिक बिहारी" मन भायो स्वाद पायो मैं।
अवध बिहाय बन आयो जब तें हौं बंधु, तब ते बिचारो सत्य आज ही अघायो मैं॥२॥

† मानउँ एक भक्ति कर नाता—श्रीमद्भागवद्गीता अ० ९ श्लोक ३२:—

मांहि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपिस्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परांगतिं॥

अर्थात् श्री कृष्ण जी बोले, हे अर्जुन हमारा आश्रय लेनेवाले पापी प्राणी, स्त्री, व्यवसाय करने वाले और शूद्र भी उत्तम गति को पाते हैं॥

चौ०—*जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुण चतुराई ॥
भक्ति हीन नर सोहहि कैसे । बिन जल वारिद देखिय जैसे ॥

अर्थ— जाति, कुल और धर्म की श्रेष्ठता तथा द्रव्य, बल, नातेदार, गुण और बुद्धियुक्त भी मनुष्य, यदि भक्तिहीन हो तो शोभा को नहीं पाता, जैसे बिना पानी के मेघ ॥

चौ०—नवधा भक्ति कहउँ तोहि पाहीं । सावधान सुन धरु मन माहीं ॥
प्रथम भक्ति संतन कर संगा । दूसरि रत मम कथाप्रसंगा ॥

अर्थ—नौ प्रकार की भक्ति मैं तुम से कहता हूं सो चित्त दे के सुनो और उसे स्मरण भी रक्खो । पहिली भक्ति "सज्जनों की संगति" है, दूसरी "मेरे चरणों में दत्तचित्त होना है"

दो०—गुरु-पद-पंकज-सेवा, तीसरि भक्ति अमान ।
चौथि भक्ति मम गुन-गन, करै कपट तजि गान ॥ ३७ ॥

अर्थ—तीसरी भक्ति अहंकार त्याग "गुरु के चरणकमलों की सेवा" और चौथी भक्ति छल छोड़ "मेरे गुणों का वर्णन करना" है ॥

चौ०—मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकासा ॥
षट दम शील विरति बहु कर्मा । निरत निरन्तर सज्जन धर्मा ॥

अर्थ—वेद में कहा गया है कि परमेश्वर में अचल प्रेम रख " मंत्र जपना " यह पांचवीं भक्ति है । छठवीं, नाना जंजाल छोड़ इन्द्रियों को वश में कर सदैव " सत्कर्मों में तत्पर रहना " ॥

चौ०—सप्तम सब मोहि मय जग देखैं । मो ते संत अधिक करि लेखैं ॥
अष्टम यथा लाभ संतोषा । सपनेहुँ नहिं देखै परदोषा ॥

* जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई :—

राग सारंग—कह्यो शुक श्री भागवत विचार ।
जाति पाँत कोउ पूछत नाहीं श्री पति के दरबार ॥
श्री भगवत सुमिरै जो हित कर तरै सो भव जल पार ।
सूर श्याम गुणरट निशि बासर राम नाम निज सार ॥

अर्थ—सातवीं, संतों को गुरु से भी श्रेष्ठ समझ "संसार को ईश्वर व्याप्त समझना", आठवीं भूल के भी पर अवगुण न देख जो कुछ मिल जावे उसी में "संतोष" करना ॥

चौ०—नवम*सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हर्ष न दीना ॥

अर्थ—सब से कपट रहित हो, सादा वर्त्ताव रख कर न तो सुख में आनन्द और न संकट में दुःख मनाते हुए केवल "राम भरोसे रहना" नवीं भक्ति है ॥

चौ०—नव महँ जिन के एकौ होई। नारि पुरुष सचराचर कोई ॥
सोइ अतिशय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे॥

अर्थ—हे भामिनी! इन नौ प्रकार की भक्तियों में से जिस किसी में एक भी हो सो भक्त, चाहे स्त्री हो व पुरुष, चर हो व अचर; मुझे बड़ा ही प्यारा लगता है, तुम्हारी भक्ति तो सब प्रकार अटल है ॥

चौ०—योगि-वृन्द-दुर्लभ गति जोई। तो कहँ आज सुलभ भइ सोई ॥
***मम दर्शनफल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा ॥**

अर्थ—जो शुभगति योगियों को भी मिलना कठिन है वह आज तुम को सहज ही मिल गई। मेरे दर्शनों का फल बहुत ही अनोखा है, इस से जीव अपने निज स्वरूप को पहिचान लेता है॥

---

* तुलसीदास जी यहाँ अन्तिम अर्थात् नवीं भक्ति में यह उत्तम लक्षण लखाते हैं जो रामचन्द्र जी ने स्वतः अपने आचरण से सिद्ध कर दिखाया है और जिस का वर्णन अयोध्याकाण्ड के आरम्भीय दूसरे श्लोक में गोसाईं जी ने "प्रसन्नतां या न गता भिषेकतः" इत्यादि से भली भाँति सूचित किया है, उसी शिक्षा को प्रत्येक पुरुष परमउपयोगी समझ "मुरारीदान" कवि के इसी आशय की कविता को कण्ठकर उसका अनुसरन करने का प्रयत्न करें तो उत्तम है। यथा :—

दो०—आमंत्रिय अभिषेक को, बनहिं बिसर्जन कीन्ह।
देख्यो मैं वह राम जो, भिन्नाकार न लीन्ह ॥

* मम दर्शनफल परम अनूपा के बाद का क्षेपक—

दो०—सब प्रकार तव भाग बड़, मम चरणन्ह अनुराग।
तव महिमा जेहि उर बसिहि, तासु परम बड़ भाग॥

अर्थ—मेरे चरणों में प्रीति करने के कारण तुम बड़ी भाग्यवती हो, यह तुम्हारी महिमा जिस के हृदय में रहेगी वह और भी भाग्यशाली होगा ॥

चौ०—*जनकसुता कै सुधि कहु भामिनि। जानहु कछु जो करिवरगामिनि
पंपासरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव† मिताई॥

अर्थ—हे भामिनी! गजगामिनी जनक-दुलारी का पता यदि कुछ जानती हो तो कहो। हे रामचन्द्र जी! आप पंपानाम के तालाब पर जाइये, वहां आप की मित्रता सुग्रीव के साथ होगी॥

चौ०—सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानत हू पूछत मति-धीरा॥
बार बार प्रभु-पद शिर नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई॥

अर्थ—हे ज्ञानवान रामचन्द्र जी! वह आप को सब समाचार सुनावेगा, आप जानते तो हैं पर फिर भी पूछते हैं। फिर अनेक बार दण्डवत् प्रणाम कर गद्‌गद वाणी से शबरी ने अपनी पुरानी कथा कह सुनाई॥

क्षे०— बचन सुनत शबरी हरषाई। पुनि बोले प्रभु गिरा सुहाई॥

अर्थ—शबरी रामचन्द्र जी का भाषण सुन प्रसन्न हुई, फिर भी रामचन्द्र जी सुहावने बचन कहने लगे।

* जनक सुता की सुधि कहु भामिनि के पश्चात् का क्षेपक—

क्षे० पंपासरहिं जाहु रघुराई। मुनिवर विपुल रहे जहँ छाई॥
ऋषि मतंग महिमा गुण भारी। जीव चराचर रहत सुखारी॥

अर्थ—हे रामचन्द्र जी! आप पंपासर को जाइये, वहां पर बहुत से श्रेष्ठ मुनि निवास करते हैं। (उस स्थान पर) महात्मा मतंग मुनि की महान् महिमा के प्रभाव से सब चराचर जीव आनंद से रहते हैं॥

क्षे० बैर न कर काहू सन कोई। जा सन बैर प्रीति करु सोई॥
शिखर सुहावन कानन फूले। खग मृग जीव जन्तु अनुकूले॥

अर्थ—कोई भी प्राणी किसी से बैर नहीं करता, यहां तक कि जो स्वभाव ही से बैरी हैं वे भी हिल मिल कर रहते हैं। वहां पर मन भावन पर्वत शिखर हैं, बन के वृक्ष आदि फूल रहे हैं और पशु, पक्षी कृमि कीटादि सब प्रसन्न हैं॥

क्षे० करहु सफल श्रम सब कर जाई। तहां होइ सुग्रीव मिताई॥

अर्थ—उस स्थल के सकल निवासियों का परिश्रम सफल कीजिये अर्थात् अपने दर्शनों से उन की मन-कामना पूर्ण कीजिये, वहीं पर आप की मित्रता सुग्रीव से होगी।

† "सुग्रीव" का जीवन चरित्र किष्किन्धा कांड में देखो।

छं०–कहि कथा सकल विलोकि हरिमुख हृदय पदपंकज धरे।
तजि योगपावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहिं फिरे॥
नर विविध कर्म अधर्म बहु मत शोकप्रद सब त्यागहू।
विश्वास करि कह दास तुलसी रामपद* अनुरागहू॥

अर्थ—सब कथा सुनाय वह प्रभु के मुख को निहारने लगी, फिर उन के कमल-स्वरूपी चरणों का हृदय से ध्यान कर, योगाग्निद्वारा शरीर त्याग, परमेश्वर के चरणों में लीन हो गई; जिस स्थान को प्राप्त हो जीव फिर जन्म नहीं लेता। तुलसीदास जी कहते हैं, हे मनुष्यो! तुम नाना प्रकार के पाप कर्मों को छोड़ो और दुखदाई मत मतान्तर के झगड़ों को त्याग, राम का भरोसा रख, उन्हीं के चरणों में चित्त लगाओ॥

दो०–जातिहीन अघ जन्म महि, मुक्त कीन्हि अस नारि।
महा-मन्द-मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि॥ ३८॥

अर्थ—पृथ्वी पर जाति में नीच, पाप की पिटारी ऐसी नारी को जिन्हों ने उद्धारी, ऐसे अवध-बिहारी को बिसारि, रे अनारी मन तू सुख चाहता है?

चौ०–चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित-बल नरकेहरि दोऊ॥
विरही इव प्रभु करत विषादा। कहत कथा अनेक सम्वादा॥

अर्थ—रामचन्द्र जी उस बन को छोड़ आगे बढ़े, दोनों भाई मनुष्यों में सिंह समान पराक्रमी थे। रामचन्द्र जी विरह की व्यथा को साधारण मनुष्यों की नाईं दरशाते थे और वियोगियों की अनेक कथाएँ तथा प्रसंग कहते जाते थे॥

---

* श्रीमद्भगवद्गीता में श्री कृष्ण जी के वचन तो देखिये :—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः॥

अर्थात् हे अर्जुन! सर्व धर्मादिकों को छोड़ तुम केवल मेरी शरण गहो, मैं तुम्हें सब पापों से छुड़ाऊंगा, सोच मत करो॥

चौ०—लछिमन देखहु कानन शोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा ॥
*नारि सहित सब खग-मृग-वृन्दा। मानहुँ मोरि करत हैं निन्दा ॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! इस बन का सौन्दर्य देखो, ऐसा कौन होगा ! जिस का मन इसे देख डांवाडोल न हो जाय । सम्पूर्ण पशु—पक्षी के समूह अपने अपने जोड़े सहित रहकर मानो मेरा निरादर करते हैं ॥

चौ०—हमहिं देखि मृगनिकर पराहीं । मृगी कहहिं तुम कहँ भय नाहीं ॥
तुम आनन्द करहु मृगजाये। कंचनमृग खोजन ये आये ॥
संग लाइ करिनी करि लेहीं । मानहुँ मोहि सिखावन देहीं ॥

अर्थ—मुझे देख कर ज्यों ही मृगगण भागने लगते हैं तो हरिणियां कहती हैं तुम मत डरो । हे मृगपुत्रो ! तुम चैन से विचरो, ये तो सुवर्णमृग की खोज में निकले हैं। हाथी भी जो हथिनियों को साथ लिये फिरते हैं सो मानो मुझे शिक्षा देते हैं (कि तुम अपनी स्त्री को अपने साथ हमारी ही नाईं क्यों न लिये रहे, जिस से ऐसा विरह दुःख न भोगना पड़ता) ॥

चौ०—शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय। भूप सुसेवित वश नहिं लेखिय ॥
राखिय नारि यदपि उर माहीं । युवती शास्त्र नृपति वश नाहीं ॥

अर्थ—शास्त्र के ग्रन्थों को भलीभाँति चिन्तन और बारम्बार अवलोकन करने पर भी, राजा को उत्तम रीति से सेवा करते रहने पर भी, अपने स्वाधीन न समझना चाहिये और स्त्री को तो चाहे हृदय से क्यों न लगाये रहो तौ भी, स्त्री, शास्त्र और राजा इन तीनों को अपने वश के न समझना चाहिये ॥

---

* नारि सहित सब खग मृग वृन्दा । मानहुँ मोरि करत हैं निन्दा ॥

संसार में सदैव साथ रहने वाली सुन्दर स्त्री पुरुष की जोड़ी के सदृश उदाहरणीय सारस ही की जोड़ी कही गई है । जैसे :—

सवैया—डोलत हैं इक संग खरे इक संग हि बोलत हैं मनभायक ।
दूसरि बात न जानत ये निशि-वासर संग रहैं सुखदायक ।
कौन समान करे इन की गनिये इनहूं को सदा खगनायक ।
देखि परे खगराजन में इक सारस सांचे सिपारस लायक ॥

चौ०—देखहु तात वसन्त सुहावा। प्रियाहीन मोहि भय उपजावा॥

अर्थ—हे भाई! इस सुहावनी वसन्त ऋतु को देखो, परन्तु कामिनी विहीन मुझे यह डरावनी लगती है॥

दो०—विरह बिकल बलहीन मोहि, जानेसि निपट अकेल।
सहित विपिन मधुकर खगन्ह, मदन कीन्हि बगमेल॥

अर्थ—कामदेव ने मुझे विरह से व्याकुल, अतएव निर्बल और बिलकुल अकेला जान, बन, भौंरे और पक्षियों की सहायता ले मुझ पर धावा किया है॥

दो०—देखि गये* भ्राता सहित, तासु दूत सुनि बात।
डेरा दीन्हेउ मनहुँ तब, कटक हटकि मनजात॥ ३६॥

अन्वय—तासु, दूत बात, भ्राता सहित देखि गयें (यह) सुनि तब मनजात मनहुँ कटक हटकि डेरा दीन्हेउ॥

अर्थ—कामदेव के दूत (त्रिविध) पवन, मुझे अपने भाई के साथ देख गये; (उनके द्वारा) समाचार सुना, तब तो मनजात अर्थात् कामदेव ने अपनी सेना को आगे बढ़ने से रोक, मानो डेरा डाल दिया है॥

सूचना—कामदेव की कल्पित सेना का वर्णन वसन्त सहित उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा उत्तम रीति से नीचे की पंक्तियों में किया गया है॥

चौ०—विटप विशाल लता अरुझानी। विविध वितान दिये जनु तानी॥
कदलि तालवर ध्वजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥

अर्थ—बड़े ऊंचे वृक्ष, छाई हुई बेलों सहित ऐसे जान पड़ते थे कि मानो अनेक तंबू तने हों। केला के पेड़ झंडे के समान और ताड़ वृक्ष उत्तम पताके से भासते थे; इन्हें देखकर जिस का मन मोहित न होवे उसी को धैर्यवान् समझना चाहिये॥

---

* देखि गये भ्राता सहित—इस पर यह शंका हो सकी है कि कामदेव ने पहिले तो रामचन्द्र जी को अकेला समझ उन पर चढ़ाई करने का विचार किया था, परन्तु जब उस के दूत पवन उन्हें लक्ष्मण जी के साथ देख गये तब उस ने चढ़ाई क्यों न की? उस का समाधान यही है कि सामर्थ्यवान् तो तिनका ही की सहायता से कार्य सिद्ध कर सके हैं परन्तु जब उन्हें हाथ पांव से बलवान् मनुष्य की सहायता मिले तब तो उनका कार्य अवश्य ही सिद्ध होता है। यह समझ कर कामदेव डर गया, देखो 'सींक धनुष शायक संधाना' की टि० पृष्ठ ७

चौ०—विविध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना ॥
कहुँ कहुँ सुन्दर विटप सुहाये। जनु भट बिलग बिलग हुइ छाये ॥

अर्थ—अनेक वृक्षों में जो रंग बिरंगे के फूल फूले थे, सो ऐसे समझ पड़ते थे मानो हथियारबन्द सिपाही अपने अपने हथियार लिये खड़े हों। कहीं कहीं जो विरले पेड़ सुन्दर और सुहावने थे, सो ऐसे दीख पड़ते थे मानो कोई कोई योद्धा सेना से दूर जा टिके हों ॥

चौ०—कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक* महोख ऊँट बिसराते ॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी ॥

अर्थ—कोकिलाओं की कूकें मस्त हाथियों की चिंघाड़ सदृश थीं, ढेक, महोख मानो ऊँट और खच्चर थे। मोर, चकोर और सुआ ये मानो उत्तम घोड़े थे और कबूतर व हंस ये सब के सब मानो कोतल घोड़ों के स्थान में थे ॥

चौ०—तीतर लावा पदचर यूथा। बरनि न जाइ मनोजबरूथा ॥
रथ गिरिशिला दुन्दुभी झरना। चातक वन्दी गुणगण बरना ॥

अर्थ—तीतर और लवा पक्षी ये पैदल सेना के ज्वान थे; इस प्रकार कामदेव की सेना का वर्णन कहां तक करैं। पर्वतों से टूटी हुई चट्टानें रथों के समान थीं, झरनों का शब्द मानो नगाड़े पर चोब थी और पपीहा पक्षी तो मानो चारण हो चाव चढ़ाता था ॥

चौ०—मधुकर-मुखर भेरि सहनाई। त्रिविध बयारि बसीठी आई ॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें। विचरत सबहिं चुनौती दीन्हें ॥

अर्थ—भौंरों की गुंजार मानो तुरही का काम देती थी और तीनों प्रकार के पवन (अर्थात् शीतल, मंद, सुगंधित) मानो दूत-कर्म करते थे। (कामदेव) ऐसी चार अंग वाली सेना (अर्थात् वह सेना जिस में हाथी, घोड़े, रथ और पैदल थे) साथ में लिये हुए यहां वहां डोलता मानो यह कहरहा था कि देखूँ मुझसे कौन भिड़ता है ?

* ढेक—सारस के समान लम्बी गर्दन और लम्बी टांगों वाला पक्षी है। महोख—एक पक्षी जो रंगरूप में कोयल के समान, परन्तु पूँछ बड़ी होने के कारण कदाचित् खच्चर समान समझा गया है; मोर—कुम्मेत घोड़ा; चकोर—सुर्खा; कीर—सब्जा; पारावत और मराल प्रायः पृथ्वी पर ठसक के साथ चलने के कारण तुर्की या कोतल घोड़े के समान हैं; तीतर, लावा, पंख वाले होने पर भी प्रायः पृथ्वी पर पांव पांव अधिक चलने के कारण पैदल सिपाही समझे गये, चातक—इस की रटन मानो सेनापति की प्रशंसा भाटों या नकीबों द्वारा हो रही है। त्रिविध बयार की सुरसुराहट मानो गुप्त काना-फूसी करते हुए दूतवचन हैं ॥

चौ०—लछिमन देखत कामअनीका । *रहहिं धीर जिन कै जग लीका ॥
†इहि के एक परमबल नारी । तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी ॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! ऐसी कामदेव की सेना देखते ही जिस का चित्त चलायमान न हो उस की संसार में साख है । इस की बड़ी भारी शक्ति केवल स्त्री ही है इस से जो बच सके वही बड़ा योद्धा है ॥

दो०—तात तीनि अतिप्रबल खल, ‡काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि विज्ञाननिधान मन, करहिं निमिष महँ छोभ ॥

अर्थ—हे भाई ! ये तीन बड़े भारी दुष्ट हैं (अर्थात्) काम, क्रोध, और लोभ; ये बड़े बड़े ज्ञानी मुनियों के मन को पलमात्र में मोह लेते हैं ॥

दो०—लोभ के इच्छा दम्भ बल, *काम के केवल नारि ।
क्रोध के परुषवचन बल, मुनिवर कहहिं बिचारि ॥ ४० ॥

---

* रहहिं धीर जिन कै जग लीका—कहा है कालिदास जी ने कुमार संभव में—

"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते । येषां न चेतांसि त एव धीराः" ॥

अर्थात् चित्त चलायमान होने के अनेक कारण उपस्थित होने पर भी जो चलचित्त नहीं होते वही धीर पुरुष कहलाते हैं ॥

† "इहि के एक परम बल नारी"—काम अथवा कामदेव विशेषकर स्त्री द्वारा ही सब प्राणियों के (तथा कभी कभी योगी और तपस्वियों के भी) चित्त को चलायमान करता है अर्थात् स्त्री की (१) चाल में "आकर्षण" (२) चितवन में "उच्चाटन" (३) हँसन में "सम्मोहन" (४) बोलन में "वशीकरण" और (५) प्रेम में "मारण" शक्ति रहती है, इसीहेतु कामदेव के पंचबाणों का प्रभाव ऐसा कहा है—

सम्मोहनोन्मादनौच शोषणस्तापनस्तथा ।
स्तंभनश्चेति कामस्य पंचबाणाः प्रकीर्त्तिताः ॥

‡ काम क्रोध अरु लोभ—

श्री भगवद्गीता में यों लिखा है:—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

अर्थ—मनुष्य का नाश करने वाले नरक के तीन द्वार हैं अर्थात् काम, क्रोध और लोभ; इसहेतु इन तीनों को त्यागना चाहिये ॥

* काम के केवल नारि—स्त्री के हाव भाव और कटाक्ष की तो कहे कौन, उसके केवल समीप ही रहने से काम का उद्दीपन होता है । देखो, शिव जी भी कामदेव को जलाने के पश्चात् पार्वती को जो उस समय उनकी पूजा करने को आई थीं समीप रखना उचित न समझ उस स्थान से चले गये थे । जैसा कुमार संभव में कहा है—

स्त्री सन्निकर्षं परिहर्तुमिच्छन्नन्तर्दधे भूतपतिः सभूतः (३-७४)

अर्थात् उस समय स्त्री के पास ठहरना अयोग्य समझ शिव जी भी अपने गणों समेत अंतर्ध्यान होगये.

अर्थ—लोभ का सामर्थ्य, इच्छा और पाखंड में है, काम का बल केवल कामिनी है और क्रोध का बल दुष्ट वचन है, ऐसा श्रेष्ठ मुनि विचार के कह गये हैं, (अर्थात् इच्छा उठते ही ऊपरी पाखंडी दिखावे से भुलाकर लोग द्रव्यादि की प्राप्ति करते हैं यही लोभ सिद्धि है, स्त्री का सान्निध्य ही विशेष कर कामोद्दीपन करता है और कुवचनों से क्रोध बढ़ता है) ।

चौ०-गुनातीत सचराचर-स्वामी । राम उमा सब अंतरयामी ॥
कामिन की दीनता दिखाई । धीरन के मन विरति दृढ़ाई ॥

अर्थ—हे पार्वती ! गुणों से परे स्थिर और चलते हुए जीवों के प्रभु श्री रामचन्द्र जी तो घट-घट की जानने वाले हैं । उन्हों ने (अपने विरह-विलाप से) कामी-पुरुषों की दुर्दशा का नमूना दिखाया है और धैर्यवानों के चित्त में विराग बढ़ाया है ।

चौ०-क्रोध मनोज लोभ मद माया । छूटहिं सकल राम की दाया ॥
सो नर इन्द्रजाल नहिं भूला । जापर होइ सो नट अनुकूला ॥

अर्थ—क्रोध, कामना, लोभ, अहंकार और माया ये सब श्री रामचंद्र जी की कृपा से छूट जाते हैं । देखो वह मनुष्य बाज़ीगर के झूठे कर्तव्यों को देख धोखा नहीं खाता, जिस पर बाज़ीगर प्रसन्न हो जाता है, (अर्थात् जिसे बाजीगर अपना भेद बता देता है वह उस के इन्द्रजाली झूठे खेलों को सत्य नहीं समझता है, इसी प्रकार परमेश्वर के भक्त उन्हीं की कृपा से जगत् के मायाजाल में नहीं फँसते) ॥

चौ०-उमा कहउँ मैं अनुभव अपना । हरि को भजन सत्य जग सपना ॥
पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा । पम्पा नाम सुभग गम्भीरा ॥

अर्थ—हे भवानी ! मैंने जो स्वतः अभ्यास करके सिद्धान्त कर लिया है, वही मैं तुम्हें सुनाये देता हूं कि भगवान् का भजन सार है और भरमजार है (जेसा किसी कवि का कथन है—

साँचे श्री सीतारमण, झूठो यह संसार ।
बाज़ीगर को पेखनो, मिटत न लागत बार ॥

फिर श्री रामचन्द्र जी पंपा नामक तालाब के किनारे गये जो बहुत सुन्दर और गहरा था ॥

चौ०–संतहृदय जस निर्मल वारी। बाँधे घाट मनोहर चारी ॥
जहँ तहँ पियहिं विविध मृग नीरा। जनु उदारगृह याचकभीरा ॥

अर्थ—उसका जल ऐसा स्वच्छ था जैसे सज्जनों का हृदय, और उस के चारों ओर उत्तम घाट बने थे। उस में जहां तहां अनेक पशु, पक्षी पानी पी रहे थे मानो दाता के द्वार पर भिखारियों की भीड़ हो ॥

दो०–पुरइनि* सघन ओट जल, वेगि न पाइय मर्म ।
मायाछन्न न देखिये, जैसे निर्गुण ब्रह्म ॥

अर्थ—घनी पुरैन के नीचे भरा हुआ पानी जल्दी से दिखाई नहीं देता. जिस प्रकार जगत व्याप्त परमात्मा भी मायाजाल के कारण शीघ्र नहीं समझ पड़ता है ॥

दो०–सुखी मीन सब एकरस, अतिअगाध जल माहिं ।
यथा धर्मशीलन्ह के, दिन सुखसंयुत जाहिं ॥४१॥

अर्थ—अधिक गहरे जल में मछलियां निरन्तर सुख-चैन से रहती हैं जिस प्रकार धर्मात्मा प्राणियों के दिन सदा आनंद से बीतते हैं ॥

चौ०–विकसे सरसिज नाना रंगा । मधुर सुखद गुंजत बहु भृंगा ॥
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रशंसा ॥

अर्थ—सरोवर में अनेक रंग के कमल फूल रहे थे, जिन पर आनंदकारी भौंरे मधुर ध्वनि से गुंजार रहे थे। उस में जलमुर्गियां और सुन्दर हंस बोल रहे थे मानो वे श्री रामचन्द्र जी को देख, उन की बड़ाई करते हों ॥

---

* पुरइनि—महर्षियों और महात्माओं ने अनुभव से यह सिद्ध कर कहा है कि जगत् में जहां देखो तहां परमात्मा व्याप्त है, परन्तु बिना पूर्ण ज्ञान के उनका साक्षात्कार कठिनाई से होता है उसकी सिद्धि के लिये उत्तम उदाहरण पुरैन और जल का है अर्थात् पुरैन की उत्पत्ति स्थिति और लय पानी ही में है परन्तु वही पानी पुरैन की ओट में छिपा रहता है और पुरैन के दूर करने से दिखाई देने लगता है, इसी प्रकार जगत् की उत्पत्ति स्थिति और लय ब्रह्म में है परन्तु सतगुरु के उपदेश से जगत् मिथ्या ज्ञात होने पर ठीक ठीक ब्रह्मज्ञान होता है। यही बात दूसरी रीति से नीचे के दोहे में दरशाई गई है —

तुलसी मूरति राम की, घट घट रही समाय ।
ज्यों मेंहदी के पात में, लाली लखी न जाय ॥

चौ०—चक्रवाक—बक—खग—समुदाई । देखत बनै बरनि नहिं जाई ॥
सुन्दर खग—गण गिरा सुहाई । जात पथिक जनु लेत बुलाई ॥

अर्थ—चकई चकवा, बकुला आदि पक्षियों के झुण्ड देखते ही बनते थे वर्णन नहीं किये जा सक्ते थे। उत्तम पक्षियों के शब्द ऐसे सुहावने लगते थे कि वे मानो जाते हुए बटोहियों को बुला रहे हों ॥

चौ०—तालसमीप मुनिन्ह गृह छाये । चहुँदिशि कानन विटप सुहाये ॥
चम्पक बकुल कदम्ब तमाला । पाटल पनस पलास रसाला ॥

अर्थ—सरोवर के निकट मुनियों के आश्रम बने हुए थे, जिन के चारों ओर बन वृक्ष लगे थे अर्थात् चम्पा, बकौली, कदम्ब, आबनूस, पानड़ी, कटहर, छेवला और आम के पेड़ ॥

चौ०—नवपल्लव कुसुमित तरु नाना । चंचरीकपटली कर गाना ॥
शीतल मंद सुगंध सुभाऊ । सन्तत बहइ मनोहर बाऊ ॥

अर्थ—अनेक वृक्षों में नवीन पत्ते फूट रहे थे और बहुतेरों में फूल फूल रहे थे, जिन के ऊपर भौंरों की पंक्तियां भन्ना रही थीं। ठण्डी, धीमी, सुवासित, सुहावनी और मनमोहनी वायु सदा बहती थी ॥

चौ०—कुहू कुहू कोकिल ध्वनि करहीं । सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं ॥

अर्थ—कोयलिया "कुऊ कुऊ" इस प्रकार से कूक रही थी, जिस रसीले शब्द को सुन मुनियों के ध्यान छूट जाते हैं ॥

दो०—फल* भर नम्र विटप सब, रहे भूमि नियराय ।
परउपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसम्पति पाय ॥४२॥

अर्थ—फलों से लदे हुए वृक्ष झूम झूम कर मानो पृथ्वी को चूमना चाहते थे। जिस प्रकार दूसरों का हित करने वाले पुरुष सम्पत्ति पाकर नम्र होते हैं ॥

---

* इसी आशय की भर्तृहरि कृत कविता देखिये—(नीतिशतक)
भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवांबु भिर्भूरि बिलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥७१॥
अर्थात् फलों के भार से वृक्ष झुक जाते हैं, मेघ अधिक जल से भूमि पर झूम आते हैं और सज्जन सम्पति पाकर ऊंचे होकर नहीं चलते किन्तु नवते हैं, परोपकारी

चौ०—देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जन कीन्ह परम सुख पावा॥
देखी सुन्दर तरुवर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया॥

अर्थ—रामचन्द्र जी ने उस मनभावने सरोवर को देख उस में स्नान किया और वे बड़े आनन्द को प्राप्त हुए। फिर एक बड़े वृक्ष की सघन छाया देख रामचन्द्र जी लक्ष्मण जी सहित वहाँ जा बैठे॥

चौ०—तहँ पुनि सकल देव मुनि आये। अस्तुतिकरि निजधाम सिधाये॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला॥

अर्थ—यहाँ पर देव मुनिगण पधारे और श्री रामचन्द्र जी की स्तुति कर अपने अपने स्थान को सिधारे। कृपालु रामचन्द्रजी आनन्द से बैठे हुए अपने भाई से उत्तम कथा प्रसंग छेड़ रहे थे॥

चौ०—विरहवंत भगवन्तहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेखी॥
*मोर शाप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा॥

अर्थ—रामचन्द्र जी को विरह से व्याकुल जान नारद के हृदय में बड़ा सोच हुआ कि मेरे दिये हुए शाप के कारण रामचन्द्र जी नाना प्रकार के भारी दुःख सह रहे हैं॥

चौ०—ऐसे प्रभुहि बिलोकौं जाई। पुनि न बनिहि अस अवसर आई॥
यह बिचारि नारद कर बीना। गये जहां प्रभु‡ सुखआसीना॥

पुरुषों का ऐसा ही स्वभाव होता है॥

* "मोर शाप करि अंगीकारा"—किसी समय नारद मुनि गंगा के किनारे घोर तप कर रहे थे। इन्द्र शंकित हुए कि ये हमारा राज्य न छीन लेवें। तप भंग करने का कार्य्य कामदेव को सौंपा गया। मुनि जी चलचित्त न हुए। काम को लज्जित हो लौटना पड़ा। इस निज कर्तव्य से मुनि को अहंकार हुआ। इन्हों ने हरि से कहा मैं कामजित हूँ। विष्णु जी ने मुनि गर्व मिटाने को मायाकृत स्वयंवर रचा। अति रूपवती स्वयंवर करने वाली कन्या पर नारद मोहित हो गये। इन्हों ने विवाह निमित्त ईश्वर से उत्तम रूप मांगा। हरि ने इन्हें मर्कटमुखी बना दिया और आप नृप रूप धर राजकन्या को ले गये। इस प्रकार हताश नारदने हरि को शाप दिया कि तुम ने नृप रूप धर मुझे स्त्री से वंचित रक्खा सो यही नृप रूप धारण कर तुम भी स्त्री विरह भोगोगे, मुझे मर्कटमुखी बनाया सो मर्कट तुम्हारी सहायता करेंगे। (सविस्तर कथा बालकाण्ड रामायण में देखो)

‡ "सुख आसीना"—यहां यह शंका होती है कि रामचन्द्र जी सीता जी के विरह से व्याकुल होने पर सुख से कैसे बैठे? इसका समाधान यह है कि महामुनि मतंग के माहात्म्य का प्रभाव पंपासर के समीप ऐसा ही था कि वहां जाने से कोई जीवधारी दुखी नहीं रह सका था। दूसरा कारण यह है कि परमात्मा तो सदा सुख रूप है और यह तो वे केवल नरलीला का दिखावा दिखा रहे थे॥

अर्थ—ऐसे भगवान के दर्शन लेना चाहिये फिर ऐसी उत्तम संधि न मिलेगी। यह विचार कर नारद मुनि हाथ में बीन बाजा ले वहां गये जहां रामचन्द्र जी सुखपूर्वक बैठे थे ॥

चौ०—गावत रामचरित मृदुबानी। प्रेमसहित बहु भाँति बखानी ॥
करत दण्डवत लिये उठाई। राखे बड़ी बार उर लाई ॥
स्वागत पूछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरण पखारे ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के चरित्रों को प्रीतिपूर्वक मधुर वाणी में नाना प्रकार से गाते हुए आये। ज्यों ही नारद मुनि ने प्रभु को प्रणाम किया त्यों ही उन्हों ने इन्हें उठाकर कुछ समय तक अपने हृदय से लगा लिया।

अर्थ—दूसरे प्रकार से-प्रभु के प्रणाम करते ही नारद मुनि ने उन्हें उठाकर अपने हृदय से लगा लिया। फिर उन से कुशल प्रश्न कर उन्हें अपने पास बैठा लिया और लक्ष्मण जी ने आदरपूर्वक उनके चरण धोये ॥

दो०—नाना विधि विनती करि, प्रभु प्रसन्न जिय जानि।
नारद बोले वचन तब, जोरि सरोरुहपानि ॥ ४२ ॥

अर्थ—नारद जी ने कई प्रकार से विनय की और श्री रामचन्द्र जी को प्रसन्न-चित्त समझ कमलस्वरूपी हाथ जोड़ कर वचन कहे ॥

चौ०—सुनहु उदार परम रघुनायक। सुन्दर अगम सुगम वरदायक ॥
देहु एक वर माँगउँ स्वामी। यद्यपि जानत अन्तरयामी ॥

अर्थ—हे अति दानशील श्री रामचन्द्र जी सुनिये ! आप सुन्दर, कठिन और सहज, सब प्रकार के वरदान देने वाले हो। हे स्वामी ! आप हृदय की जानने वाले हो, सो जानते ही हो, तो भी मैं एक वरदान मांगता हूं सो दीजिये ॥

चौ०—जानहु मुनि तुम मोर स्वभाऊ। जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ ॥
कवन वस्तु अस मोहि प्रिय लागी। जो मुनिवर न सकहु तुम माँगी ॥

अर्थ—हे मुनि जी ! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो, मैं क्या कभी भक्तों से कुछ छिपाता हूं ? ऐसा कौन सा पदार्थ मुझे प्यारा है, जिसे हे मुनिश्रेष्ठ तुम मांग नहीं सक्ते ?

चौ०—जन कहँ कछु अदेय नहिं मोरे। अस विश्वास तजहु जनि भोरे ॥
तब नारद बोले हरषाई। अस वर माँगउँ करउँ ढिठाई ॥

सुखपूर्वक बैठे थे ॥

चौ०—गावत रामचरित मृदुबानी । प्रेमसहित बहु भाँति बखा[नी]

करत दण्डवत लिये उठाई । ... बड़ो बार उर ला[ई]

स्व... ...आदर चरण पखा[रे]

अर्थ— ...र वाणी में नाना प्र...

से गाते ... किया त्यों ही उन्हें

इन्हें उठा...

अर्थ— ...द मुनि ने उन्हें उठा...

अपने हृद... ...र उन्हें अपने पास ...

लिया औ...

दो०— ... ...प जानि ।

...रूपानि ॥ ४३ ॥

अर्थ— ...रामचन्द्र जी को प्रस...

चित्त सम्भ...

चौ०—सुन... ...सुगम वरदायक

देहु ... ...अन्तरयामी ॥

अर्थ— ...सुन्दर, कठिन औ...

सहज, सब प्र... ...आप हृदय की जान...

वाले हो, सो ... ...हू सो दीजिये ॥

उषः प्रशस्यते गर्गः

शकुनं च बृहस्पतिः

अंगिरा मन उत्साहो

विप्रवाक्यं जनार्दनः ॥

जैनार्यनमतत्साप्या

चौ०—जानहु मुनि तुम मोर स्वभाऊ । जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ ॥

कवन वस्तु अस मोहि प्रिय लागी । जो मुनिवर न सकहु तुम माँगी ॥

अर्थ—हे मुनि जी ! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो, मैं क्या कभी भक्तों से कु[छ]

छिपाता हूं ? ऐसा कौन सा पदार्थ मुझे प्यारा है, जिसे हे मुनिश्रेष्ठ तुम मां[ग]

नहीं सको ?

अर्थ—इस भरोसे की बात को कभी न भूलना कि "ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो मैं अपने भक्त को न दे सकूं" (अर्थात् उसे सब कुछ दे सक्ता हूं)। तब नारद जी प्रसन्नतापूर्वक बोले, मेरी ढिठाई क्षमा कीजिये, मैं यह वरदान मांगता हूं॥

चौ०—यद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका॥
राम सकल नामन तें अधिका। होउ नाथअघ-खग-गण-बधिका॥

अर्थ—यद्यपि आप के नाम बहुत हैं और वेद में कहा है कि प्रत्येक नाम दूसरे नाम से बढ़ कर है। तौ भी हे स्वामी! आप का "राम" यह नाम सब नामों से बढ़ कर, पापरूपी पक्षियों को नाश करने के लिये बहेलिया के सदृश होवे॥

दो०—राकारजनी भक्ति तव, रामनाम सोइ सोम।
अपर नाम उडुगन विमल, बसहु भक्तउरब्योम॥

अर्थ—आप की भक्ति शरद पूर्णिमा की रात्रि के समान, आप का "राम" नाम शरच्चन्द्रवत् और दूसरे नाम स्वच्छ तारागणों के तुल्य होकर, भक्त के हृदय-रूपी आकाश में बास करें॥

दो०—एवमस्तु मुनि सन कहेउ, कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरष अति, प्रभुपद नायेउ माथ॥४४॥

अर्थ—दयासागर श्री रामचन्द्र जी ने मुनि जी से कहा "ऐसा ही होगा"। यह सुनते ही नारद जी मन में बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने भगवान् के चरणों में सीस नवाया॥

चौ०—अतिप्रसन्न रघुनाथहि जानी। तब नारद बोले मृदुबानी॥
राम जबहिं प्रेरेहु निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी को बहुत ही प्रसन्न देख नारद मुनि मधुर बचनों से फिर कहने लगे। हे रघुवीर रामचन्द्र जी! आप ने जब अपनी माया को प्रेरणा की थी तब उसने मुझे मोहित कर लिया था॥

चौ०—तब विवाह चाहउँ मैं कीन्हा। प्रभु केहि कारण करइ न दीन्हा॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तज सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिनकी रखवारी। जिमि बालकहिं राख महतारी॥

अर्थ—उस समय मेरी इच्छा विवाह करने की हो गई थी, हे स्वामी! आप ने क्यों न करने दिया? (रामचन्द्र जी बोले) मुनि जी सुनो, मैं तुम से प्रतिज्ञापूर्वक

कहता हूं कि जो प्राणी सब भरोसा छोड़ मेरा भजन करते हैं, मैं उनकी रक्षा सदैव किया करता हूं, जिस प्रकार माता अपने बालक की रखवारी किया करती है ॥

चौ०–गहि शिशु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई* ॥
प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिल बाता ॥
मोरे प्रौढ़–तनय–सम ज्ञानी। बालक सुतसम दास अमानी ॥

अर्थ—जब छोटा बालक अग्नि या सर्प को पकड़ने दौड़ता है तब माता उस को रोक लेती है, परन्तु वही बालक जब बड़ा हो जाता है, तो उस की मा उस पर पहिले की नाईं प्रेम नहीं करती। मेरे ज्ञानवान् भक्त बड़े लड़के के समान हैं, परन्तु साधारण भक्त मुझे छोटे बालक के तुल्य हैं ॥

चौ०–जिनहिं मोर बल निज बल ताही। दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आही ॥
यहविचारि पंडित मोहि भजहीं। पायेहु ज्ञान भक्ति नहिं तजहीं ॥

अर्थ—जिन्हें मेरा बल है और जिन्हें अपना बल है इन दोनों प्रकार के भक्तों को काम और क्रोध शत्रु हैं अर्थात् काम सर्परूपी है और क्रोध अग्निरूपी है। इन दोनों शत्रुओं से ज्ञानी भक्त तो आप ही बच जाते हैं पर साधारण भक्तों को मैं बचा लेता हूं; जैसे माता के बड़े लड़के स्वतः अग्नि और सर्प से बचते हैं, परन्तु छोटे लड़कों को माता बचा लेती है। ऊपर कही हुई बातों को सोच, बुद्धिमान् मेरा भजन करते हैं, किंतु ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी भक्ति को नहीं छोड़ते ॥

दो०–काम–क्रोध–लोभादि मद, *प्रबल मोह की धारि।
तिन महँ अतिदारुण दुखद, मायारूपी नारि ॥ ४५ ॥

अर्थ—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ये सब मोह की सेना के बड़े कट्टर योद्धा हैं परन्तु इन सब में अधिक दुःख देनेवाली मायारूपी स्त्री है ॥

सूचना—नीचे की छः पंक्तियों में श्री गोसाईं जी ने षट् ऋतुओं को कैसी उत्तमता के साथ स्त्री पर घटित कर दिया है। ऋतुएँ क्रम से लिखी गई हैं। बसन्त जो ऋतुओं का राजा है, चैत्र और बैसाख में होता है। शेष ऋतुएँ दो दो मास के अन्तर से क्रमानुसार होती हैं ॥

---

* "अरगाई" का अर्थ 'अलग करना है, इस का पाठान्तर "अरुगाई" करके लोग कभी कभी "बच्छ अरु गाई" शब्दों के आने से ऐसा कर बैठते हैं कि माता अपने बालक को और गाय अपने बछड़े को सर्प और अग्नि से रक्षित रखती हैं; परन्तु गाय को इतनी बुद्धि और सामर्थ्य कहाँ है जो अपने बछड़े को सर्प या अग्नि से बचा सके और बछड़े को भी बहुधा अग्नि या सर्प पकड़ने को दौड़ते नहीं सुना। छोटे बालक को बच्छ (वत्स) भी प्रेम से कह देते हैं ॥

* प्रबल मोह की धार–इसका सविस्तर वर्णन उत्तर कांड की टि० पृ० १५४ में देखो।

चौ०–सुनु मुनि कह पुराण श्रुति संता। मोहविपिन कहँ नारि बसंता॥
जप तप नेम जलाशय झारी। होइ ग्रीष्म सोखइ सब नारी॥

अर्थ—मुनि जी सुनो, वेद पुराण और सज्जनों का कहना है कि मोहरूपी बन को प्रफुल्लित करने के लिये स्त्री "बसंत" ऋतु के तुल्य है (अर्थात् स्त्री मोह-बर्द्धिनी है)। जप, तप और साधनरूपी जल स्थानों को स्त्री "ग्रीष्म" रूपी होकर सुखा डालती है (अर्थात् स्त्री तप-नाशिनी है)॥

चौ०–काम क्रोध मद मत्सर* भेका। इनहिं हरषप्रद बरषा एका॥
दुर्वासना कुमुदसमुदाई। तिन कहँ शरद सदा सुखदाई॥

अर्थ—काम, क्रोध, अहंकार और ईर्षारूपी मेंडकों को स्त्री केवल "वर्षा" ऋतु के समान सुखदाई है (अर्थात् यह षड्रिपु हर्ष-कारिणी है)। कुविचाररूपी कुमोदिनियों के समूह को स्त्री "शरद" ऋतुवत् सदा सुख देनेवाली है (अर्थात् स्त्री कुवासना सुखदायिनी है)॥

चौ०–धर्म सकल सरसीरुह-वृन्दा। होइ हिम तिनहिं देति दुख मन्दा॥
पुनि ममता जवासबहुताई। पलुहइ नारि शिशिरऋतु पाई॥

अर्थ—सब प्रकार के धर्म मानो कमलों के समूह हैं यह पापिनी "हिम" ऋतु के समान हो इन्हें सुखा डालती है (अर्थात् स्त्री धर्मध्वंसिनी है) फिर, ममतारूपी जवासा को बढ़ाने के लिये स्त्री "शिशिर" ऋतु की नाईं है (अर्थात् स्त्री मायाविनी है)॥

चौ०–पाप उलूकनिकर सुखकारी। नारि निबिड़रजनी अँधियारी॥
बुधि बल शील सत्य सब मीना। बंशी सम त्रिय कहहि प्रवीना॥

अर्थ—पापरूपी उल्लुओं के समूहों को सुख देने के हेतु स्त्री महा अँधेरी रात्रि के सदृश है (अर्थात् स्त्री पाप सुखदात्री है)। चतुर मनुष्यों का कथन है कि बुद्धि बल, शील और सचाई इन्हें यदि मछली मानें, तो स्त्री वंशी के समान फँसाने वाली है (अर्थात् यह बुद्धि, बल, शील, और सत्य की फाँसी है)॥

दो०–अवगुणमूल शूलप्रद, प्रमदा सब दुखखानि।
ता तें कीन्ह निवारण, मुनि में यह जिय जानि॥४६॥

* मत्सर—अमरकोष में लिखा है 'मत्सरोऽन्य शुभद्वेषे' अर्थात् दूसरों की भलाई देख जलना यही 'मत्सर' है।

अर्थ—दुर्गुणों की खानि, कष्टकारिणी स्त्री सब प्रकार के दुःखों का भंडार है सो हे मुनि जी ! मैंने इन बातों का विचार कर तुम्हें (विवाह करने से) रोका था ॥

चौ०-सुनि रघुपति के बचन सुहाये। मुनितन पुलक नयन भरि आये ॥
कहहु कवन प्रभु की अस रीती। सेवक पर ममता अति प्रीती ॥

अर्थ—रामचन्द्र जी के मनभावने बचन सुन कर, नारद मुनि का शरीर रोमांचित हो गया और उन के नेत्रों में प्रेमअश्रु भर आये। (तुलसीदास जी कहते हैं) कहो, कौन से स्वामी की ऐसी रीति है जो अपने दास पर ममता और अधिक प्रेम रक्खे ?

चौ०-जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी। ज्ञान रंकमति मन्द अभागी ॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम विज्ञानविशारद ॥

अर्थ—जो जीव ऐसे परमेश्वर को संदेह त्याग कर नहीं भजते हैं वे ज्ञान के दरिद्री अर्थात् अज्ञानी, महामूर्ख और भाग्यहीन हैं। फिर नारद मुनि जी आदरपूर्वक कहने लगे, हे ज्ञान से परिपूर्ण श्री रामचन्द्र जी ! सुनिये ॥

चौ०-संतन के लक्षण रघुबीरा ! कहहु नाथ भंजन भवभीरा ॥
सुनु मुनि संतन के गुण कहऊँ। जिन ते मैं उन के वश रहऊँ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्र जी ! आप संसार के पापों से छुड़ाने वाले हैं, सज्जनों के लक्षण तो कहिये। हे मुनि जी ! सुनो, मैं संतों के लक्षण कहता हूं जिन के कारण मैं उन के स्वाधीन रहता हूं ॥

चौ०-षटविकार जित अनघ अकामा। *अचल अकिंचन शुचि सुखधामा ॥
अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्यसंध कवि कोविद योगी ॥
सावधान ममतामदहीना। धीर धर्म गति परम प्रवीना ॥

---

* "अचल" शुभाशुभ पाकर सुख दुःख से जिस का मन चलायमान नहीं होता है उस को अचल कहते हैं। श्री भगवद्गीता के दूसरे अध्याय में कहा है—

श्लोक—यः सर्वत्रानभिस्नेह स्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥

अर्थात् जो पुरुष पुत्र आदि सब विषयों से स्नेह रहित है और भला बुरा कुछ प्राप्त होने पर प्रशंसा और निंदा नहीं करता, केवल उदासीन हो रहता है उस की बुद्धि स्थिर जानो ॥

अर्थ—(संतजन) छः प्रकार के विकारों को जीतने वाले, (अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन को दबाने वाले) निष्पाप, काम रहित. स्थिरचित्त, धनहीन, पवित्र, सुख के स्थान, अपरिमित ज्ञानी, इच्छारहित, प्रमाण से भोजन करने वाले, सत्य प्रतिज्ञा वाले, कवि, पंडित, इन्द्रियजित, सचेत, ममता और मद से रहित, धीरजवान और धर्मकार्यों में निपुण होते हैं ॥

दो०-गुणागार संसार दुख, रहित विगत-संदेह ।
तजि मम चरणसरोज प्रिय. जिन कहँ देह न गेह ॥४७॥

अर्थ—सर्वगुण संपन्न, (यथा समता, संतोष, सुशीलता, क्षमा, शांति आदि गुण युक्त) संसार के दुःखों से दूर (अर्थात् व्यवहार शून्य) शंका रहित और मेरे कमलस्वरूपी चरणों के सिवाय उन्हें न अपनी देह प्यारी है और न घर ॥

चौ०-निज गुण श्रवण सुनत सकुचाहीं। परगुण सुनत अधिक हरषाहीं ॥
सम शीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाव सबहि सन प्रीती ॥

अर्थ—ये अपनी बड़ाई सुनने में संकोच करते हैं, पराये गुण सुन कर प्रसन्न होते हैं। सब को समान समझने वाले, नीति को न छोड़ने वाले, सादे स्वभाव वाले सब के प्रेमपात्र होते हैं ॥

चौ०-जप तप व्रत दम संयम नेमा । गुरु-गोविन्द-विप्रपद प्रेमा ॥
श्रद्धा[१] क्षमा मयत्री दाया। मुदिता ममपद प्रीति अमाया ॥

अर्थ—भजनशील, तपस्वी, व्रतधारी. इन्द्रियों के दमनकर्ता, संयमी, नियमी गुरु, ईश्वर और ब्राह्मण के चरणों में प्रेम रखने वाले, श्रद्धावान्, क्षमावान्, मिताई करने वाले, दयावीर, प्रसन्नचित्त और मेरे चरणों के निष्कारण प्रेमी हैं ॥

चौ०-विरति[२] विवेक[३] विनय विज्ञाना[४]। बोध यथारथ वेद पुराना ॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥

---

१ "श्रद्धा"—"गुरु वेदान्त वाक्येषु विश्वासः श्रद्धा" अर्थात् गुरु तथा वेदान्त के वाक्यों में विश्वास रखना यही श्रद्धा है।

२ "विरति"—"इहामुत्र फल भोग त्याग विरतिः" अर्थात् इस संसार में तथा स्वर्ग में भी सत्कर्मों के फलों का भोगत्याग यही विरति है।

३ "विवेक"—"सारा सारयोः पार्थक्येन ज्ञानं विवेकः" अर्थात् सार और असार वस्तुओं का अलग अलग ज्ञान ही विवेक है।

४ "विज्ञान"—"जगतो नाना त्वेन प्रतीतिर्विज्ञानम्" (तच्चसोपाधिकम्) अर्थात्

अर्थ—जिन में त्याग विवेक नम्रता जगत का ज्ञान है और जो वेदों और पुराणों को ठीक ठीक समझते हैं । जो पाखंड, गर्व, उन्मत्तता किसी से नहीं करते और भूल करके भी कुचाल नहीं चलते हैं ॥

चौ०—गावहिं सुनहिं सदा मम लीला । हेतुरहित परहित-रत-शीला ॥
सुन मुनि साधुन* के गुण जेते । कहि न सकहिं शारद श्रुतितेते ॥

अर्थ—जो सदा मेरे चरित्रों को कहते अथवा सुनते हैं और बिना स्वार्थ के दूसरों की भलाई करने में तत्पर रहते हैं । हे मुनि जी ! सुनो साधुओं के जितने लक्षण होते हैं उन का वर्णन न तो सरस्वती जी और न वेद कर सक्ते हैं ॥

छं०—कहि सक न शारद शेष नारद सुनत पदपंकज गहे ।
अस दीनबन्धु कृपाल अपने भक्त गुण निज मुख कहे ॥
शिर नाइ बारहिंबार चरणन्ह ब्रह्मपुर नारद गये ।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाय जे हरि-रँग‡ रये ॥

जगत् का प्रकार भेद से ज्ञान यही विज्ञान है (यह उपाधि या गुण सहित है) ।
"ज्ञान"—"सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति एकत्व प्रतीतिर्ज्ञानं" (एतन्निरुपाधिकं) अर्थात् जो कुछ है सब ब्रह्म ही है ऐसा अद्वैतबोध, (सो उपाधि या गुण रहित है) यही ज्ञान है।

* "साधुन के गुण"—श्री राम जी के कहे हुए सन्तों के सद्गुण "खेतराम जी" ने यों गाये हैं—(पद)

सन्तन के गुण राम बखाने ॥
शेष शारदा कहि न सकत सब वेद पुरान न जाने ।
सम शीतल शुचि संयम साधक नीति निपुन नयसाने ॥ १ ॥
बिरति विवेक विनय विज्ञानी धीर धर्म पथ स्याने ।
जप तप व्रत परमारथ भोगी योगी भव भय भाने ॥ २ ॥
हेतु रहित परहित रत शीला सत्वसार पहिचाने ।
श्रद्धा क्षमा मइत्री दाया परगुण सुन हर्षाने ॥ ३ ॥
विषय वासना तजि विकार षट सावधान मतिमाने ।
अनघ अनीह अभेद आत्मगति मम लीला मन माने ॥ ४ ॥
सरल स्वभाव सनेही सब के ममपदप्रीति अमाने ।
"खेतराम" प्रभु भक्त विवश हैं जाननिहारे जाने ॥ ५ ॥

‡ 'जे हरि रँग रये—राम में रँगे तो यों—

मेरो मन प्यारे राम जू के बार बार भ्रमि, भाल श्रुतिकुण्डल कपोल गोल छपको ।
नासा मुख नैन अधरन बीचि बास करि, दंत दुति देखि के छिवुक ठोड़ी ठपको ॥
ललित सुकण्ठ कन्ध भुज कर पल्लव तें, उर छबि लखि लवलीन हूँ को लपको ।
नाभि कूप परि कटि तट ते रपटिजाय, पद अरविन्दनि मलिन्द ह्वै के चपको ॥

अर्थ—"श्री सरस्वती और शेषनाग भी नहीं कह सक्ते" इन वचनों को सुनते ही नारद जी ने श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों को प्रणाम किया और विचारने लगे कि श्री भगवान् ऐसे दीन हितकारी और दयालु हैं कि इनने अपने भक्तों के लक्षणों को श्रीमुख से वर्णन किया। फिर नारद मुनि बारम्बार चरणों में शीश नवाय ब्रह्मपुर को पधारे। श्री गोसाईं तुलसीदास जी कहते हैं कि धन्य है उन प्राणियों को जो सब भरोसा छोड़, श्री रामचन्द्र जी के चरणों में तन्मय हो रहे हैं॥

दो०—रावणारि यश पावन, गावहिं सुनहिं जे लोग।
रामभक्ति दृढ़ पावहिं, बिन विराग जप योग॥

अर्थ—(आशीर्वादी दोहा) श्री रामचन्द्र जी के पवित्र यश का जो कोई कीर्त्तन किंवा श्रवण करै, वह विना ही वैराग्य, जाप अथवा योग के अटल रामभक्ति को पावेगा॥

दो०—दीप-शिखासम युवति-जन, मन जनि होसि पतंग।
भजहु राम तजि काम मद, करहु सदा सतसंग॥ ४८॥

अर्थ—नारिवर्ग दीपक की ज्योति के समान है, रे मन! तू पतंगवत् मत हो (अर्थात् जिस प्रकार दीपक के रूपप्रेम में फँसकर पतंग जल जाता है इसी प्रकार तू भी स्त्रीप्रेम फाँसी में मत फँस) काम और अभिमान को छोड़ के श्री रामचन्द्र जी का भजन कर और सदा सत्संग में रह; इसी में सार है। यथा—

सवैया—धारिये धीरज धर्म सनातन, सत्य सदा समता न बिसारिये।
सारिये भक्ति करोर कलान कै, मत्त मलीन महा मन मारिये॥
मारिये मोह मदादिक मत्सर, गाय गोविन्द गुमानहिं गारिये।
गारिये द्वैत विचार "विनायक," नायक राम सिया चितधारिये॥

इति श्री रामचरितमानसे सकल कलिकलुषविध्वंसने विमल—
वैराग्यसंपादनो नाम तृतीयः सोपानः समाप्तः॥

॥ श्री सीतारामचन्द्रार्पणमस्तु॥

दोहा—निगम शास्त्र निधि चन्द्र युत, फागुन रवि शिवरात।
श्री विनायकी तिलक यह, तृतिय कांड अवदात॥

॥ शुभम्भूयात्॥

श्री रामायण आरण्यकांड के श्री विनायकी टीका की

॥ पुरौनी ॥

—। आवश्यक पिङ्गल ।—

पिङ्गल उस छन्द शास्त्र का नाम है जिसे पिङ्गल नाम के महर्षि ने शिव जी से सीख कर निर्माण किया था ॥

छन्द—वह शब्द रचना है जो रमणीय अर्थ को बतावे और मात्रा अथवा गण से बद्ध हो।

छन्द के मुख्य दो भेद हैं मात्रिक (जाति) और वर्णवृत्त (गणवृत्त) ॥

दोनों प्रकार के छन्दों के मुख्य तीन तीन भेद हैं—

१ "सम"—जिन में चारों चरण तुल्य हों। यथा चौपाई, प्रमाणिका आदि

२ "अर्द्धसम"—जिन में दो दो चरण बराबर हों। जैसे दोहा, उपचित्रा आदि ॥

३ "विषम"—जिन में चार से अधिक चरण हों अथवा चार चरण तुल्य न हों। जैसे छप्पय, लवली आदि ॥

मात्रा विचार ।

अकार के बोलने में जितना समय लगता है उसे "मात्रा" कहते हैं।

सम्पूर्ण अक्षर (ह्रस्व, दीर्घ किंवा संयुक्त) पिङ्गल शास्त्र के अनुसार बहुधा एक मात्रिक अथवा लघु और द्विमात्रिक किंवा गुरु समझे जाते हैं।

अ इ उ और ऋ ये एक मात्रिक हैं। जैसे अज, इल, उपकार, ऋषि। इन शब्दों में अ इ उ ऋ की एक एक मात्रा ली जावेगी।

क से लगाकर ह तक संपूर्ण अक्षर जिन में अ इ उ अथवा ऋ मिली हो उन की भी एक मात्रा होगी। जैसे कथ, गिरि, पुल, कृपा। इन में क, गि, पु, कृ की एक एक मात्रा समझी जायगी।

संयुक्त अक्षरों में भी यदि अ, इ, उ, ऋ ये स्वर मिले हों तो वे भी एक मात्रिक समझे जाते हैं। यथा शास्त्र, अन्तिम, श्रुति और स्मृति। इनमें स्त्र, न्ति, श्रु और स्मृ एक मात्रिक हैं।

आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः और इन से मिले हुए क से ह तक साधारण और संयुक्त अक्षर द्विमात्रिक या गुरु गिने जाते हैं; यथा आम, ईश्वर, ऊख, एक, अंक, दुःख, राम, मोल द्वेष, स्त्री आदि में।

ॠ, ऌ, ॡ, इन तीन स्वरों का तथा इनसे मिले हुए व्यंजनों का उपयोग हिन्दी भाषा में नहीं होता है।

स्मरण रहे कि संयुक्त अक्षर के पहिले लघु भी बहुधा गुरु गिना जाता है परन्तु सदैव नहीं । यथा धर्म, अस्त्र, शस्त्र, मध्यम, इन में ध, अ,श और म यद्यपि लघु हैं तौभी गुरु किम्वा दीर्घ गिने जावेंगे, परन्तु कन्हैया, उन्हें, तुम्हार इन में क, उ, तु, संयुक्ताक्षर के पहिले आने पर भी लघु हैं ॥

कभी कभी गुरु अक्षर को भी कविता में सुभीते से उच्चारण के हेतु लघु पढ़ते हैं और इसी प्रकार चन्द्रबिंदु (ँ) सहित अक्षर को, यदि दीर्घ स्वर संयुक्त न हों, तो ह्रस्व पढ़ते हैं, यथा—" सब मोहि कहँ जानं दृढ़ सेवा " इस में " मो " गुरु होने पर भी लघु पढ़ा जावेगा और " हँ " (चन्द्रबिन्दु वाला) लघु है । (पृ० ५७ पं. २) ॥

संस्कृत कविता में चरण के अन्त का अक्षर लघु होने पर भी प्रायः गुरु गिना जाता है । यथा " उपेन्द्रवज्रादपि दारुणोसि " इस में अन्तिम " सि " लघु रहने पर भी गुरु समझी गई ॥ इसी प्रकार कभी कभी हिन्दी कविता में भी । जैसे—

पृ० ७१ सभा मांझ परि व्याकुल, बहु प्रकार कह रोइ ॥
तोहि जियत दशकंधर, मोर कि अस गति होइ ॥

इस में व्याकुल का अंतिम लकार और दशकंधर का अंतिम रकार दीर्घ के तुल्य समझा जायगा ।

गुरु अथवा द्विमात्रिक वर्ण के लिये चिन्ह या संकेत (ऽ) ऐसा रहता है ॥
लघु अथवा एकमात्रिक वर्ण के लिये चिन्ह या संकेत (।) ऐसा होता है ॥

गण विचार

काव्य में तीन अक्षरों के समूह को गण कहते हैं ।

गुरु लघु के विचार से ये आठ प्रकार के हैं । यथा मन भय रस तज ।

गणों में वर्णों के गुरु लघु का क्रम नीचे के सोरठे और चक्र से उदाहरण सहित स्पष्ट होता है—

सो०—आदि मध्य अवसान, यरता में लघु जानिये ।
भजसा गुरू प्रमान, मन तिहुँ गुरु लघु मानिये ॥ (छन्द प्रभाकर)

अर्थ—य र ता अर्थात् यगण रगण तगण इन के आदि मध्य और अन्त में क्रम से लघु होता है; इसी प्रकार भ ज सा अर्थात् भगण जगण और सगण के आदि मध्य और अन्त में क्रम से गुरु होता है और म न अर्थात् मगण और नगण में क्रम से तीनों गुरु और तीनों लघु वर्ण रहते हैं ॥

शुभ	मगण ऽ ऽ ऽ रामाहो	अशुभ	रगण ऽ । ऽ याचिये
	नगण । । । जनक		सगण । । ऽ मन से
	भगण ऽ । । नंदिनि		तगण ऽ ऽ । कामारि
	यगण । ऽ ऽ बुलावैं		जगण । ऽ । सुजान

दो०—माया में भूलहु न भ्रमि, यहै मा न पर तीत ।
म भ न य न ऽ ।
सुख जो तू चाह सि सदा, राम नाम भज मीत ॥
स त स र ज

इस उपदेश पूरित दोहे में कवि ने सब गणों के उदाहरण ऐसी बुद्धिमानी से रक्खे हैं कि प्रत्येक उदाहरण का आदि अक्षर उसी गण को सूचित करता है जिसका वह उदाहरण है; हां, इतना अवश्य है कि नगण और सगण दो बार आये हैं ॥

मात्रिक और वर्णवृत्त की पहिचान ।

दोहा—गुरु लघु चारों चरण में, क्रम ते मिलें समान ।
वर्ण वृत्त है, अन्यथा, मात्रिक छन्द प्रमान ॥

तुकान्त

पद्य खण्ड को 'चरण' कहते हैं। नियमित चरणों के अन्त के अक्षर "तुकान्त" कहाते हैं। हिन्दी भाषा काव्य में तुकान्त का एकसा होना आवश्यक है; हां, कोई कोई कविता ऐसी हैं जिन में तुकान्त एकसा नहीं मिलता। यथा—कई विषम वृत्तों में तथा पण्डित सरयूप्रसाद मिश्र कृत "अज विलाप" नाम की कविता में। उदाहरण

सुत के कर कार भार कै संग वामांगी बिहार के लिये।
गवने अज एकदा स्त्री संग हरि ज्यों नन्दने वने ॥

पद्य के चरणों में यदि मिले हुए स्वरों सहित अन्तिम वर्ण व मात्रा पांच पांचसंख्या तक एक से हों तो तुकान्त उत्तम होता है; चार व तीन तक मिलने से मध्यम और इससे कम निकृष्ट समझा जाता है। यथा—

छन्द—जय राम रूप अनूप निर्गुण सगुण गुण प्रेरक सही ।
दशशीस बाहु प्रचंड खंडन चाप शर मंडन मही ॥
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं ।
नित नौमि राम कृपालु बाहु विशाल भव भयमोचनं ॥

इस में "लोचनं" और "मोचनं" के अन्तिम ओ, च् + अ, न + म् ये पांच मिलते हैं इसहेतु तुकान्त उत्तम है और "सही" तथा "मही" में अ, ह् + ई ये तीन मिलने से मध्यम हैं। ऐसी ही तुकान्तें बहुधा मिलती हैं। (पृ० ७२ पंक्ति २७ और ३२ में भी देखो) ॥

निकृष्ट तुकान्तों के उदाहरण क्षेपकों में से कुछ उद्धृत किये जाते हैं यथा—"कियो के साथ "भयो" भये के साथ "किये" "भूधर" के साथ "सुर" (देखो पृष्ठ २६ और ३० में) ॥

॥ आरण्य कांड के मुख्य छन्दों का विचार ॥

सूचना—श्री गोंसाईं जी ने रामायण में १८ प्रकार के मुख्य छन्द कहे हैं (अर्थात् ११ वर्णिक और ७ मात्रिक) उन में से आरण्य कांड अन्तर्गत ७ प्रकार के (अर्थात् दो वर्णिक और ५ मात्रिक) छन्द हैं ।

इनका पिङ्गल विचार जो नीचे लिखा जाता है, ठीक ठीक समझ में आने के हेतु मात्रा, गण और तुकान्त का कुछ वर्णन ऊपर कर आये हैं ॥

(१) शार्दूल विक्रीड़ित (वर्णिक)

इस चार चरण वाले समवृत के प्रत्येक चरण में मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण, और एक गुरु रहता है तथा बारह और सात अक्षरों पर विश्राम होता है ॥

गण, स्मरणार्थ नीचे का पद्यखण्ड उपकारी है—

मो से जे सुत तुर्ग भानु सुर हैं शार्दूल विक्रीड़िते ।

भावार्थ—(सूर्य देव कहते हैं कि) अश्वरूपधारी मुझ से उत्पन्न जो पुत्र अर्थात् अश्वनी कुमार हैं वे सिंहसमान पराक्रम से रहते हैं ।

पिङ्गलार्थ—म स ज स त त से गण, ग से गुरु वर्ण, भानु से बारह तथा सुर (स्वर) से सात अर्थात् बारह और सात वर्णों पर विश्राम (यति) और अन्तिम शब्द में नाम सूचित किया है । तथा सम्पूर्ण पंक्ति शार्दूल विक्रीड़ित छन्द ही में रची गई है ।

उदाहरण (देखो पृष्ठ १) ॥

म	स	ज	स	त	त	ग
ऽ ऽ ऽ	। । ऽ	। ऽ ।	। । ऽ	ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	ऽ
१. मूलंध	र्मतरो	र्विवेक	जलधेः	पूर्णेन्दु	मानन्द	दं ।
२. वैराग्या	म्बुजभा	स्करंह्य	घहरं	ध्वान्ताप	हं ताप	हं ॥ इत्यादि
३. वैराग्या	म्बुजभा	स्करम न	घहरं	(ऐसे पाठ में छन्द भंग है)		

ऊपर की तीसरी पंक्ति के तीसरे गण में जगण के स्थान में नगण होकर छन्द भंग करता है जैसा पृष्ठ १ पंक्ति १८ में सूचित कर आये हैं ॥ "सान्द्रानन्द आदि भी शार्दूल विक्रीड़ित है, इन दोनों को पुस्तक में "श्लोक" लिखा है ॥

(२) सोरठा।

इस मात्रिक अर्द्धसम छन्द के पहिले और तीसरे चरण में ग्यारह ग्यारह और दूसरे और चौथे चरण में तेरह तेरह मात्रा होती हैं। इस के दूसरे और चौथे चरण के आदि में जगण का निषेध है। इस का तुकान्त पहिले और तीसरे चरणों में होता है; कारण, यह दोहे का उलटा है। यथा—

उमा राम गुण गूढ़ .... इत्यादि (पृष्ठ ४)

(३) चौपाई।

इस मात्रिक सम छन्द के चारों चरणों में सोलह सोलह मात्रा होती हैं। विशेषता यह है कि चरण के अन्त में गुरु लघु अक्षर न हों। तुलसीदास जी की इस रामायण को "चौपाई रामायण" कहते हैं; क्योंकि इस में चौपाई ही विशेष हैं। यथा :—

पूरण भरत प्रीति .... से .... मुनि भावन ; तक ॥

आधी चौपाई को अर्द्धाली और चौथाई चौपाई को एक चरण कहते हैं। चौपाई के अनेक भेद हैं जिन के नाम आदि "छन्दः प्रभाकर" अथवा और छन्द ग्रन्थों में मिलेंगे ॥

"श्याम तामरस दाम शरीरं" आदि भी चौपाई हैं (पृष्ठ ३६)

इसी को संस्कृत में पादाकुलक कहते हैं। यथा—

मूढ़ जहीहि धनागम तृष्णां। कुरु तनु बुद्धे मनसि वि तृष्णाम् ॥
यल्लभसे निज कर्मोपात्तं। वित्तं तेन विनोदय चित्त ॥

(४) दोहा।

दोहा (संस्कृत द्विपदा) मात्रिक अर्द्धसम छन्द का नाम है जिस में सोरठा ही के तुल्य ४८ मात्रा होती हैं। इस के आदि में जगण का निषेध है देखो काव्यकुसुमाकर द्वितीय भाग पृ० १६२। सोरठा को उलटने से दोहा और दोहा को उलटने से सोरठा होता है। यथा —

दोहा—जिमि जिमि भाजत शक्रसुत, व्याकुल अति दुख दीन।
तिमि तिमि धावत रामशर, पाछे परम प्रवीन ॥

ऊपर के दोहे का सोरठा —

सोरठा—व्याकुल अति दुख दीन, जिमि जिमि भाजत शक्रसुत।
पाछे परम प्रबीन, तिमि तिमि धावत रामशर ॥

(५) प्रमाणिका (नगस्वरूपिणी)

जरा लगाय चित्त हीं। भजो जु नन्द नन्द हीं ॥
प्रमाणिका हिये गहौ। जु पार भौ लगा चहौ ॥ (छन्दः प्रभाकर)

अर्थ—थोड़ा, चित्त लगा श्री कृष्ण जी का भजन करो जो संसार से मुक्त होना चाहो ; इस प्रमाण की बात को हृदय में धारण करो । ऊपर के वृत्त का साधारण अर्थ तो लिख ही चुके हैं अब इस की रचना में "श्री भानु कवि जी" की चतुराई देखिये, जिन्हों ने प्रमाणिका वृत्त ही में वृत्त का नाम और उस के लक्षण दो स्थानों में भिन्न प्रकार से दर्शाये हैं । यथा --

१ "जरा लगा" में जगण रगण लघु और गुरु हैं ।

२ "लगा वहो" लघु गुरु क्रम से चार बार आकर आठ वर्ण हो जाते हैं ॥

उदाहरण—नमामि भक्त वत्सलं.........इत्यादि (पृ० १२)

(६) हरिगीतिका ।

इस मात्रिक सम छन्द के लक्षण छन्दःप्रभाकर में यों कहे हैं —

सोलह रवी लग अन्त जन रचि, लीजिये हरिगीतिका ।

अर्थात् १६ और १२ के विश्राम से २८ मात्रा होती हैं ; अन्त में लघु गुरु होते हैं यथा —

तनु पुलक निर्भर प्रेम पूरण, नयन मुख पंकज दिये । (इत्यादि)

सूचना—आरण्यकाण्ड में प्रमाणिका पृष्ठ १२ और तोमर पृ०६१ को छोड़ शेष कविता जिन के सन्मुख छन्द लिखा है वे सब हरिगीतिका छन्द हैं उन की संख्या १७ है ।

(७) तोमर ।

इस मात्रिक सम छन्द के प्रत्येक चरण में बारह मात्रा होती हैं, अन्त में गुरु लघु अक्षर होते हैं । यथा—

तब चले बाण कराल । इत्यादि (पृ० ६१)

सूचना--अन्तिम अक्षर गुरु लघु होने के कारण ही "चरन" को "चर्न" और परन को पर्न लिख आये हैं (पृ० ७१, पंक्ति ४)

पृष्ठ ७ की टिप्पणी में सूचित किये अनुसार "राहु का उल्लेख"—

जब समुद्र मथन किया गया था, तब उस में से जो १४ रत्न निकले थे, वे ये हैं--

दो०--श्री मणि रम्भा वारुणी, अमी शंख गजराज ।
धन्वन्तरि धनु धेनु शशि, कल्पद्रुम विष बाज ॥

इन में से अमृत के लिये देवता और राक्षस झगड़ने लगे । विष्णु जी ने चतुर्भुज रूप धारण कर देवता और राक्षसों की पंक्तियां बिठलाई और दोनों ओर दो दो हाथ से देवताओं को अमृत और राक्षसों को मदिरा बाँटने लगे । राहु नाम का एक राक्षस देवता का रूप धारण कर उन में जा बैठा और उस के हाथ पर भी धोखे से अमृत पड़ गया, उसे वह तुरन्त पी गया और अमर हो गया । सूर्य, चन्द्र ने विष्णु जी को इशारा किया कि वह राक्षस है । यह जान कर विष्णु जी ने चक्र से उस का शिर काटा; परन्तु अमृत पीने के कारण शिर धड़ से जुड़ जाता था । निदान शिर और धड़ के अलग अलग ग्रह राहु, केतु नाम के बनाये गये । सो समय पाकर राहु तो चंद्रमा और केतु सूर्य को दबा कर ग्रहण लगाता है ॥

॥ नारद ॥

पृष्ठ. ६. पंक्ति ११ तथा पृष्ठ १२६ पंक्ति ११ के अनुसार ॥

नारद मुनि जिन की उत्पत्ति ब्रह्मा से समझी जाती है, दश प्रजापतियों में से एक हैं। इन महर्षि के विषय में कई ऋचाएं ऋग्वेद में मिलती हैं। इन्हों ने विवाह नहीं किया। इनका कहना था कि ईश्वरभक्ति निहंग ही से ठीक होती है। ये बोणा वाद्य के आदि कर्त्ता हैं और गन्धर्वों अर्थात् स्वर्गीय गवैयों में मुखिया समझे जाते हैं। पाताल लोक का चमत्कार देख एक बार ये अति प्रसन्न हुए थे। ये विष्णु के भक्त और मित्र हैं जो भ्रमणशील होने के कारण सब लोकों में घूमा करते हैं परन्तु कई लोग इनके स्वभाव को कलह उत्पादक समझते हैं। ये धर्मशास्त्र के रचयिता भी हैं। इन के बनाये हुए ग्रन्थ नारदीय धर्मशास्त्र और नारदपंचरात्र हैं। इनके मोह की कथा पृष्ठ १२६ पंक्ति १८ में देखो॥

पृष्ठ ११२ पंक्ति ११ में लिखे हुए भृगु और परशुराम की कथा बालकांड की पुरौनी में मिलेगी॥

पृष्ठ ३० पंक्ति १८ में सूचित किये हुए उल्लेख।

(१) विराध-यह पूर्व जन्म में तुम्बरु नाम का गंधर्व था। यह रम्भा नाम की अप्सरा से प्रेम रखता था, इसलिये कदाचित् कुछ तो इसहेतु से और कुछ कुवेर की सेवा में समय पर उपस्थित न होने के कारण कुवेर ने अप्रसन्न होकर शाप दिया कि "तू राक्षस हो" इसलिये तुम्बरु गंधर्व ने "जव" नाम राक्षस की स्त्री "शतह्रदा" के गर्भ से उत्पन्न हो "विराध" नाम पाया। ब्रह्मा जी की तपस्या कर इस ने यह वर प्राप्त किया था कि "प्राकृतिक अस्त्रशस्त्रों से न मारा जा सकूं" इस ने बन में विचरते हुए श्री रामचन्द्र जी से युद्ध ठाना और अन्त में उन्हीं के हाथ से मुक्ति पाई। स्वर्ग में जाते समय उस ने अपने शाप का हाल रघुनाथ जी से कहते हुए यह भी कहा कि कुवेर जी ने जो आप के हाथ मेरी मुक्ति कही थी सो ठीक ही हुई; परन्तु यदि आप कृपा कर मेरे मृतक-शरीर को धरती में गाड़ देवेंगे, तो मुझे सनातन लोक की प्राप्ति होगी। परम कृपालु श्री रामचन्द्र जी ने ऐसा ही किया (देखो वाल्मीकीय रामायण सर्ग २, ३ और ४)

(२) किन्नर (किम् = कुत्सित + नर=मनुष्य)=कुरूप मनुष्य। ये देव--योनियों में से हैं। जो स्वर्गीय गायक तथा नर्त्तक हैं। इनका शरीर तो मनुष्य सरीखा, परन्तु शिर घोड़े का सा होता है इसीलिये इन्हें तुरंगवदन व अश्वमुख कहते हैं। इन्हें किम्पुरुष, मयु और हरिनर्त्तक भी कहते हैं। कोई कोई इन को उत्पत्ति कश्यप मुनि से बतलाते हैं। कहते हैं कि कुवेर ने तपोबल-द्वारा श्री महादेव जी से वरदान पाकर गुह्यक, यक्ष, किन्नर आदि पर आधिपत्य पाया था। इन का निवास-स्थान कुवेर-नगरी कैलाश पर्वत पर है। (काशीखण्ड देखो)।

(३) मरुत-ये पवन के देवता और वायव्य कोन के दिग्पाल हैं। मरुत आँधी के भी देवता हैं, जो वेद में इन्द्र के सहायक और मित्र कहे गये हैं। इन की उत्पत्ति के अनेक स्थान और कारण बताये गये हैं। इन की संख्या १८० कहीं २७,

परन्तु बहुधा उन्चास कही जाती है । विष्णु पुराण में कथा है कि दक्ष की कन्या दिति ने, जो राक्षसों की माता हैं अपने मृत-सन्तानों के शोक से दुखित हो अपने पति कश्यप से वरदान माँगा कि मुझे ऐसा पुत्र दीजिये, जो अमित बलशाली होकर राक्षसों के बैरी इन्द्र से अपना बदला लेवे । कश्यप जी ने कहा कि जो तुम बालक के गर्भ काल में शुचि और शुद्ध-चित्त रह सको, तो ऐसा ही होगा । गर्भाधान के पश्चात् कश्यप जी तो तप करने चले गये और इन्द्र ने यह भेद जान अपने भावी-शत्रु के उनचास टुकड़े उस की माता के गर्भ ही में किये, परन्तु दिति के कहने से दया कर इन ४९ मरुतों को अपना सहायक और मित्र बना लिया । कहीं कहीं ऐसा वर्णन है कि इन टुकड़ों का रोना सुन पार्वती जी के कहने से शिव जी ने इन्हें एक से रूप वाले उनचास रूप बना दिये । इसलिये इन की उत्पत्ति शिव जी से भी कही जाती है ।

पृ० ३१ पंक्ति १५ के अनुसार सुनासीर और रवि के अनेक नाम कविता-बद्ध—
सुनासीर के २१ नाम—

दो०—इन्द्र पुरन्दर पाकरिपु, पर्वतारि पुरहूत ।
शक्र सुनासिर सुरपती, वज्री मातलिसूत ॥
मरुत्वान मघवा वृषा, बासव हरि सुरईश ।
जिष्णु शचीपति वृत्रहा, वज्रपाणिप्राचीश ॥

रवि के ३२ नाम—

दो०—सूर्य सूर सविता तरणि, दिनमणि दिनकर भानु ।
अर्क अरुण ग्रहपति रवी, भास्वान विवस्वानु ॥
मारतंड पूषण तपन, सहस्रांशु हरिदश्व ।
हंस विरोचन अर्यमा, मिहिर मित्र सप्तश्व ॥
त्विषापती पुनि अहर्पति, उष्ण-रश्मि आदित्य ।
द्युमणि विकर्तन भास्करहु, द्वादशात्म जप नित्य ॥

शक्र (इन्द्र)

[पृष्ठ ३० पंक्ति २५]

वेद में इन्द्र को देवताओं की प्रथम श्रेणी में लिखा है । इन का रंग स्वर्ण सदृश और हाथ लम्बे हैं । ये अपनी इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं । इन का शस्त्र बज्र है और ये बाणों को भी उपयोग में लाते हैं । इन का धनुष इन्द्रधनुष के नाम से प्रसिद्ध है । ये सोमरस पान के रुचिया हैं । संग्राम के समय मरुत और विष्णु इन की सहायता करते हैं । वेद में अग्नि की प्रशंसा में सब से अधिक ऋचाएँ हैं । अग्नि से कुछ ही कम इन्द्र की स्तुति में हैं ; कारण ये मेघ के बरसाने वाले और उत्तम कृषी उपजाने वाले समझे जाते हैं । लोग इन्हें आँधी और गाज के चलाने वाले समझ कर इन से शंकित रहते हैं । वेद में बहुधा अग्नि, वायु और सूर्य की स्तुति विशेष है जिन में बहुधा इन्द्र वायु रूप में समझे गये हैं । ये देवताओं के राजा हैं । इन्द्र ने अपने शत्रु वृत्रासुर का बध किया परन्तु वह ब्राह्मण था इस हेतु इन्हें राज्य छोड़ छिपे रहकर तपस्या द्वारा ब्रह्महत्या के घोर पाप का प्रायश्चित्

करना पड़ा। [देखो अगस्ति ऋषि की कथा] ये बहुधा तपस्वी महात्माओं के तपभंग हेतु उर्वसी, अप्सरा आदि भेज देते हैं। महाभारत में कथा है कि इन्हों ने गोतम की स्त्री अहिल्या का सत्भङ्ग किया, इसहेतु गोतम ने इन्द्र को यह शाप दिया कि तुम्हारे अंग में सहस्र भग हों, परन्तु पीछे से दयाकर इन्हें सहस्र नेत्रचिन्ह कर दिये, तभी से इन्द्र का नाम सहस्राक्ष हुआ। अहिल्या को शाप दे शिला बनाई थी। उस का उद्धार श्री रामचन्द्र जी के चरण स्पर्श से हुआ [देखो बालकाण्ड]। रामायण में कथा है कि स्वर्ग में इन्द्र का युद्ध लंका के राजा रावण से हुआ था। इस युद्ध में रावण का पुत्र, इन्द्र को पकड़कर लंका में ले गया और तभी से उस ने "इन्द्रजीत" ऐसा नाम पाया। ब्रह्मा आदि देवताओं ने इन्द्रजीत को प्रायः अमरत्व का वर दे इन्द्र को छुड़ा लिया; छुड़ाते समय ब्रह्मा ने इन्द्र को चिता दिया कि यह अहिल्या के साथ पाप करने का फल है। इन की पत्नी "पुलोमजा" है। इन के तीन पुत्र हुए (१) जयन्त (२) ऋषभ और (३) मीढस। एक बार ये अपने श्वेतरंग के ऐरावत हाथी पर बैठे हुए जा रहे थे कि दुर्वासा ने इन्हें स्वर्गीय पुष्पों की माला दी, उसे इन्हों ने हाथी के मस्तक पर रख दी। हाथी ने माला की गंध से मुग्ध हो उसे पृथ्वी पर फेंक दिया। यह देख क्रोधी दुर्वासा ने इन्द्र को शाप दिया कि तुम्हारा त्रिलोक का ऐश्वर्य नाश होवे। इसहेतु इन्द्र को बहुत दिनों तक दुःख भोगना पड़ा था। ब्रजवासी लोग इन्द्र की बरसौंड़ी पूजा किया करते थे श्री कृष्ण जी ने इन्हें रोका। इन्द्र क्रोधित हुए। वे ब्रज को बहा देने के लिये मूसलाधार पानी बरसाते रहे। श्री कृष्ण जी ने उतने ही समय तक गोवर्द्धन पर्वत अपनी छिंगुली पर धारण कर ब्रजबासियों की रक्षा की। निदान इन्द्र आधीन हुए। एक बार इन्द्र ने दिति के महाबलशाली पुत्र को गर्भ ही में काट डाला था (देखो मरुत की कथा पृष्ठ ८)। ये पूर्व दिशा के दिग्पाल हैं। इन्हों ने पर्वतों के पंख भी काटे [देखो पृष्ठ ६३ पंक्ति २६]॥

रवि (सूर्य)

पृष्ठ ३१ पंक्ति १२ के अनुसार।

पुरुष सूक्त में लिखा है--चन्द्रमा मनसोजातश्चक्षो; सूर्योऽजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्चप्राणाद्वायुरजायत॥

अर्थात् परमात्मा के मन से चन्द्र और नेत्रों से सूर्य्य उत्पन्न हुए। मुख से इन्द्र और अग्नि की उत्पत्ति हुई और श्वास से वायु की। सूर्य यथार्थ में अपने प्रकाश, उष्णता और आकर्षण शक्ति आदि के कारण संसार में साक्षात् सर्व शक्तिमान् समझे जाते हैं, सो ठीक ही है नहीं, तो ब्रह्मांडों का स्थित रहना, प्रकाश पाना और जीवधारियों का जीवन भी कैसे सम्भव होता। ऐसे ही गुणों के कारण वेदों में इन की विशेष स्तुति की गई है। गायत्री में भी इन्हीं को आधार मान, परमात्मा की स्तुति की है। तुलसीदास जी भी बालकांड में लिख आये हैं—

बन्दौं राम नाम रघुबर के। हेतु कृशानु भानु हिमकर के॥

अर्थात् अग्नि, सूर्य और चंद्रमा के आदि कारण ब्रह्म स्वरूप राम ही हैं। सूर्य की नगरी भास्वती है। इनका बिवाह विश्वकर्मा ऋषि की पुत्री संजना से हुआ था। इन के तीन संतान उत्पन्न हुए [१] वैवस्वतमनु [२] यमराज और [३] यमुना [पुत्री]। वैवस्वत् मनु से इक्ष्वाकु और इक्ष्वाकु से इकसठवीं पीढ़ी में राम अवतार हुआ। कथा है कि सूर्य प्रकाशवान् रथ पर आरूढ़ हो स्वर्ग यात्रा किया करते हैं।

इन का रथ सात घोड़ों किम्वा सात मुख वाले घोड़े से खींचा जाता है, इन के सारथी का नाम अरुण है। अनेक स्थानों में इन के मन्दिर हैं जहां इन का पूजन तो होता ही है परन्तु बहुधा लोग इन के साक्षात् दर्शन कर पूजन किया करते हैं। पुराणों में प्रायः सब जीवों की उत्पत्ति कश्यप से कही है अतएव कदाचित् सूर्य को भी कश्यप और अदिति ही की संतान माना है। कथा है कि इन की स्त्री संजना इन के असह्य तेज को सहन न कर "छाया" नाम की दासी इन के पास रख, अश्वनी बन, बन में तप तपने लगी। छाया से "शनि" उत्पन्न हुए। एक समय सूर्य अश्व रूपधारण कर तपोवन में अपनी स्त्री के पास रहे वहीं पर अश्विनी-कुमार नाम के जुड़ेलुओं की उत्पत्ति हुई। अश्विनी कुमार देवताओंके वैद्य हैं। सूर्य ने शुक्ल यजुर्वेद याज्ञवल्क्य ऋषि को सिखाया। सुग्रीव की उत्पत्ति भी सूर्य से बतलाते हैं। सूर्य के अनेक नाम हैं। (देखो पृ० ८ पुरैनी)

पृष्ठ ३ पंक्ति १६ "क्षिति न परस अन्तर हित रहई"

देवताओं का पृथ्वी को न छूने आदि का हाल नीचे लिखे हुए नैषधीय चरित्र के १४ सर्गांतर्गत १८ वें श्लोक से स्पष्ट होता है। यथा—

परस्य दारान्खलु मन्यमानैः, रस्पर्श्यमानाममरैर्धरित्रीम् ।
भरूयैव भर्तुश्चरणौ दधाना, नलस्य तत्कालमपश्यदेषा ॥

अर्थात् देवताओं ने पृथ्वी को इस तरह से नहीं छुआ जैसे संतजन दूसरे की स्त्री को छूने के योग्य नहीं समझते और दमयन्ती ने नल को इस प्रकार देखा मानो पृथ्वी अपने पति के चरण पकड़े हो।

सारांश—इन्द्र, अग्नि, यम और वरुण ये चार देव जो दमयन्ती के स्वरूप पर मोहित हो, नल रूप धारण कर, उसे भुलावे में डाल, उस के हाथ से अपने गले में जयमाल डलवाना चाहते थे; उन्हें दमयन्ती ने नीचे लिखे चिन्हों से पहिचान लिया। (१) देवता पृथ्वी को न छुए थे, नल उस पर खड़े थे (२) देवताओं के शरीर पर धूल नहीं थी, नल के शरीर पर थी (३) देवताओं के शरीर में पसीना न था, नल के शरीर में स्वेत कण झलकते थे (४) देवता छाया शून्य थे, नल के शरीर की छाया पड़ती थी। इस प्रकार परमेश्वर प्रेरित प्रज्ञा के प्रभाव से, चतुर दमयन्ती, नल के गले में जयमाल डाल, इच्छित पति प्राप्त कर, छली देवताओं की भी प्रशंसापात्र बन बैठी॥

॥ अलंकार ॥

श्लेष, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार काव्यकुसुमाकर में मिलेंगे।

रामचरितमानस में प्रवेश करने के लिये आरण्यकांड को जो तृतीय सोपान कह कर शुद्ध वैराग्य उत्पन्न करने वाला कहा है उस की प्राप्ति के लिये नीचे लिखे हुए, वेद के उपदेशानुसार आचरण करने से प्राणी मुक्ति मार्ग को सुलभता से प्राप्त कर सकेंगे। यथा—

॥ मत्तगयन्द सवैया ॥

आतमहीं रथवान प्रमान, शरीरहु जो रथरूप बनावै।
बुद्धि बने बर सारथी आय, सुमानस केरि लगाम लगावै।
इंद्रिय वाजि जुते जब जायँ, कुचाल सयत्न सुचाल चलावै।
सत्य "विनायक" विष्णु समीप, अपारहि मारग पार सुपावै॥

॥ शुभम्भवतु ॥

॥ आरण्य काण्ड की प्रसिद्ध कहावतें ॥

जिमि पिपीलिका सागर थाहा । महा मन्द मति पावन चाहा ॥
भा निराश उपजी हिय त्रासा । यथा चक्र भय ऋषि दुर्वासा ॥
काहू बैठन कहा न ओही । राखि को सकै राम कर द्रोही ॥
मातु मृत्यु पितु शमन समाना । सुधा होइ विष सुनु हरियाना ॥
मित्र करै शतरिपु की करनी । ता कहँ बिबुध-नदी वैतरनी ॥
निज कृत कर्म जनित फल पायउँ । अब प्रभु पाहि शरणागत आयउँ ॥
मात पिता भ्राता हितकारी । मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमित दान भर्त्ता वैदेही । अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपतकाल परखिये चारी ॥
एकै धर्म एक व्रतनेमा । काय वचन मन पतिपद प्रेमा ॥
उत्तम के अस बस मनमाहीं । सपनेहुँ आनपुरुष जग नाहीं ॥
मध्यम परपति देखहिं कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥
पति प्रतिकूल जन्मि जहँ जाई । विधवा होइ पाइ तरुणाई ॥
सो०—सहज अपावन नारि, पति सेवत शुभ-गति लहइ ।
यश गावत श्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥

जेहि समान अतिशय नहिं कोई । ताकर शील कस न असहोई ॥
केहि विधि कहउँ जाहु अब स्वामी । कहहु नाथ तुम अंतरयामी ॥
उभय बीच सिय सोहति कैसी । ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ॥
जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया । करहिं मेघ तहँ तहँ नभछाया ॥
चितवत पंथ रहेउँ दिनराती । अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती ॥
नाथ सकल साधन मैं हीना । कीन्ही कृपा जानि जन दीना ॥
एक बानि करुणानिधान की । सो प्रिय जाके गति न आनकी ॥
अस अभिमान जाइ जनि भोरे । मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥
एक दुष्ट अतिशय दुखरूपा । जावश जीव परा भवकूपा ॥
एक रचइ जग गुण वश जाके । प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके ॥
अविरल भक्ति विरति विज्ञाना । होहु सकल गुण ज्ञान निधाना ॥
ऊमरि तरु विशाल तव माया । फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥
अविरल भक्ति विरति सत्संगा । चरण सरोरुह प्रीति अभंगा ॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया । जेहि वश कीन्हें जीव निकाया ॥
गो गोचर जहँ लगिमन जाई । सो सब माया जानिहु भाई ॥

ज्ञान मान जहँ एकउ नाहीं । देखत ब्रह्म रूप सब माहीं ॥
कहिय तात सो परम विरागी । तृण सम सिद्धि तीन गुण त्यागी ॥

दो०—माया ईश न आपु कहँ, जानि कहिय सो जीव ।
बन्ध मोक्ष-प्रद सर्व पर, माया-प्रेरक सीव ॥

भक्ति तात अनुपम सुख मूला । मिलहि जो संत होहिं अनुकूला ॥

दो०—वचन कर्म मन मोर गति भजन करहि निष्काम ।
तिन के हृदय कमल महँ करउँ सदा विश्राम ॥

भ्राता पिता पुत्र उरगारी । पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥
सुन्दरि सुन मैं उनकर दासा । पराधीन नहिं तोर सुपासा ॥
प्रभु समरथ कोशल-पुरराजा । जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा ॥
सेवक सुख चह मान भिखारी । व्यसनी धन शुभ गतिव्यभिचारी ॥
लोभी यश चह चारु गुमानी । नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी ॥

दो०—लछिमन अति लाघव सों, नाक कान बिन कीन्ह ।
ताके कर रावण कहँ, मनहुँ चुनौती दीन्ह ॥

चौ०—सूपनखहि आगे कर लीनी । अशुभ रूप श्रुति नासा हीनी ॥

सो०—आय गये बग मेल, धरहु धरहु धावहु सुभट ।
यथा विलोकि अकेल, बाल रविहि घेरत दनुज ॥

चौ०—हम क्षत्री वन मृगया करहीं । तुम से खल मृग खोजत फिरहीं ॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं । एक बार कालहु सन लरहीं ॥
जो न होय बल घर फिरि जाहू । समर विमुख मैं हतौं न काहू ॥
रण चढ़ि करिय कपट चतुराई । रिपु पर कृपा परम कदराई ॥
करसि पान सोवसि दिन राती । सुधि न तोहि शिर पर आराती ॥
राज नीति बिन धन बिन धर्मा । हरिहि समर्पे बिन सतकर्मा ॥
विद्या बिन विवेक उपजाये । श्रम फल पढ़े किये अरु पाये ॥
संग ते यती कुमंत्र ते राजा । मान ते ज्ञान पान ते लाजा ॥
प्रीति प्रणय बिन मद ते गुनी । नासहिं वेग नीति अस सुनी ॥

सो०—रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिय न छोट करि ॥
अस कहि विविध विलाप, करि लागी रोदन करन ॥

दो०—सूपनखहि समुझाय करि, बल बोलसि बहु भाँति ॥
भवन गयउ अति शोचवश, नींद परी नहिं राति ॥

चौ०-होय भजन नहिं तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ॥
लछिमनहू यह मर्म न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना ॥
नमनि नीच की अति दुखदाई। जिमि अंकुश धनु उरग बिलाई ॥
भयदायक खल की प्रियबानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी ॥
भइ मति कटि भृङ्ग की नाईं। जहँ तहँ मैं देखौं दोउ भाई ॥
जो नर तात तदपि अति शूरा। तिनहिं विरोध न आइय पूरा ॥
गुरु जिमि मूढ़ करिस मम बोधा। कहु जग मोहि समान को योधा ॥
तब मारीच कीन्ह अनुमाना। नवहि विरोधे नहिं कल्याना ॥
शस्त्री मर्मी प्रभु शठ धनी। वैद्य वन्दि कवि मानस गुनी ॥
सीता केरि करहु रखवारी। बुधि विवेक बल समय विचारी ॥
सो दश-शीश स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़ियाई ॥
इमि कुपंथ पग देत खगेशा। रह न तेज बल बुधि लवलेशा ॥
जिमि हरि बधुहिं क्षुद्र शश चाहा। भयसि कालवश निशिचर-नाहा ॥
विपति मोरि को प्रभुहिं सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा ॥
अधम निशाचर लीन्हें जाई। जिमि मलेच्छवश कपिला गाई ॥
धावा क्रोधवंत खग कैसे। छूटै पवि पर्वत पहँ जैसे ॥
जाना जरठ जटायू येहा। मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा ॥
राम रोस पावक अति घोरा। होइहि शलभ सकल कुल तोरा ॥
करति विलाप जाति नभ सीता। व्याध विवश जनु मृगी सभीता ॥

दो०—जेहि विधि कपट कुरंग सँग, धाय चले श्री राम।
सो छबि सीता राखि उर, रटति रहति हरि नाम ॥

चौ०—पूरण काम राम सुखराशी। मनुज चरित कर अज अबिनाशी ॥
जल भरि नैन कहा रघुराई। तात कर्म निज ते गतिपाई ॥
परहित बस जिनके मनमाहीं। तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी ॥
जाति पांति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुण चतुराई ॥
भक्ति-हीन नर सोहहिं कैसे। बिनु जल वारिद देखिय जैसे ॥

दो०—जाति हीन अघ जन्म मय, मुक्त कीन्ह अस नारि।
महा मन्द मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥

चौ०—शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय। भूप सुसेवित बशनहिं लेखिय ॥

राखिय नारि यदपि उर माहीं । युवती शास्त्र नृपति वश नाहीं ॥

दो०-तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि विज्ञान निधान मन, करहि निमिष महँ छोभ ॥

दो०-लोभ के इच्छा दम्भबल, काम के केवल नारि ।
क्रोध के परुषवचन बल, मुनिवर कहहिं विचारि ॥

चौ०—क्रोध मनोज लोभ मद माया । छूटहिं सकल राम की दाया ॥
सो नर इन्द्रजाल नहिं भूला । जा पर होइ सो नट अनुकूला ॥
उमा कहौं मैं अनुभव अपना । हरि को भजन सत्य जग सपना ॥
जहँ तहँ पियहिं विविध मृग नीरा । जनु उदारगृह याचकभीरा ॥

दो०—पुरइनि सघन ओट जल, वेगि न पाइय मर्म ।
मायाछन्न न देखिये, जैसे निर्गुण ब्रह्म ॥

दो०—सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माहिं ।
यथा धर्मशीलन्ह के, दिन सुख संयुत जाहिं ॥

दो०—फल भर नम्र विटप सब, रहे भूमि नियराय ।
पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसम्पति पाय ॥

चौ०—जन कहँ कछु अदेय नहिं मोरे । अस विश्वास तजहु जनि भोरे ॥
करौं सदा तिन की रखवारी । जिमि बालकहि राख महतारी ॥
गहि शिशु बच्छ अनल अहि धाई । तहँ राखै जननी अरगाई ॥
प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता । प्रीति करै नहिं पाछिल बाता ॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी । बालक सुत सम दास अमानी ॥
जिनहि मोर बल निजबल ताही । दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आही ॥
जे न भजहिं असप्रभु भ्रम त्यागी । ज्ञान रंक मति मन्द अभागी ॥
निजगुण श्रवण सुनत सकुचाहीं । परगुण सुनत अधिक हर्षाहीं ॥
सम शीतल नहिं त्यागहिं नीती । सरल स्वभाव सबहिं सन प्रीती ॥
दम्भ मान मद करहिं न काऊ । भूल न देहिं कुमारग पाऊ ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला । हेतुरहित परहित रतशीला ॥

दो०—दीपशिखासम युवति जन, मन जनि होसि पतंग ।
भजहु राम तजि काम मद, करहु सदा सतसंग ॥

❀ काव्यकुसुमाकर (प्रथम भाग) ❀

लेखक—श्रीयुत विनायकराव लार्डगंज जबलपूर,
पृष्ठ संख्या ६२। मूल्य सात आने।

समालोचना हितकारिणी अक्टूबर सन् १६१६।

इस पुस्तक में ११ कुसुम हैं जिनमें मात्रा, गण, तुकान्त, अर्थभेद, रस, छन्द अलंकार आदि का संक्षिप्त विवेचन किया गया है जो मैट्रीक्यूलेशन कक्षा तथा अन्य कविता जिज्ञासुओं के लिये लाभदायक हो सक्ता है। पुस्तक में जो उदाहरण दिये गये हैं वे प्रायः प्रसिद्ध २ कवियों के हैं एवं अश्लीलता से मुक्त हैं। यद्यपि पुस्तक में बहुत बातों को थोड़े में समझाने का प्रयत्न किया गया है जो बहुत अच्छा है तथापि भाव एवं रस के लिये कुछ अधिक पृष्ठ दिये जाते तो अच्छा होता। समष्टि रूप में, पुस्तक अच्छी है एवं स्कूलों की उच्च कक्षाओं में प्रचलित किये जाने योग्य है।

पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी सम्पादक सम्मेलन-पत्रिका प्रयागद्वारा समालोचना

विनायकी टीका सहित रामायण।

श्री तुलसीदास जी कृत रामायण वा रामचरितमानस की यद्यपि अनेक टीकाएँ अब तक छप चुकी हैं तथापि मुझे विनायकी टीका से बढ़कर दूसरी देखने में नहीं आयी। इस समय मेरे सम्मुख इस टीका के सहित बाल, अयोध्या, आरण्य, किष्किन्धा, और सुन्दर ये पाँच काण्ड हैं। बालकाण्ड एक जिल्द में पुरौनी के ५६ पृष्ठों के अतिरिक्त ६६६ पृष्ठों का है। आकार रायल अठपेजो और सजिल्द है। फिर भी मूल्य २) ऐसे ग्रन्थ का बहुत ही उचित है। अयोध्याकाण्ड, दूसरी जिल्द में पुरौनी के सहित ५२४ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। मिलने का पता पण्डित विनायकराव पेन्शनर लार्डगंज-जबलपुर है

टीका के साथ साथ विस्तृत टिप्पणी भी लगी है जिसमें काव्य के अंगों के विस्तृत विवरण तथा तुलसीदास की गीतावली आदि अन्य ग्रन्थों एवं केशवदास, सूरदास, नानक रसखान, पदमाकर, सुन्दर आदि पुराने और लछिराम, शङ्करललित, व्रजचन्द आदि अन्य नये हिंदी भाषा के कविरत्नों की कविता के आनन्द के साथ साथ संस्कृत के महाकवि कालिदास आदि विद्वानों की कविता एवं सिद्धान्तों का भी स्वाद मिलता है। टिप्पणी में स्त्री-समाजके लाभ की ओर भी ध्यान दिया गया है। बालकाण्ड की टिप्पणी में पुत्र जन्म के सोहरे आदि विवाह के समय की जेवनारें, गाली, बनरा आदि अनेक उपयोगी और सभ्यता एवम् उपदेशपूर्ण गीत तथा वर-बधू की प्रतिज्ञा आदि के भजन, गज़ल और रेखता आदि में भी धार्मिक और सामाजिक सिद्धान्तों की कमी नहीं है। सारांश यह कि इस टीका और टिप्पणी द्वारा जितना लाभ विद्यार्थी, हरि भक्तिअध्यापक, देशहितैषी और समाज सुधारकको होगा उससे किसी अंश में कम लाभ स्त्री-समाज और साहित्य एवं संगीत प्रेमियों को न होगा। टीका में मूल के साथ साथ कठिन पदों के अन्वय और साधारण एवं सुबोध भाषा में अर्थ समझाकर आवश्यकतानुसार साहित्य सम्बन्धी अलङ्कार आदि विषयों की सूक्ष्मतर बातें भी बतलायी गयी हैं। शङ्का समाधान की ओर भी कम ध्यान नहीं दिया गया है। परिशिष्ट रूप से काण्डों के अन्त में पुरौनी लगायी गयी हैं। पुरौनी में भी बड़े २ महत्व के विषय हैं। बालकाण्ड की पुरौनी में पिंगल का संक्षिप्त वर्णन, नवरस और उनके भावों का भली भांति से वर्णन और क्षेपक का संग्रह है। अयोध्या-

काण्ड की पुरौनी में साधारण पिंगल, शब्दालङ्कार, अर्थालंकार और भाषा व्याकरण का वर्णन है। आरण्यकाण्ड की पुरौनी में भी आवश्यक पिंगल की चर्चा करके महर्षि नारद इन्द्र और सूर्य्य के वृत्तान्त भी लगा दिये गये हैं जो कथा के जानने के लिये उपयोगी हैं किष्किन्धाकाण्ड की पुरौनी में उसके क्षेपक और वर्षा एवं शरद ऋतु के वर्णन के साथ साथ अनेक उपदेशपूर्ण बातें एवम् अच्छी अच्छी कहावतों का अच्छा संग्रह है इस प्रकार सुन्दरकाण्ड की पुरौनी में भी आवश्यक पिङ्गल की चर्चा करके क्षेपक और प्रसिद्ध कहावतों का संग्रह है। यदि विचार-दृष्टि से देखा जाय तो आजकल की दृष्टि से साहित्य सम्बन्धी पिङ्गल, रस, भाव और अलङ्कार आदि विषयों के जानने के लिये इस टीका की पुरौनी अत्यन्त उपयोगी है क्योंकि इसके उदाहरण प्रायः प्राचीनकाल के समान अश्लील न होकर उपदेशपूर्ण और धार्मिकभाव को लिये हुए हैं। मेरी राय में तो यह आता है कि इसकी पुरौनी यदि पृथक् से छपा ली जाती तो हमारी हिन्दी-परीक्षा-समिति के पाठ्य ग्रंथों में रख दी जाने योग्य हो जाती। क्योंकि आजकल कन्याएं भी परीक्षा में आ रही हैं जिनको छन्द, रस और अलङ्कार पढ़ने के लिये शिष्ट और सभ्यतापूर्ण ग्रन्थ कठिनाई से मिलरहे हैं।

सारांश यह कि पण्डित विनायकराव जी ने इस टीका और टिप्पणी एवं पुरौनी की रचना करके हिन्दी-संसार का जो उपकार किया है उसके लिये समस्त हिन्दीप्रेमी को कृतज्ञ होना चाहिये और यह कृतज्ञता इसी रूप में प्रकट की जा सकती है कि इस पुस्तक की एक एक प्रति समस्त हिन्दी-प्रेमी जन खरीद लें जिसमें उक्त पण्डित जी का परिश्रम सफल हो और अन्य उपकारी कार्य की ओर ध्यान जाय।